पशुधन प्रकाश

नवम् अंक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल–132001 (हरियाणा)

पशुधन प्रकाश

(नवम् अंक - 2018)

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल- 132 001 (हरियाणा) भारत

भाकृअनुप
ICAR
NBAGR

पशुधन प्रकाश

(नवम् अंक-2018)

संरक्षक एवं प्रकाशक
आर्जव शर्मा, निदेशक

मुख्य सम्पादक
अनिल कुमार मिश्र

सम्पादक मंडल
मनीषी मुकेश
रेखा शर्मा
साकेत कुमार निरंजन
सोनिका अहलावत
सतपाल

© भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

अंक-9 (वर्ष-2018)

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गए आंकड़े तथा विचार लेखकों के अपने हैं। उनके लिए संपादक मंडल अथवा ब्यूरो किसी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

मुद्रकः
इन्टैक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
343, पहली मंजिल, मुगल कॅनाल, करनाल - 132 001 (हरियाणा)
फोन नं. 0184-4043541, 3292951
ई-मेलः printing.intech@gmail.com

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
ICAR-NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES
Post Box-129, G.T. Road - Bye Pass, Near Basant Vihar
KARNAL - 132 001 (Haryana)

डॉ. आर्जव शर्मा
निदेशक
Dr. Arjava Sharma
Director

निदेशक की कलम से...

विकास को परिभाषित करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने कहा है कि "विकास का तात्पर्य सामाजिक व्यवस्था, संरचना, संस्थाओं, सेवाओं की बढ़ती क्षमता; जो संसाधनों का उपयोग इस तरह से कर सके कि जीवन के हर स्तर में अनुकूल परवर्तन आए"। किसी भी राष्ट्र के विकास में उसकी अपनी भाषा का अहम् योगदान होता है। अतः हम सभी का यह कर्तव्य एवं दायित्व है कि हम अपनी राजभाषा हिन्दी के विकास में रचनात्मक सहयोग प्रदान करें। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, अपने अधिदेश संबंधी शोध कार्यों के साथ – साथ हिन्दी के प्रचार – प्रसार; इसके राजकीय कार्यों में अधिकाधिक प्रयोग एवं वैज्ञानिक संगोष्ठियों एवं बैठकों में अधिकाधिक प्रयोग हेतु प्रयत्नशील है। इसी क्रम में ब्यूरो द्वारा वार्षिक हिंदी पत्रिका "पशुधन प्रकाश" का प्रकाशन वर्ष 2009 से लगातार किया जा रहा है। इसमें पशुपालन विज्ञान से सम्बंधित सभी विधाओं के बारे में महत्वपूर्ण एवं सारगर्भित लेखों का प्रकाशन किया जाता है, जोकि किसानों के लिए काफी सरल होते हैं एवं वैज्ञानिक पशुपालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभातें हैं। संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें नियमित रूप से आयोजित की जाती हैं। तिमाही एवं छमाही रिपोर्टें मुख्यालय को नियमित भेजी जाती हैं। इसके अतिरिक्त संस्थान कर्मियों एवं अधिकारियों में राजभाषा हिन्दी के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु हिन्दी में विभिन्न व्याख्यान एवं हिन्दी पखवाड़े का आयोजन संस्थान द्वारा प्रति वर्ष किया जा रहा है।

"पशुधन प्रकाश" का नवीन अंक नए कलेवर में आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुये मुझे अपार हर्ष एवं गर्व की अनुभूति हो रही है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों में देश के विभिन्न शैक्षिक संस्थानों के सहयोगी लेखकों, संस्थान के वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों का योगदान प्रशंसनीय है। इस अंक में 29 किसानोंपयोगी लेखों को शामिल किया गया है जो कि देश की महत्वपूर्ण देशी पालतू पशु नस्लों, पशु प्रबंधन, चारा प्रबंधन आदि से सम्बंधित हैं। मेरा यह विश्वास है कि प्रकाशित लेख, पशु पालकों, किसानों, पशुपालन से जुड़े वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों एवं प्रसार कर्यकर्ताओं के लिए ज्ञानवर्धक एवं लाभप्रद होंगे। मैं पत्रिका के प्रकाशन हेतु प्रकाशक मंडल के सभी सदस्यों एवं लेखकों को हृदय से बधाई देता हूँ, जिनके अथक प्रयास से यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। पत्रिका में गुणात्मक सुधार के लिए आपके सुझाव एवं आलोचनाओं का स्वागत है।

मैं "पशुधन प्रकाश" के सुनहरे एवं स्वर्णिम भविष्य की कामना करता हूँ।

(आर्जव शर्मा)

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
ICAR-NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES
Post Box-129, G.T. Road - Bye Pass, Near Basant Vihar
KARNAL - 132 001 (Haryana)

सम्पादकीय

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषे'
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत्"

अर्थात् मन, वचन और कर्म से हम लगातार जिस वस्तु के बारे में सोचते हैं, वही हमें अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। अतः हमें सदा हिन्दी में ही कार्य करने एवं उसके उत्थान के लिए चिंतन करते रहना चाहिए। क्योंकि किसी ने सही कहा है कि " हिन्दी सीखे बिना भारतीयों के दिलों तक नहीं पहुंचा जा सकता। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल विगत तीन दशकों से देशी पालतू पशुधन एवं कुक्कुट संसाधनों की पहचान, मूल्यांकन, लक्ष्णीकरण, संरक्षण एवं उनके सतत उपयोग से संबंधित सभी क्षेत्रों में शोध कार्य में संलग्न है एवं इससे संबंधित नवीनतम अनुसंधानों तथा तकनीकों को पशुपालकों, पशु पालन से संबंधित नीति निर्माताओं एवं विकास संस्थाओं को स्थानातरित करने में महती भूमिका का निर्वहन कर रहा है। अद्यतन नवीनतम अनुसंधानों एवं तकनीकों को पशुपालक भाइयों के बीच सरल एवं सुगम रूप से उपलब्ध कराने में राजभाषा हिंदी का योगदान काफी महत्वपूर्ण है।

भाकृअनुप - राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका "पशुधन प्रकाश" का नवम अंक नवीन आशा एवं उत्साह के साथ आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए सम्पादक मंडल हर्ष का अनुभव कर रहा है। नवीन अंक में देश में पायी जाने वाली महत्वपूर्ण नस्लों की जानकारी, गऊशालाओं के माध्यम से नस्ल संरक्षण, भैंस नस्ल विविधता, लद्दाखी गधे की विशेषता, मारवाड़ी बकरी, वनराजा मुर्गी, किसानों की आय दुगुनी करने में पशुधन की भूमिका आदि से सम्बंधित लेखों को शामिल किया गया है।

पत्रिका के सतत प्रकाशन में देश के विभिन्न राज्यों के हिंदी प्रेमी सहयोगी लेखकों, संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का सहयोग सराहनीय रहा है, हम सम्पादक मंडल के सभी सदस्य सभी लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं एवं आशा करते हैं कि भविष्य में भी आपका सहयोग मिलता रहेगा। पत्रिका के प्रकाशन में पूर्ण सावधानी बरती गयी है, लेकिन त्रुटि की संभावना से इंकार नही किया जा सकता। पाठकगण इसमें कोई त्रुटि देखें तो वे अवश्य ही अपनी टिप्पणी व्यक्त करेंगे एवं आगामी अंक को और सफल बनाने में सहयोग प्रदान करेंगें ऐसा हमारा विश्वास है। यह पत्रिका आपकी है एवं हमें आगामी अंक के लिए आपके लेखों एवं सुझावों का इंतज़ार रहेगा। हमें आशा एवं पूर्ण विश्वास है कि नवम अंक आपके लिए उपयोगी एवं संग्रहणीय रहेगा।

सम्पादक मंडल

विषय-सूची

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ सं.
1.	**गऊशालाओं के माध्यम से गाय की नस्लों का संरक्षण, संवर्धन एवं सतत विकास** अनिल कुमार मिश्र, राकेश कुमार पुंडीर, प्रमोद कुमार सिंह, के एन राजा एवं आर्जव शर्मा	1
2.	**भारतीय भैंस नस्ल जैव विविधता** बद्री प्रसाद कुशवाहा, सुल्तान सिंह एवं इन्द्रजीत सिंह	6
3.	**राजस्थान के किसानों की आजीविका में मारवाड़ी बकरी का महत्व** हेमलता चौहान, जी सी गहलोत एवं हर्षवर्धन मीणा	11
4.	**वनराजा : छत्तीसगढ़ राज्य के लिए एक उपयुक्त बैकयार्ड कुक्कट** के मुखर्जी, मोहन सिंह, दीप्ति किरण बरवा, केशर परवीन एवं असीत जैन	13
5.	**भारवाहक अश्वजातीय पशु: एक उपेक्षित आनुवंशिक संसाधन** हिमानी शर्मा, रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं एम एस टांटिया	16
6.	**कुमाऊँ (उत्तराखण्ड) के ऊँचाई वाले क्षेत्र में पशुपालन: एक परिदृश्य** करम चन्द्र एवं एस के विश्वास	24
7.	**लद्दाखी गधे - गुण व उपयोगिता** राहुल बहल, एस के निरंजन, ज्योतसना ढींगरा बहल, पुनीत रंजन, मो. इकबाल एवं विजय कुमार भारती	27
8.	**किसानों की आय दुगनी करने का लक्ष्यः पशुधन की भूमिका** सत्येन्द्र पाल सिंह एवं रश्मि सिंह	31
9.	**बकरी पालन – आय बढ़ाने का एक संभावी विकल्प** नरेश कुमार वर्मा	38
10.	**राजस्थानी ऊँटों का महत्व तथा संरक्षण के उपाय** हर्षवर्धन मीणा एवं लोकेश वशिष्ठ	43
11.	**गधा: अश्व परिवार का विशेष पशु** कर्ण वीर सिंह	46
12.	**85 सेंटीमीटर की गाय से खारा पानी पीने वाली भैंस तक: एक नजर डालें भारत के अद्वितीय पशुधन आनुवंशिक संसाधनों पर** अनुज चौहान, अरविंद सोनवने, रणवीर सिंह, सुशील कुमार, सुबोध कुमार एवं भारत भूषण	49
13.	**भारत में भेड़ पालन - एक परिचय** राकेश कुमार, मनदीप कौर, आशीष कुमार, सोनिका अहलावत एवं रीना अरोड़ा	55
14.	**पीसीआर आधारित तकनीक द्वारा पश्मीना फाइबर से निर्मित टेक्सटाइल्स उत्पादों की शुद्धता की पहचान** राजीव कुमार, अमर सिंह मीणा एवं डी बी शाक्यावार	61

15. **जखराना ब्रायलर मेमना उत्पादन के लिए चयन, प्रजनन तथा आहार प्रबंधन** 65
साकेत भूषण

16. **कृत्रिम गर्भाधान द्वारा बकरियों में प्रजनन व नस्ल सुधार** 70
एस एन शुक्ला एवं पीताम्बर इनवाती

17. **भैंस के साँड़ों में संतति परीक्षण के बदलते आयाम** 72
जय प्रकाश गुप्ता, शायमा के पी, अमित कुमार श्रीवास्तव एवं जगदीश चौधरी

18. **ए1/ए2 दूधः आनुवंशिक आधार तथा स्वास्थ्य संबंधी पहलू** 77
अनुज चौहान, सुशील कुमार, अरविंद सोनवने, सुबोध कुमार एवं भारत भूषण

19. **बकरी का दूध: एक पौष्टिक एवं औषधीय अमृत** 80
मोहित अंतिल, भुवनेश्वर राय, चेतना गंगवार, रविन्दर कुमार एवं बुरहानुद्दीन शफ़ी

20. **बकरियों में प्रजनन सम्बन्धी देख-रेख** 83
अनुज कुमार सिंह सिकरवार

21. **ब्याँत के उपरान्त जेर रूकना : एक गम्भीर समस्या** 88
चेतना गंगवार, अखिल पटेल, एस पी सिंह एवं जितेन्द्र कुमार अग्रवाल

22. **मादा पशुओं में बांझपन और उसका निदान** 90
अतुल शंकर अरोड़ा, ए पी सिंह एवं संदीप धौलपुरिया

23. **दुधारू पशुओं में ऊष्मागत तनाव (हीट स्ट्रैस) व बचाव** 93
साक्षी चौहान एवं विपुल ठाकुर

24. **पशुओं में थनैला रोग** 94
दिग्विजय सिंह, अखिलेश कुमार सिंह, मनोज कुमार एवं मानवेन्द्र सिंह

25. **पशुओं में होने वाले खुरपका-मुहंपका रोग का उपचार एवं रोकथाम** 97
राजेश अग्रवाल एवं निशि पांडे

26. **भेड़-बकरियों के मुख्य रोग एवं उनके निदान** 100
शालू कुमार, हरेन्द्र सिंह चौहान, अभिजित जोशी, जवाहर लाल कुलदीप, मुकुंद लोंढे
प्रज्ञा शिगवण, पल्लवी पानकर एवं बालासाहेब सोनवलकर

27. **पशु स्वास्थ्य के लिए उपयोगी औषधीय बीज व पौधे** 103
सूर्यपाल सिंह एवं हर्षिता सिंह

28. **ऊष्मा तनाव के दौरान देशी, विदेशी व् संकर नस्लों की गायों में हीट शॉक प्रोटीन्स के स्तर व् कोशिका प्रसार दर का तुलनात्मक आंकलन** 106
प्रीति वर्मा, मोनिका सोढ़ी, अंकिता शर्मा, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश

29. **उत्तराखंड में मानव-वन्यजीव संघर्ष एवं पशुपालन** 112
दीपिकेश जोशी एवं डी वी सिंह

पुरस्कृत लेख परिणाम 30
लेख आमन्त्रण 114

गऊशालाओं के माध्यम से गाय की नस्लों का संरक्षण, संवर्धन एवं सतत विकास

अनिल कुमार मिश्र, राकेश कुमार पुंडीर, प्रमोद कुमार सिंह, के एन राजा एवं आर्जव शर्मा

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001 (हरियाणा)

लोकान सिसृक्षुण पूर्व गावः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
वृत्यर्थ अर्वभूतानं तस्मात् ता मातरः स्मृताः॥

गौमाता मातृशक्ति की साक्षात् प्रतिमा है। जिस दिन विश्व में गायें नहीं रहेंगी, उस दिन विश्व मातृशक्ति से विमुक्त हो जाएगा और उस दशा में कोई भी प्राणी नहीं बचेगा। प्राचीन युगों में भारत में जो विबुध-विस्मयकारी वैभव विद्यमान होने की विशद चर्चा पुराने इतिहासों में मिलती है, उस वैभव का मूलाधार गायें ही थी। **(साभार : कल्याण, गोसेवा अंक (1) वर्ष-69: पृष्ठ संख्या-27)**

भारत में गाय का धार्मिक, आर्थिक एवं कृषि के दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व है। गाय के प्रति भारत के जनमानस की भावनाओं का सम्मान करते हुए कई राज्य सरकारों द्वारा गो हत्या को प्रतिबंधित किया गया है। इसी कारण से देश में बीते कई वर्षों से अनेकों गऊशालाओं का सृजन किया गया। वस्तुतः देश में गऊशालाओं का विकास लगभग दो शताब्दी पहले ही शुरू हो चुका था। वर्ष 1944 तक गऊशालाओं में सिर्फ उत्पादित एवं अनुत्पादक गायों एवं सांडों/ बैलों को ही रखा जाता था। गऊशालाओं के पशुओं के विकास के लिए कृषि एवं पशुपालन मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के माध्यम से गऊशालाओं के प्रतिनिधियों के साथ वर्ष 1944 में एक बैठक हुई, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि गऊशालाओं के पशुओं का विकास किया जाये। वर्ष 1949 में सरकार द्वारा गऊशाला विकास बोर्ड की स्थापना की गई तथा गऊशालाओं को पशु प्रजनन एवं दुग्ध उत्पादन केंद्र का दर्जा प्रदान किया गया। गऊशालाओं के विकास के लिए वर्ष 1952 में केन्द्रीय गोसंबर्धन समिति की स्थापना की गई, जोकि 1969 तक गऊशाला विकास का कार्य देखती रही। वर्ष 1969 में इसे बंद कर दिया गया। इसके बाद गऊशाला विकास कार्य, सम्बंधित गऊशालाओं के प्रतिनिधियों द्वारा स्वयं किया जाने लगा। वर्तमान में हमारे देश में जो गऊशालाएँ उपलब्ध हैं। वे सामान्यत: दो प्रकार की हैं:

श्री कृष्ण गोपाल गौशाला निसिंग, करनाल

- **सेवाभाव वाली गऊशालाएँ:** इन गऊशालाओं पर किसानों/गोपालकों द्वारा त्यागी हुई अनुत्पादक वृद्ध एवं अपाहिज गायों को रखा जाता है, जिनका संचालन सामान्यत: किसी समाजसेवी या गैर सरकारी संगठन द्वारा किया जाता है। इन गऊशालाओं का खर्च दानियों द्वारा प्राप्त राशि से किया जाता है। कुछ गऊशालाओं को राज्य सरकार भी सहायता प्रदान करती हैं। इन गऊशालाओं पर पाई जाने वाली गायों की नस्ल पर ध्यान नहीं दिया जाता।
- **दुग्ध-उत्पादन आधारित गऊशालाएँ:** इन गऊशालाओं पर अनुत्पादक गायों के साथ-साथ उत्पादक एवं अच्छी गायों को भी रखा जाता है तथा गऊशालाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए दूध के अतिरिक्त विभिन्न उत्पाद जैसे कि गो घी, गो मूत्र-अर्क, कार्बनिक खाद आदि भी बनाकर बेचा जाता है। इन गऊशालाओं पर शुद्ध नस्ल की कुछ गायों को भी रखा जाता है। इन गऊशालाओं का मुख्य उद्देश्य दूध एवं दूध आधारित उप-उत्पादों का व्यवसाय करना भी होता है, ताकि गऊशाला को स्वावलम्बी बनाया जा सके।

सामान्य जन–मानस के मन में यह प्रश्न आता है कि अगर गाय दुग्ध उत्पादन नहीं कर रही है, तब हम इसे क्यों पाले? लेकिन यकीन मानिए; अगर गाय दुग्ध उत्पादन नहीं कर रही है तबभी वह हमें, हमारे समाज को एवं वातावरण को इतना कुछ प्रदान करती है जो कि अनमोल होता है। इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए सरकार ने “ग्रामीण गोबर धन” योजना की शुरूआत वर्ष 2018 से की है। इसके अतिरिक्त गाय के विभिन्न उप-उत्पादों से कई महत्वपूर्ण उत्पादों का निर्माण जैसे कि औषधीय उत्पाद, सौन्दर्य उत्पाद, ईंधन, गोबर गैस, खाद, बैल शक्ति आदि का उत्पादन कर गऊशालाओं को आत्म निर्भर बनाया जा सकता है। अनुत्पादक गोवंश से प्राप्त उप-उत्पादों के विकास एवं उपयोग को बढ़ाना आवश्यक है, जिससे कि ये गोवंशी पशु आर्थिक रूप से बोझ न लगे।

ग्रामीण गोबर धन योजना: इस योजना में गोबर से अनेक उत्पाद जैसेकि गोबर गैस, जैविक खाद, केंचुआ खाद, जीवामृत, गोबर के गमले, गोबर के कंडे आदि बना कर ग्रामीण जीवन में सामाजिक उन्नति, उन्नत खेती, पर्यावरण सुरक्षा एवं महिला शक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा हेतु कार्यक्रम तैयार किया गया है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य स्वच्छ गृहणी, स्वच्छ ग्राम, स्वच्छ प्रदेश से स्वच्छ भारत का निर्माण करना है। गोबर से उत्पादित, बायो–गैस ईंधन उर्जा के उत्पादन से बिजली की बचत होगी, गृहणी को धुआं रहित ईंधन मिलेगा इससे पेट्रोलियम गैस (एल पी जी) की बचत होगी, जिससे कि विदेशी मुद्रा की बचत होगी एवं किसान एवं देश समृद्ध बनेगा।

भारत वर्ष में उपलब्ध गऊशालाओं का समुचित विकास आज की आवश्यकता है। इससे गऊशालाओं पर शुद्ध नस्ल की गाएं उपलब्ध होगी एवं आमदनी का जरिया भी उपलब्ध होगा। गऊशालाओं के विकास के लिए निम्न तरीके अपनाए जा सकते हैं :

दुग्ध-उत्पादन आधारित गऊशाला: ये गऊशालाएं अपने को आत्म निर्भर एवं अधिक लाभ प्राप्त करने हेतु निम्न उपाय अपना सकतीं हैं :

गोबर से उपले बनाना

केंचुआ खाद उत्पादन

गोबर गैस संयंत्र

दुग्ध विपणन: स्थानीय बाजार या घर–घर जाकर दुग्ध बेचना, आमदनी का पुराना एवं सरल उपाय है। आजकल देशी गायों के दूध की मांग अच्छे मानव स्वास्थ्य हेतु बढ़ रही है। अतः स्वस्थ देशी गायों से प्राप्त स्वच्छ दूध अच्छी कीमत पर बेचा जा सकता है।

दुग्ध उत्पादों का विपणन: दूध के साथ-साथ ही गऊशालाओं को दुग्ध से बने उत्पादों का भी निर्माण एवं विपणन करना चाहिए; जैसे कि- खोआ, क्रीम, मक्खन, पनीर, चीज, दही आदि बनाकर एवं उनकी गुणवत्ता युक्त पैकेजिंग कर के अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है। किन्तु यह उन्हीं गऊशालाओं के लिए हितकर है जहाँ दूध उत्पादन अधिक मात्रा में हो रहा हो। दूध को पाशचुरीकृत करके बेचने से दाम भी अधिक मिलता है एवं दूध को अधिक समय तक सुरक्षित भी रखा जा सकता है।

नस्ल संरक्षण: ऐसी गऊशालाएँ जो पहले से ही विकसित हैं, वहाँ पर यह ध्यान देना होगा की वे जिस क्षेत्र में स्थित हैं। उस क्षेत्र की देशी/भारतीय नस्लें ही पालें एवं उन्हीं नस्लों के शुद्ध सांडों से अपनी गायों को गर्भित कराएँ। इससे देशी नस्लों का संरक्षण भी होगा एवं क्षेत्र की अवर्णित गायों का भी क्रमोन्नतीकारण/ ग्रेडिंगअप होगा। ऐसा देशी नस्लों के प्रजनन क्षेत्र में स्थित कम से कम 2 गऊशालाओं में अवश्य किया जाना चाहिए। ये गऊशालाएँ अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए उपरोक्त वर्णित उपायों के अतिरिक्त शुद्ध वंशावली युक्त सांडों के वीर्य की हिमीकृत स्ट्रा बनाकर एवं उन्हें बेच कर भी आमदनी बढ़ा सकती हैं। किन्तु शुद्ध नस्ली एवं अच्छे आनुवंशिक गुणों वाले सांड़ों से वीर्य खुराकें बनाने हेतु अतिरिक्त ढांचीय सरंचना की आवश्यकता होगी।

गऊशाला के विभिन्न उप-उत्पाद

गोसेवा हेतु स्थापित गऊशालाओं का विकास: इन गऊशालओं पर अधिकतर, अनुत्पादक, बूढ़ी एवं लोगों द्वारा त्यागी गई गायों को रखा जाता है। ऐसी गऊशालाओं पर हमें उन गायों को अलग करना चाहिए जो बच्चा पैदा करने में सक्षम हों। इन गायों को अलग करके उन्हें उत्तम नस्ल के सांडो से गर्भाधान कराना चाहिए। इससे जो सन्ततियां पैदा होंगी वे उत्तम प्रकार की होंगी एवं गऊशाला की गायों का भी विकास होगा। इन गऊशालाओं पर दुग्ध उत्पादन नगण्य होता है। इन गऊशालाओं का सतत विकास निम्न उप-उत्पादों के निर्माण एवं उनके समुचित उपयोग द्वारा किया जा सकता है, इससे ये गऊशालाएं आत्मनिर्भर हो सकती है:

औषधीय उत्पादों का निर्माण: जैसे कि गो-मूत्र अर्क; गोमूत्र आधारित मधूमेह चूर्ण, कब्ज चूर्ण, पेट अस्थमा लीवर आदि हेतु घनवटी, दन्त मंजन, जोड़ों के दर्द निवारण हेतु तेल का निर्माण आदि के अतिरिक्त कीटनाशी, रोग नाशी, घरों कि सफाई हेतु प्रयोग में लाये जा रहे रसायनों, साबुन आदि बनाने की भी इकाई स्थापित की जा सकती है।

गो-मूत्र में नाइट्रोजन, फास्फेट, यूरिक एसिड, सोडियम, पोटैशियम और यूरिया होता है और कुछ परीक्षणों में ये पाया गया है कि जिस कृषि भूमि में गोमूत्र एवं गोबर डाला जाता है उस भूमि में उपस्थित जीवाणु सक्रिय होकर फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले जीवाणुओं पर अंकुश लगा देते हैं। इन गऊशालाओं पर गोमूत्र से बनने वाले निम्न उत्पादों की इकाई स्थापित कर लाभ कमाया जा सकता है। गऊशालाओं पर गोमूत्र-अर्क बनाने की इकाई की स्थापना की जा सकती है:

बैल शक्ति का सिंचाई हेतु प्रयोग

पूजा सामग्री निर्माण: देशी गाय के मूत्र एवं गोबर का उपयोग करके हवन सामग्री, धूप बत्ती, पञ्च गव्य आदि का निर्माण देश की कई गऊशालाओं पर किया जा रहा है। यह आमदनी का एक सशक्त माध्यम है।

ईंधन निर्माण एवं गोबर गैस उर्जा: गोबर से बने उपले/कंडो का उपयोग सदियों से ईंधन के रूप में हो रहा है, आज-कल ऑन – लाइन भी गोबर से बने उपले/कंडों की खरीदारी हो रही एवं यह आमदनी का एक जरिया बन सकता है। गोबर गैस प्लांट का निर्माण भी किया जा सकता है एवं इससे उत्पन्न गैस का प्रयोग गऊशाला हेतु खाना पकाने एवं रोशनी आदि के लिए किया जा सकता है, जिससे गऊशाला पर बिजली की बचत होगी। इसके अतिरिक्त अगर गऊशाला पर गायों की संख्या अधिक हो तो अधिक मात्रा में गैस का निर्माण कर उन्हें बेचकर भी अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

जैविक खाद का निर्माण: गऊशाला पर उपलब्ध अपशिष्टों का प्रयोग करके जैविक खाद एवं केंचुआ खाद का निर्माण करके अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। कुछ गऊशालाओं पर सींग, गोबर एवं मिट्टी का प्रयोग करके सींग खाद का निर्माण किया जा रहा है एवं आमदनी प्राप्त की जा रही है।

बैल शक्ति का उपयोग: भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है एवं यहाँ खेत जोत का अकार ट्रैक्टर से जुताई के अनुकूल नहीं है अतः खेत की जुताई बैलों से ही करना उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त बैल शक्ति आधारित ट्रैक्टर, बैल शक्ति आधारित जनरेटर/ बैटरी चार्जर आदि का भी निर्माण किया जा सकता है। बैल शक्ति आधारित रहट का प्रयोग सिंचाई के लिए सुदूर गावों में प्रयोग किया जाता है, हालांकि इसमें समय अधिक लगता है लेकिन डीज़ल आदि की बचत होती है।

नस्ल संरक्षण हेतु गऊशाला का महत्व एवं उपयोग: एक पहल

भाकृअनुप- राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा करनाल जिले में स्थित गऊशालाओं पर साहीवाल एवं हरियाणा नस्ल के संरक्षण एवं संवर्धन का कार्य आरम्भ किया गया है। इस परियोजना के अंतर्गत हरियाणा एवं साहीवाल गोवंशीय नस्लों की अच्छी दुग्ध उत्पादन क्षमता वाली संततियां पैदा की जाएंगीं। मादा संततियों को गायों के रूप में विकसित कर गऊशालाओं को आत्मनिर्भर बनाने में सहयोग किया जायेगा एवं नर संततियों का उपयोग निकटवर्ती गाँवो की गायों के संबर्धन के लिए किया जा सकता है। इससे क्षेत्र में हरियाणा एवं साहीवाल स्वदेशी गौ वंशीय नस्लों की संख्या में भी वृद्वि होगी एवं दुग्ध उत्पादन में भी वृद्वि होगी जिससे नस्लों का संरक्षण एवं विकास दोनों होगा। उल्लेखनीय है कि वर्तमान में भारतीय स्वदेशी गोवंशीय नस्लों के संरक्षण एवं संवर्धन पर विशेष जोर दिया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय गोकुल मिशन, कामधेनु योजना, राष्ट्रीय पशुधन मिशन एवं राष्ट्रीय

श्री कृष्ण गोपाल गऊशाला, जुण्डला (करनाल)

कृत्रिम गर्भाधान के प्रयोग से उत्पन्न बछड़े/बछियाँ

डेरी प्लान, नेशनल कामधेनु प्रजनन केंद्र (आंध्र प्रदेश एवं मध्य प्रदेश) जैसी महत्वाकांक्षी योजनाओं का शुभारम्भ किया गया है।

इस परियोजना के अन्तर्गत करनाल जिले में स्थित विभिन्न गऊशालाओं का सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण उपरांत श्री कृष्ण गोपाल गऊशाला जुंडला, श्री कृष्ण गोपाल गऊशाला निसिंग एवं श्री कृष्ण गोपाल गऊशाला उपलाना का चयन किया गया। इन तीनों गऊशालाओं पर साहीवाल एवं हरियाणा नस्लों का संरक्षण एवं संवर्धन राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल, राज्य पशुधन विभाग, करनाल, हरियाणा एवं गऊशालाओं द्वारा मिलकर सम्मिलित रूप से किया जा रहा है। इस परियोजना में वीर्य कि व्यवस्था, आंकड़ो के संग्रहण एवं उनके विश्लेषण, गायों की पहचान एवं उनका चयन तथा अन्य तकनीकी जानकारी आदि रा.प.अनु. संसाधन ब्यूरो द्वारा उपलब्ध कराई जा रही है। वीर्य को गऊशालाओं में सुरक्षित रखने हेतु तरल नत्रजन की व्यवस्था एवं गायों के स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था राज्य पशुधन विभाग करनाल द्वारा कराई जा रही है तथा गायों की देखभाल एवं रख-रखाव आदि गऊशालाएँ स्वयं कर रही हैं। उपरोक्त तीनों गऊशालाओं पर हरियाणा और ग्रेडेड हरियाणा एवं साहीवाल और ग्रेडेड साहीवाल, गायों को 'कर्ण चिन्ह' लगाकर चिन्हित किया गया है। इन गायों को गर्भित करने के लिए उत्तम वंशावली युक्त सांडों के वीर्य का इस्तेमाल किया जा रहा है। गर्भाधान हेतु कृत्रिम गर्भाधान तकनीक का इस्तेमाल किया जा रहा है। राज्य पशुपालन विभाग द्वारा तीनों गऊशालाओं पर स्वास्थ्य कैम्प का भी आयोजन किया जाता है एवं बीमार एवं कमजोर गायों का उपचार भी किया जाता है । इन गऊशालाओं पर कृत्रिम गर्भाधान करने हेतु प्रशिक्षित कर्मचारी कार्यरत हैं। पैदा हुए बछड़ों/बछियों का जन्म भार रिकार्ड किया जाता है एवं मादा गायों का दुग्ध उत्पादन का आंकड़ा संग्रहण किया जा रहा है। इस परियोजना के अंतर्गत अबतक कुल 46 बछड़ों/बछियों का जन्म हो चुका है, जिनमें 5 साहीवाल एवं 41 हरियाणा नस्ल के नवजात सम्मिलित हैं। चयनित गायों से गऊशालाओं पर दुग्ध उत्पादन में आशातीत बढ़ोत्तरी हुई है और इन गायों की अगली पीढ़ी के आने के उपरान्त इसमें और अधिक वृद्धि की सम्भावना है।

अत: गऊशालाओं को केंद्र में रखकर अगर कोई गोवंश सुधार नीति बनाई जाए तो देशी नस्ल संरक्षण, गोवंश विकास एवं दुग्ध उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। आजकल कई देशी/विदेशी कम्पनियाँ अच्छा दूध अर्थात्- ए2' दूध कि मार्केटिंग करके पैसा कमा रही हैं, जोकि भारतीय नस्ल कि गायों से प्रचुर मात्र में मिलता है।

> "मैं गाय को सम्पन्नता और सौभाग्य की जननी मानता हूँ। गाय से उत्पन्न होने वाले विभिन्न पदार्थों का उपयोग हमें समझना चाहिए और अन्य व्यक्तियों को भी समझाना चाहिए। अगर मेरे हाथ में शक्ति आ जाए तो मैं सबसे पहले देश में गो हत्या पर प्रतिबंध लगाऊंगा।"
>
> – महात्मा गाँधी

भारतीय भैंस नस्ल जैव विविधता

बद्री प्रसाद कुशवाहा[1], सुल्तान सिंह[2] एवं इन्द्रजीत सिंह[1]

[1]भाकृअनुप-केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार - 125001 (हरियाणा)

[2]भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी - 284001 (उत्तर प्रदेश)

विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन (2008) के अनुसार विश्व में 72 प्रजातियों की 18.5 करोड़ भैंसें हैं, जो विश्व के 50 से अधिक देशों में पायी जाती हैं, लेकिन बहुतायत में एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीप में फैली हैं, भारत, चीन तथा पाकिस्तान भैसों के मुख्य केन्द्र हैं, तथा इन देशों में कुल मिलाकर विश्व की तीन चौथाई भैंसें पायी जाती हैं। ये भैंसें इन देशों में दूध एवं मांस की आपूर्ति करती हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बोझा ढ़ोने के काम आती हैं। कुछ भैंसें यूरोप के देशों जैसे इटली, बुल्गारिया, रोमानिया इत्यादि में देखने को मिलती है। ये भैंसें कुछ दशकों पूर्व ही वहां पर ले जायी गयी हैं। दक्षिण अमेरिका के देश ब्राजील में भैसों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है तथा वहां के निवासियों के लिये भैंसें दूध एवं मांस का अच्छा स्रोत हैं। अपने देश में भैंसों की बहुतायत में उपलब्धता, उनकी उच्च उत्पादन क्षमता, शान्त स्वभाव, किसी भी तरह के वातावरण व भोजन में पलने की क्षमता, बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता तथा देश के कुल दुग्ध उत्पादन में उनकी भागीदारी (लगभग 55 प्रतिशत) को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि भैंसें हमारे देश एवं देशवासियों के लिये एक वरदान से कम नहीं हैं।

उद्भव एवं विकास

अभी तक निश्चित रूप से यह ज्ञात नहीं है कि भैंसों का उद्भव एवं पालतू बनाया जाना सबसे पहले कहां और कब हुआ था, लेकिन ऐसा माना जाता है कि भैंसों का उद्भव भारतीय महाद्वीप में, जंगली भैसों, जिनको "अरनी" कहा जाता है, से हुआ है। जंगली भैंसें आज भी असम के जंगलों में पायी जाती हैं। भैसों को पालतू पशु के रूप में लगभग 5000 वर्ष पूर्व पालना प्रारम्भ किया गया था। सिंधु घाटी की सभ्यता से मिले अवशेषों से यह पता चलता है कि भैंसें भारत में लगभग 4000 वर्ष पूर्व अवश्य पायी जाती थी। सिंधु घाटी की खुदाई

भदावरी भैंस (स्रोत: भाकृअनुप-भा.च.एवं चा.अ.सं., झाँसी)

में ऐसे सिक्के तथा मोहरें मिली हैं जिन पर भैसों के चिन्ह अंकित है। इराक में भी इसी काल से संबंधित अवशेषों में भैंस के वहां पाये जाने के संकेत मिलते हैं। ऐसा माना जाता है कि उस समय भैंसों को दूध अथवा मांस के लिये पाला जाता था। भैंसों से बोझा ढोने का काम बाद में शुरू किया गया। भैंस का उल्लेख अनेक दंत कथाओं एवं प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। महाकवि तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में भैंस का उल्लेख किया है:

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥
कुभंकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तज सेना संगा॥

हिन्दू पौराणिक लेखों के अनुसार यमराज भैंसे को सवारी के लिये प्रयोग करते हैं। मां दुर्गा तथा महिषासुर की लड़ाई का वर्णन भी हिन्दू पौराणिक ग्रंथों में मिलता है। स्पष्ट है कि भैंसों को प्राचीन काल से पाला जा रहा है। आज भैंस विश्व के अनेक देशों में पायी जाती है परन्तु इनकी बहुलता एशिया तथा अफ्रीका में पायी जाती है। भैंसों की कुछ संख्या यूरोपियन देशों जैसे इटली, बुल्गारिया तथा रोमानिया इत्यादि में भी देखने को मिलती है।

जैव विविधता

शारीरिक रचना, भार, उत्पादन स्तर तथा स्वभाव के आधार पर भैंसें दो प्रकार की होती है। एक तो नदी प्रजाति की है, जो आकार में बड़ी, गहरे रंग, मुड़े हुये सींग तथा अधिक दूध उत्पादन के लिये जानी जाती है। ऐसी भैसों की संख्या विश्व में लगभग 70 प्रतिशत है। दूसरी प्रजाति की भैंसे दलदलीय (स्वाम्प) कहलाती हैं, जो कि दलदली क्षेत्रों में पायी जाती है। यह प्रजाति चावल की खेती के लिये खेत तैयार करने के लिये अत्यधिक उपयुक्त समझी जाती हैं। ऐसी किस्म की भैंसों की संख्या विश्व में लगभग 30 प्रतिशत है। नदी प्रजाति की भैंसों में 50 गुणसूत्र होते हैं जबकि दलदलीय भैसों में गुणसूत्रों की संख्या 48 होती है। इन दोनों प्रजातियों में गुणसूत्रों की संख्या अलग-अलग होते हुए भी इनमें आपस में प्रजनन कराया जा सकता है तथा इनके समागम से उत्पन्न संतान प्रजनन योग्य होती है। नदी प्रजाति की भैसों का उद्गम भारत तथा मेसोपोटामिया में समझा जाता है। इस प्रजाति की मुर्रा, नीली-रावी, भदावरी, जाफरावादी, सूरती, पंढ़रपुरी आदि प्रमुख नस्लें हैं।

मुर्राह भैंस (स्रोत: भाकृअनुप-के.भै.अ.सं.,हिसार)

तालिका 1: भारतीय भैंस नस्लें

क्रमांक	नस्ल का नाम	राज्य/क्षेत्र	एक्सेसन नम्बर (पंजीकरण संख्या)
पंजीकृत नस्लें			
1.	मुर्रा	हरियाणा	India_Buffalo_0500_Murrah_01001
2.	नीली रावी	पंजाब	India_Buffalo_1600_Niliravi_01002
3.	भदावरी	उ.प्र. व मध्य प्रदेश	India_Buffalo_2010_Bhadawari_01003
4.	मेहसाना	गुजरात	India_Buffalo_0400_Mehsana_01004
5.	सुरती	गुजरात	India_Buffalo_0400_Surti_01005
6.	जाफराबादी	गुजरात	India_Buffalo_0400_Jaffarabadi_01006
7.	नागपुरी	महाराष्ट्र	India_Buffalo_1100_Nagpuri_01007
8.	पंढरपुरी	महाराष्ट्र	India_Buffalo_1100_Pandharpuri_1008
9.	मराठवाड़ी	महाराष्ट्र	India_Buffalo_1100_Marathwari_01009
10.	टोडा	तमिलनाडु	India_Buffalo_0018_Toda_01010
11.	बन्नी	गुजरात	India_Buffalo_0400_Banni_01011
12.	चिलका	ओडिशा	India_Buffalo_1500_Chilka_01012
13.	कालाहाण्डी	ओडिशा	India_Buffalo_1500_Kalahandi_01013
अपंजीकृत नस्लें			
1.	गोदावरी	आन्ध्र प्रदेश	-
2.	स्वाम्प	असम	-
3.	तराई	उत्तराखंड	-
4.	माण्डा/परलखमुण्डी	आंध्र प्रदेश व ओडिशा	-
5.	जेरांगी	ओडिशा व आंध्र प्रदेश	-
6.	संभल पुरी	ओडिशा व छत्तीसगढ़	-
7.	साउथ कनारा	कर्नाटक	-
8.	कुटानाद	केरल	-
9.	असमीज/मोगूर	असम	-
10.	सिक्किमीज	सिक्किम	-

दलदलीय प्रजाति की भैसों का उद्भव स्थल चीन माना जाता है। वर्तमान में दलदलीय भैसें भारत, चीन, थाईलैण्ड मलेशिया, फिलीपींस आदि देशों में पायी जाती हैं। इस प्रकार की भैसों के सींग आकार में बड़े तथा बाहर की ओर निकले हुये अर्ध-चन्द्राकार होते हैं। मुंह, पैर तथा पूँछ में हल्के सफेद रंग की धारियाँ या धब्बे पाये जाते हैं। थाईलैण्ड और वियतनाम में पायी जाने वाली दलदलीय भैंसों का वजन 700-800 किग्रा. होता है, वहीं दक्षिण चीन में पायी जाने वाली वयस्क दलदलीय भैसों का वजन 250 किग्रा. के आसपास होता है। इन दोनों प्रजाति की भैसों के अतिरिक्त अफ्रीकन भैंसों की एक प्रजाति है जिसे केप कहते हैं, इसमें गुणसूत्रों की संख्या 52 होती है। कांगो प्रजाति की भैंसों में गुण सूत्रों की संख्या 54 होती है। अफ्रीकन भैंसें अफ्रीका में सहारा रेगिस्तान, इथोपिया, सोमालिया, जाम्बिया, जिम्बाबवे, नामीविया, वोस्तवाना, मोजाम्बिक, दक्षिण अफ्रीका,

पंढ़रपुरी भैंस (स्रोत: डॉ. ए.पी. फरनान्डिस एम.पी. के.वी., कोल्हापुर)

बन्नी भैंस

केन्या तथा तंजानिया आदि देशों में पायी जाती है। जंगली भैंसें, जिन्हें अरनी कहते है आकार में अफ्रीकन भैसों से थोड़ा बड़ी होती हैं, जो मुख्यतया भारत तथा दक्षिण पूर्व एशिया में पायी जाती हैं। वर्तमान में इनकी संख्या लगभग 4000 है तथा इनकी संख्या लगातार घट रही है। जंगली भैंसें साफ पानी के स्रोतों एवं नदी के किनारे रहना पसंद करती हैं। ये अच्छी तैराक होती हैं तथा अपना ज्यादातर समय पानी में गुजारती हैं।

हमारे देश में भैंसों की 13 नस्लें पंजीकृत की गयी हैं। नस्लों के बारे में विस्तृत जानकारी तालिका 1 में दी जा रही है। विश्व की सबसे अच्छी और दुधारु भैंसें भारतवर्ष एवं पाकिस्तान में पायी जाती हैं। हमारे देश में पायी जाने वाली भैस की नस्लों में उत्पादन स्तर, वजन एवं आकार, भोजन की आवश्यकता तथा स्वास्थ्य संबंधी लक्षणों में बहुत भिन्नता पायी जाती है। उदाहरण के तौर पर मुर्रा तथा नीली-रावी भैसें जो वजन में 500-600 किग्रा. होता है, अपनी दुग्ध उत्पादन क्षमता के लिये जानी जाती है एवं पशुपालकों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय हैं। ये नस्लें मूलतः पंजाब एवं हरियाणा में पायी जाती हैं। इनमें प्रति ब्यांत दूध उत्पादन 2000-4000 किग्रा. होता है। जाफराबादी नस्ल गुजरात के

दलदलीय भैंसें (स्रोत: डॉ. जी.सी. दास, ए.ए.यू. खानापारा, आसाम)

नीली रावी भैंस (स्रोत: भाकृअनुप-रापअनुसं ब्यूरो, करनाल)

जूनागढ़ क्षेत्र में पायी जाती हैं तथा अपने भारी भरकम शरीर के लिये जानी जाती हैं। इनका औसत भार 600-700 किग्रा. होता है लेकिन इस नस्ल में 1000 किग्रा. भार के पशु मिलना भी आम बात है। दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से यह एक उत्तम नस्ल है। जो प्रति ब्यांत 2200-4500 किग्रा. तक दूध देती है। लेकिन इनका शरीर भार अधिक होने की वजह से इसकी भोजन की आवश्यकता दूसरी नस्लों की तुलना में ज्यादा है। उत्तर प्रदेश में भदावरी नस्ल पायी जाती है जो कि दूध में अधिक वसा के लिये प्रसिद्ध है। इसके दूध में औसतन 8.5 प्रतिशत वसा पाई जाती है जो 6 से लेकर 14 प्रतिशत तक हो सकती है। भदावरी से औसतन 1400-2000 किग्रा. दूध प्रति ब्यांत लिया जा सकता है। औसत शारीरिक भार 350-400 किग्रा. होता है। मध्यम आकार होने की वजह से इसके चारे दाने की आवश्यकता अन्य नस्लों की तुलना में कम होती है। इस कारण यह छोटे, मध्यम एवं गरीब पशुपालकों के लिये एक उत्तम नस्ल है। सूरती नस्ल की भैंस राजस्थान तथा गुजरात में पायी जाती है। यह उच्च भोजन उपयोग दक्षता (फीड एफीसियन्सी) के लिये जानी जाती है। पंढ़रपुरी नस्ल की भैंस महाराष्ट्र के कोल्हापुर क्षेत्र में पायी जाती है। यह मध्यम आकार की होती है तथा इसकी दूध उत्पादन क्षमता 1200-1400 किग्रा. है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इससे थोड़ी-थोड़ी देर के अंतराल से कई बार दूध निकाला जा सकता है। कोल्हापुर क्षेत्र में आमतौर पर पशुपालक भैंस को दूध ग्राहकों के दरवाजे-दरवाजे पर ले जाता है तथा दूध निकालकर देता है। इसी कारण इस भैंस को मिल्क वेंडिंग मशीन भी कहते हैं। बन्नी नस्ल की भैंस गुजरात के कच्छ में पायी जाती है। दूध उत्पादन, आकार तथा वजन में मुर्रा के बराबर है। इस नस्ल को पालने वाले बन्नी चरागाह में रहते हैं। इस नस्ल की विशेषता यह है कि पशुपालक शाम को दूध निकालने के पश्चात् इसको छोड़ देता है। भैंस अपने आप रात भर जंगल/चरागाह में रहती है तथा सुबह पशुपालक के पास लौट आती है। सुबह पशुपालक दूध निकालने तथा दाना खिलाने के पश्चात् पुनः जंगल में छोड़ देता है। चिल्का नस्ल की भैंसें उड़ीसा में चिल्का झील के आस-पास के क्षेत्र में पायी जाती हैं। इस नस्ल के पशु चिल्का झील में उगे हुये खरपतवारों को चरकर अपना गुजारा करते हैं। इस नस्ल की भैंसें चिल्का झील में गहराई में पानी के अंदर उगे हुये खरपतवारों को पानी में डुबकी लगाकर चरने की क्षमता रखती हैं। इन नस्लों के अतिरिक्त और बहुत सी नस्लें हैं, जिनकी अपनी विशेषताएं हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि हमारे यहां पायी जाने वाली भैंसों में बहुत अधिक विभिन्नता विद्यमान है। नस्लों में यह विशेषतायें, किन्ही विशेष परिस्थितियों, क्षेत्र एवं उस क्षेत्र की आवश्यकताओं, वहां पर उपलब्ध भोजन एवं चारे के गुण एवं मात्रा के आधार पर, हजारों वर्षों के प्राकृतिक चयन के फलस्वरूप विकसित हुई हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस जैव विविधता को बचाये रखा जाये तथा भविष्य में सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाये। किन्हीं एक या दो नस्लों को अत्यधिक प्रोत्साहन देने के लिये अन्य नस्लों के पालन एवं उत्पादन को हतोत्साहित न किया जाये।

राजस्थान के किसानों की आजीविका में मारवाड़ी बकरी का महत्व

हेमलता चौहान, जी सी गहलोत एवं हर्षवर्धन मीणा

राजस्थान पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर - 334001 (राजस्थान)

बकरी (कैपरा हिर्कस) प्रारंभिक रूप से दक्षिण-पश्चिम एशिया और पूर्वी यूरोप में मानव द्वारा पालतू जानवरों में से एक है। यह कुल मांस उत्पादन का लगभग 19% और भारत में कुल दूध उत्पादन का लगभग 4% योगदान देती है (बीएएचएफएस, 2015)। मांस, दूध, खाल और खाद के उत्पादन के माध्यम से बकरी पालन में लगे छोटे, सीमांत किसानों और भूमिहीन मजदूरों की बड़ी संख्या में आजीविका में यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बड़े जुगाली करने वाले पशुओं की तुलना में बकरी लघु पीढ़ी के अंतराल, तीव्र विकास दर एवं अधिक पर्यावरणीय अनुकूल होती है। बकरी से उत्पादित दूध, प्रोटीन, आवश्यक विटामिन और खनिजों का महत्वपूर्ण स्रोत है।

भारत 28 पंजीकृत नस्लों के रूप में बकरी आनुवंशिक संसाधनों का एक समृद्ध भंडार है। दो प्रमुख महाद्वीपों, एशिया और अफ्रीका में कुल विश्व बकरी आबादी का क्रमशः 59.7% और 33.8% पाया जाता है । बकरी की आबादी के मामले में भारत दुनिया में दूसरे स्थान पर (135.17 मिलियन) है। कुल बकरी आबादी में से, शुद्ध नस्ल और वर्गीकृत बकरी आबादी का अनुपात क्रमशः 26.97% और 11.77% (पशुधन जनगणना 2012) है। भारतीय उपमहाद्वीप की कुल बकरी आबादी का राजस्थान में 16.03% पाया जाता (21.66 मिलियन) है। राजस्थान में मारवाड़ी, सिरोही, झकराना और बरबरी जैसी प्रमुख बकरी नस्लें पायी जाती हैं। राष्ट्रीय बकरी आबादी में बहुत कम हिस्सा (3.82%) होने के बावजूद राज्य में बकरी आबादी (पशुधन जनगणना, 2012) में 0.76% की वृद्धि दर्ज की गयी है। राजस्थान की मारवाड़ी बकरी नस्ल एक द्विकाजी पशु है, जो तीव्र वृद्धि, कुशल प्रजनन, उच्च नमक सहिष्णुता के लिए जानी जाती है और इसे क्षेत्र की किसी अन्य प्रजाति की तुलना में कम पानी की आवश्यकता होती है। मारवाड़ी बकरी भारत में दूसरी सबसे अधिक आबादी वाली बकरी नस्ल है जो भारत की कुल बकरी आबादी का लगभग 5.31% (7.18 मिलियन) है। मारवाड़ी बकरी का प्रजनन क्षेत्र जैसलमेर, बाड़मेर, जालौर, पाली, जोधपुर, नागौर एवं बीकानेर जिलों तक फैला हुआ है। मारवाड़ी बकरी नर, मुख्य रूप से छोटे सिर और पतली पूंछ के साथ काले रंग के होते हैं। मादा के थन छोटे और गोल चुचुक के साथ काफी अच्छी तरह से विकसित होते हैं। कान छोटे और फ्लैट हैं। दोनों लिंगों में छोटे-छोटे सींग, ऊपर और पीछे की तरफ मुड़े होते हैं।

राजस्थान में बकरी मांस में मुख्य हिस्सा मारवाड़ी बकरी द्वारा उत्पादित होता है। मांस उत्पादन के लिए पशु विकास महत्वपूर्ण है। विकास एक महत्वपूर्ण चरण है जो सीधे या परोक्ष रूप से पशुधन में अधिकांश उत्पादन और प्रजनन गुणों को प्रभावित करता है। वास्तव में, बकरी उत्पादन का अर्थशास्त्र विकास के प्रदर्शन पर निर्भर करता है क्योंकि वजन और उच्च वृद्धि दर वाले बच्चे कम समय में अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करेंगे। तेजी से विकास झुंड उत्पादकता का एक महत्वपूर्ण घटक है।

विकास की विशेषताएं पर्यावरण की स्थितियों के संबंध में प्रजातियों की अनुकूलता की महत्वपूर्ण संकेतक भी हैं। ये गुण विभिन्न

मारवाड़ी मादा (स्रोत: रा.प.अनु.सं. ब्यूरो, करनाल)

आनुवंशिक और गैर आनुवंशिक कारकों जैसेकि प्रजनन, लिंग, मौसम और जन्म के वर्ष से प्रभावित होते हैं। जीवन के शुरुआती चरणों में उपलब्ध विकास लक्षण आनुवंशिक लाभ की दर में काफी सुधार कर सकते हैं और जीवन के बाद के चरणों में दिखाई देने वाले लक्षणों के संकेतक के रूप में कार्य कर सकते हैं ।

एक पशु के शरीर का वजन अंत में उत्पादन और प्रजनन प्रदर्शन के स्तर को प्रभावित करता है। शरीर के वजन के आँकलन के लिए निर्णय लेने में त्रुटियों के कारण अपने बकरी संसाधनों के विपणन के दौरान किसानों को गंभीर आर्थिक नुकसान होता है। शरीर के वजन के आँकलन में शुद्धता भी कई कारणों जैसेकि भोजन, प्रबंधन, स्वास्थ्य देखभाल और प्रजनन के लिए आवश्यक है। व्यस्क नर व मादा मारवाड़ी बकरी का शरीर भार क्रमशः लगभग 39 एवं 31 किग्रा. होता है, जबकि नर मेमने का शरीर भार 2.63 किग्रा. एवं मादा मेमने का लगभग 2.53 किग्रा. होता है।

बकरियां ज्यादातर किसानों द्वारा मुक्त प्रबंधन प्रणाली के तहत पाली जाती हैं। बकरी को चरागाह भूमि पर हर दिन 6-8 घंटे चराई के साथ रखा जाता है। किसानों द्वारा चराई के साथ पूरक आहार गर्भवती बकरियों, बच्चों और प्रजनक नरों को एवं विशेष रूप से चारा कमी की स्थिति में उपलब्ध कराया जाता है। ग्वार चुरी, ग्वार कोर्मा, तेल केक युवा नर और गर्भवती मादा को पूरक चारा के रूप में दिया जाता है। खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरिया) और पाला पत्तियां (ज़िज़िफस न्यूम्युल्युलिया) बच्चों के लिए उपयोग की जाती हैं। बकरी के बच्चे को 3 महीने तक स्तनपान कराया जाता है इसके बाद स्तनपान के साथ पूरक चारा उपयोग किया जाता है। बकरी का दूध मानव बच्चों के लिए भी अच्छा होता है। बकरी को गरीब किसानों की गाय भी कहा जाता है क्योंकि यह किसानों की दूध की आवश्यकता को पूरा करती है।

उपसंहार

राजस्थान में मारवाड़ी बकरी महत्वपूर्ण पशु है। बकरी पालन करना गरीब किसानों के लिए बहुत किफायती है क्योंकि यह कम निवेश में मांस, दूध, खाल और खाद जैसी सभी चीजें प्रदान करता है। इसके साथ इसे कम सुविधाओं की भी आवश्यकता होती है तथा यह शुष्क वातावरण में अधिक अनुकूलित है।

मारवाड़ी बकरियों का रेवड़

वनराजा : छत्तीसगढ़ राज्य के लिए एक उपयुक्त बैकयार्ड कुक्कुट

के मुखर्जी, मोहन सिंह, दीप्ति किरण बरवा, केशर परवीन एवं असीत जैन

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग - 491001 (छत्तीसगढ़)

छत्तीसगढ़ एक नवनिर्मित विकासशील प्रदेश है। इस राज्य की 80 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जिनकी आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि एवं पशुपालन है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग आहार में, मध्यम स्तर की ऊर्जा एवं निम्न स्तर की प्रोटीन लेते है जिसमें अनाज मुख्य रूप से लिया जाता है तथा मंहगे भोजन जैसे मछली, मांस और अंड़े का उपयोग कभी-कभी ही किया जाता है। ग्रामीण परिवारों द्वारा लिये जाने वाले वानस्पतिक प्राटीन में, महत्वपूर्ण एवं आवश्यक एमीनों एसिड जैसे, लाइसिन और मिथयोनिन की कमी होती है जिसके कारण प्रोटीन निहित कुपोषण होता है। आसानी से उपलब्ध मछली, मांस और अंडे के उपयोग से बढ़ते बच्चे, गर्भवती महिलाओं एवं स्तनपान कराने वाली महिलाओं को कुपोषण से बचाया जा सकता है। बैकयार्ड मुर्गियाँ आसानी से देशी मुर्गियों की तरह ही कम लागत में पाली जा सकती हैं। बैकयार्ड मुर्गी पालन से ग्रार्मीणों के आर्थिक स्थिति को मजबूत किया जा सकता है एवं आहार में पोषक तत्वों के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

वनराजा बहुरंगी, मांस एवं अंडा उत्पादन करने वाली द्विकाजी बैकयार्ड मुर्गी है। इसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कुक्कुट अनुसधान निदेशालय हैदराबाद, में देशी एवं उन्नत प्रजातियों के संकरण द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में मुर्गी पालन एवं बैकयार्ड कुक्कुट पालन हेतु विकसित किया गया है। वनराजा में उच्च रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है, जिससे कि इसको आसानी से ग्रामीण परिवेश में पाला जा सकता है। छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय, दुर्ग के अंर्तगत पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के परियोजना के तहत वनराजा की इकाई शुरू की गई है, जिसका मुख्य उद्देश्य वनराजा के चूजे उचित मुल्य में मुर्गीपालकों को उपलब्ध कराकर मुर्गी पालन व्यवसाय को प्रोत्साहित करना एवं भूमिहीन तथा सीमांत कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाना है।

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय में कुक्कुट पालन के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है।

वनराजा चूजे

शारीरिक भार एवं वृद्धि

वनराजा एक बहुरंगी द्विकाजी बैकयार्ड मुर्गी है एवं इसका पालन अंड़े एवं मांस दोनों के लिए किया जाता है। वनराजा मुर्गियों का शून्य से आठ हफ्तों का औसतन वजन क्रमशः 38.5, 72.3, 151.6, 240.7, 350.2, 518.7, 635.4, 760.6 एवं 980.4 ग्रा. पाया गाया है, तथा बीसवें हफ्ते में औसत वजन 2566.3 ग्रा. पाया गया। इनकी औसत साप्ताहिक वजन वृद्धि एक से आठ हफ्तों की आयु में क्रमशः 33.8, 79.3, 89.1, 109.5, 168.5 116.7, 125.2 एवं 219.8 ग्रा. पायी गयी । एक से आठ हफ्तों की आयु में औसत दाना रूपातंरण दक्षता क्रमशः 1.45, 1.67, 2.32, 2.72, 2.53, 2.85, 2.96 और 2.33 पायी गयी तथा बीसवें हफ्ते में औसतन 3.78 पायी गयी।

प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता

प्रथम अंडा उत्पादन पर औसत आयु 20 हफ्ते और अधिकतम अंडा देने की अवधि 35 - 44 हफ्ते है तथा वनराजा मुर्गियाँ 72 हफ्ते की आयु तक अडें देती है। औसत वार्षिक अंडा उत्पादन प्रति मुर्गी 188 अंडे है। वनराजा के अंडे हल्के से गहरे भूरे रंग के होते हैं एवं अंडे का औसत वजन 53.33 ग्रा. होता है।

प्रक्षेत्र में वनराजा

वनराजा मुर्गियाँ देशी मुर्गियाँ की तरह रंगीन होती हैं जिस वजह से यह ग्रामीणों में लोकप्रिय हो रही हैं। वनराजा मुर्गियाँ देशी मुर्गियाँ की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती हैं और अडें भी ज्यादा देती हैं।

वनराजा मुर्गियाँ

रख-रखाव

चूजों की देखभाल और प्रबंध को ब्रूडिंग कहा जाता है। चूजों में जन्म से चार सप्ताह तक शरीर के तापमान को संतुलित करने की क्षमता नहीं होती है इसलिए उन्हें कृत्रिम उष्मा प्रदान करना अति आवश्यक होता है। वनराजा के चूजों की ब्रूडिंग की व्यवस्था जमीन पर अथवा पिंजरे में की जा सकती है। जमीन पर ब्रूडिंग की व्यवस्था के लिए 2 - 3 इंच मोटी भूसी या छोटे - छोटे पैरा के टुकड़ों की परत समानरूप से जमीन पर बिछानी चाहिए। शुरू के दो-तीन दिनों तक इस बिछावन के ऊपर अखबार बिछा कर इस पर दाना देना चाहिए। ब्रूडर हेतु स्थानीय उपलब्ध वस्तु जैसे बांस या लकड़ी से बनी टोकरी या लकड़ी का डब्बा आदि इस्तमाल में लाया जा सकता है। 4x4 इंच एवं 1.25 इंच ऊँची टोकरी में चार 60 वाट बल्ब लगाने से कम से कम 250 चूजों को उष्मा मिल जाती है, साथ ही साथ चूजों को बिखरने से बचाने के लिए 1.5 फीट ऊँची स्टील या टीन की प्लेट को ब्रूडर के चारों ओर रखा जाता है। ब्रूडर में अनुकुल तापमान होने से वृद्धि दर अधिक होती है तथा चूजों की मृत्यु दर में भी कमी आती है।

मुर्गियों को बैकयार्ड तरीके से पालने हेतु किसी विशेष आवास की आवश्यकता नहीं होती, इन्हें रखने की व्यवस्था कम खर्च में बांस, जाली और टारपोलिन से की जा सकती है। मुर्गी घर जमीन से करीब 1.5-2.0 फीट ऊंचा होना चाहिए। बिछावन के लिए धान की भूसी, पैरा (छोटे-छोटे टुकड़े) का उपयोग किया जा सकता है। सप्ताह में एक बार इस बिछावन को पलट देना चाहिए, जिससे बिछावन सूखा रहे। बरसात के मौसम में बिछावन को सूखा रखने के लिए चूना/ सुपर फास्फेट 1 किलो/ 10 फीट^2 का उपयोग करना चाहिए।

खाद्य-आहार

चूजों को छः सप्ताह की आयु तक संतुलित आहार बहुत जरूरी है। इसके पश्चात घरों की अनुपयोगी जैविक वस्तुएं जैसे सब्जियों के बचे हुए हिस्से या अनाज आदि इन मुर्गियों को दिये जा सकते हैं। मुर्गियों के लिए सन्तुलित आहार बनाने के लिए ऊर्जा 65-70%, प्रोटीन 25-30%, चूना पत्थर 5-7%, डाई केल्शियम फास्फेट 1-2%, नमक 0.5%, मिनरल मिक्सचर 0.5%, और विटामिन मिक्सचर 0.1% होना चाहिए। ऊर्जा के लिए मक्का, बाजरा, रागी एवं गेहूँ तथा प्राटीन हेतु सोयाबीन मील, मूंगफली केक, फिश मील, मीट मील आदि को उपयोग में लाया जा सकता है। पीने हेतु साफ बरतन में स्वच्छ एवं पर्याप्त पानी देना चाहिए।

महिला मुर्गी पालन

चूजों की देखभाल

भारवाहक अश्वजातीय पशु: एक उपेक्षित आनुवंशिक संसाधन

हिमानी शर्मा, रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं एम एस टांटिया

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001 (हरियाणा)

मानव जाति के उत्थान में अश्वजातीय पशुओं का लगभग 2000-3000 ई. से ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन पशुओं ने मनुष्य के हर वर्ग, राजा से गरीब किसान तक तथा बुद्धिजीवी से लेकर अशिक्षित वर्ग तक बराबर सेवा की है। समकालीन भारत में इस प्रजाति का स्वामित्त्व मुख्यतः सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित भूमिहीन, सीमान्त और छोटे किसानों के पास रह गया है।

भारवाही या कृषि शक्ति (ड्राफ्ट पावर) की मांग की पूर्ति के लिए ग्रामीण समुदाय, लाखों कार्यरत अश्वजातीय पशु संसाधनों पर निर्भर हैं जिसमें गधे, खच्चर टट्टू एवं घोड़े सम्मिलित हैं। भारतीय जनसंख्या के एक विशाल भाग की जीविका इन्हीं की कार्यक्षमता के कारण गतिशील है। देश के कई उद्योगों की उत्पादन श्रृंखला में भी भारवाहक अश्वजातीय पशु महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य करते हैं। "बोझा ढ़ोने वाले पशु" के नाम से सम्बोधित किये जाने वाले ये अश्वजातीय पशु ग्रामीण भारत के साथ-साथ अन्य कई विकासशील देशों की प्रगति में भी शक्ति स्त्रोत का कार्य करते हैं। फिर भी उनकी भूमिका और योगदान को राष्ट्रीय एवं वैश्विक नीतियों में कमतर समझा जाता है। यद्यपि कार्यशील भारवाहक पशु तकनीकी रूप से पशुधन की परिभाषा के अंतर्गत निहित हैं फिर भी नीति निर्माता उन्हें प्राथमिकता नहीं देते हैं। इसका मूल कारण इनका खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने में सक्षम नहीं होना है। यही कारण है कि उन्हें साधारण मानस की जीविका उपार्जन में महत्त्वपूर्ण कारक भी नहीं माना जाता है।

खाद्य सुरक्षा का अर्थ मनुष्य के भोजन में पोषक तत्वों की पूर्ति से सम्बन्धित है। अतः उन्हीं पशुओं को महत्त्व दिया जाता है जिनका सम्बन्ध सीधे-सीधे खाद्य सुरक्षा से है क्योंकि वो पौष्टिक खाद्य उत्पाद प्रदान करते हैं। इसके विपरीत वो पशुधन जोकि खाद्य उत्त्पति से सम्बन्धित नहीं हैं जैसे कि गधे, घोड़े एवं खच्चर इत्यादि इनकी उपेक्षा स्वभाविक है। परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि इस प्रकार के पशु ड्राफ्ट पावर उपलब्ध करवाते हैं। इनका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई नहीं देता है परन्तु देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर इनका वित्तीय प्रभाव अवश्य है। दुर्भाग्य से, खाद्य उत्त्पति सम्बन्धित पशुओं को तो पशुधन माना जाता है परन्तु भारवाही पशुओं को वास्तविकता के धरातल पर पशुधन वर्ग में सम्मिलित नहीं किया जाता है। यह लेख इस विषय की ओर ध्यान केन्द्रित करता है कि बेहतर एवं कार्यरत अश्वजातीय पशुओं के कल्याण पर ध्यान देना उन तक ही सीमित नहीं है अपितु यह उन लोगों को भी प्रभावित करता है जिनका जीवन यापन इन पर निर्भर है। पशु कल्याण एवं मानव कल्याण को अलग-अलग नहीं देखा जाना चाहिए अपितु इनके बीच की कड़ियों एवं बिन्दुओं को जोड़ने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इसके लिए अधिक समेकित, एकीकृत और सहयोगी दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

भारत में अश्वजातीय पशुओं की वर्तमान स्थिति

विकासशील देशो में कार्यशील गधों, घोड़ों एवं खच्चरों की संख्या लगभग 1 करोड़ 12 लाख है। दुनिया के लगभग 2% और एशिया महाद्वीप के लगभग 5% अश्वजातीय पशु भारत में पाए जाते हैं। वर्तमान में इनकी कुल संख्या 15 लाख है जिनमें अधिकाँश संख्या गधे, खच्चर व टट्टू की है। यह पहाड़ी तथा शुष्क वातावरण वाले क्षेत्रों में रहने वाली ग्रामीण आबादी को अपनी भारवाही शक्ति द्वारा आजीविका प्रदान करते हैं। इनकी कुछ आबादी सेना, पुलिस, सीमा सुरक्षा बल, रेसिंग उद्योग तथा खेल में भी पाई जाती है।

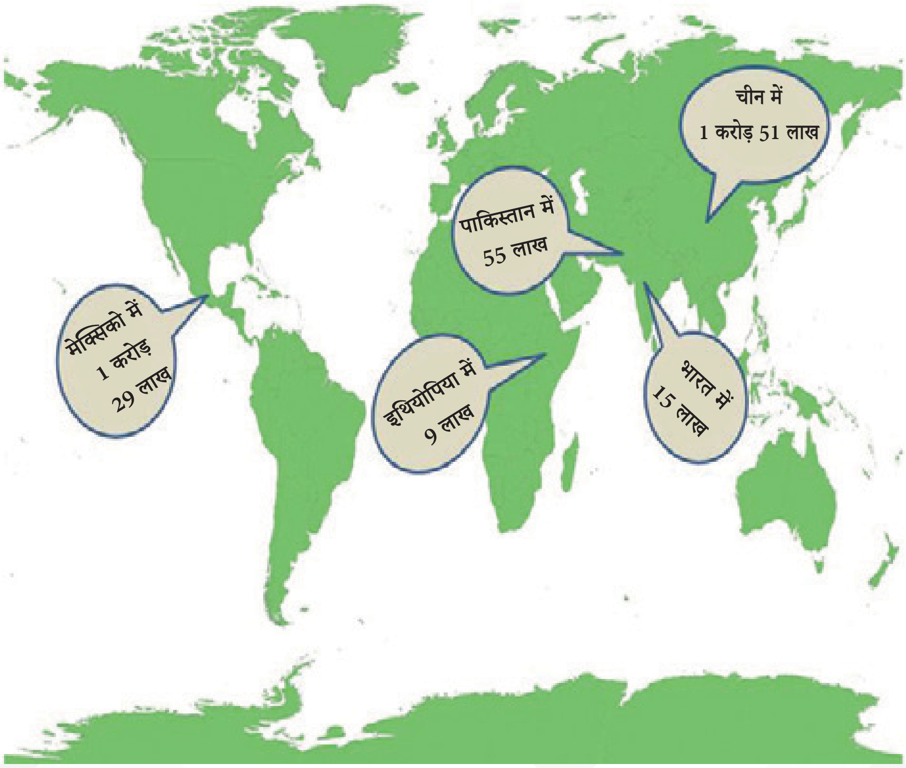

विश्व में अश्वजातीय पशुओं के वितरण के प्रमुख क्षेत्र

पिछले सात दशकों के दौरान इनकी समग्र संख्या में लगातार गिरावट आई है। 2007 से 2012 के दौरान गधों की संख्या में अधिकतम गिरावट 27.1% रही जबकि खच्चर की संख्या में 43.07% की वृद्धि दर्ज की गई।

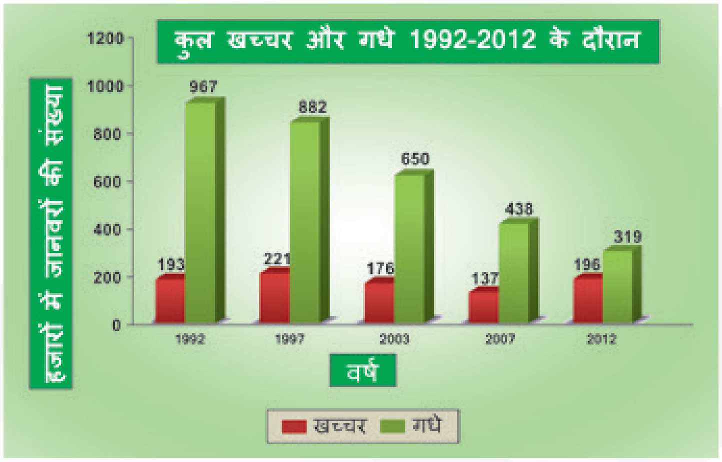

विभिन्न दशकों में अश्वजातीय पशुओं की संख्या में प्रवृत्ति

पंजीकृत नस्लें

घोड़ों की सात तथा गधे की एक नस्ल राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा पंजीकृत की गई हैं जिनका ब्यौरा इस प्रकार है:

भूटिया

इस नस्ल के घोड़े हिमालय पर्वत के निचले क्षेत्रों तथा भूटान में पाए जाते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में अधिक संख्या में पाए जाने वाले ये टट्टू प्राय: भूरे, बादामी व चितकबरे रंग के होते हैं। इनकी ऊँचाई लगभग 1.30-1.32 मीटर और भार 275-360 किग्रा. तक होता है। ये मुख्यत: सवारी करने और बोझा ढ़ोने के काम आते हैं।

भूटिया

काठियावाड़ी

इस नस्ल के घोड़े पूरे भारत में फैले हुए हैं, परन्तु मुख्य रूप से यह गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र में पाए जाते हैं। इनकी ऊँचाई लगभग 1.30-1.50 मीटर और वक्ष परिधि 1.37-1.52 मीटर

काठियावाड़ी

होती है। इनका उपयोग मुख्यत: घुड़सवारी, घुड़दौड़, खेलों, सुरक्षा व सफारी में होता है।

स्पीति

ये घोड़े हिमाचल प्रदेश की स्पीति घाटी में पाए जाते हैं। इनकी ऊँचाई लगभग 1.20 मीटर तथा शारीरिक सरंचना मजबूत होती

स्पीति

है। स्पीति नस्ल के घोड़े ठंडे भागों में रहने तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को भी सहन करने में सक्षम होते हैं। यह दुर्गम क्षेत्रों में आसानी से चलने और बोझा ढ़ोने के काम के लिए उत्तम माने जाते हैं।

मारवाड़ी

यह घोड़े राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में पाए जाते हैं। इनकी ऊँचाई 1.40-1.50 मीटर के लगभग होती है तथा ये प्रतिकूल परिस्थितियों में अल्प आहार पर जीवित रह सकते हैं। यह प्राय: चुस्त, सुंदर एवं

मारवाड़ी

शांत प्रकृति के होते हैं तथा इनका प्रयोग खेलों, घुड़दौड़, सफारी, घुड़सवारी व अन्य कार्यों में किया जाता है।

जन्सकारी

इस नस्ल के घोड़े लेह-लद्दाख क्षेत्र में पाए जाते हैं। शुद्ध नस्ल के जन्सकारी घोड़े भूरे-श्वेत रंग के होते हैं। ये घोड़े चैतन्य दिखते हैं और इनकी ऊँचाई 1.20-1.40 मीटर होती है। इनका उपयोग पहाड़ी क्षेत्रों में यातायात, सामान एवं सवारी ढ़ोने तथा पोलो खेलने में किया जाता है।

जन्सकारी

मणिपुरी

इस नस्ल के घोड़े मणिपुर एवं असम में पाए जाते हैं। ये आकर में छोटे होते हैं और इनकी ऊँचाई 1.10-1.30 मीटर तक होती है। शरीर भार लगभग 300 किग्रा. होता है। मणिपुरी घोड़े सुन्दरता एवं गति के लिए प्रसिद्ध हैं। मणिपुरी घोड़ों का उपयोग यातायात, सामान व सवारी ढ़ोने तथा पोलो खेलने के लिए किया जाता है।

मणिपुरी

कच्छी-सिन्धी

घोड़े की इस नस्ल का मूल स्थान गुजरात के कच्छ जिले की भुज तालुका के बन्नी एवं खावड़ा स्थान है, इसीलिए स्थानीय लोग इन्हें कच्छी के नाम से जानते हैं। इसका प्रजनन क्षेत्र पाकिस्तान के सिंध

कच्छी-सिन्धी

के बहुत नजदीक है अतः इसका नाम कच्छी- सिन्धी रखा गया है। इनकी ऊँचाई लगभग 1.45 मीटर तक होती है और शरीर का भार लगभग 300 किग्रा. होता है। इनका उपयोग मुख्यतः परिवहन, सवारी, खेल, सफारी व व्यापार में किया जाता है।

स्पीति गधा

स्पीति गधे समुद्र तल से 3000 से 4200 मीटर के मध्य स्थित लाहौल-स्पीति के स्पीति क्षेत्र और किन्नौर जिले के पूह क्षेत्र में पाए जाते हैं। ये गधे बहुत मजबूत और निश्चित रूप से अविश्वसनीय सहनशीलता वाले होते हैं। ये मुख्य रूप से भूरे, काले और काले-भूरे रंग के होते हैं। इनका उपयोग मुख्यतः परिवहन में होता है।

स्पीति गधा

कामकाजी अश्वजातीय पशुओं पर आश्रित कार्य

जनसाधारण की जीविका के कई क्षेत्रों में इनका योगदान है जिसमें कृषि, निर्माण कार्य, पर्यटन, खनिज निष्कर्षण एवं सार्वजनिक परिवहन शामिल हैं। यह अनुमान है कि विश्व स्तर पर मुख्य रूप से गरीब एवं कम विकसित देशों में लगभग 6 करोड़ लोग इन पर आश्रित हैं। आजीविका सम्बन्धित नीतियों में खाद्य उत्पादक पशुधन को मूल्यवान घरेलू सम्पत्ति की भांति देखा जाता है। दूसरी तरफ वो पशुधन जो खाद्य उत्पादक नहीं हैं उनके योगदान की उपेक्षा की जाती है। गधे, घोड़े एवं खच्चर परम्परागत रूप से खाद्य उत्पादक पशुओं की कई प्रकार से सहायता करते आये हैं। कई अद्वितीय कार्य केवल इसी वर्ग के पशु ही करते हैं जिसमें मुख्यत: अन्य पशुओं के लिए भोजन और पानी के वितरण द्वारा पशुपालन एवं उत्पादन का समर्थन करना, घर के कामकाज एवं श्रम के द्वारा महिलाओं की सहायता करना तथा सामाजिक अवसर प्रदान कर विभिन्न समुदायों में महिलाओं को सक्षम बनाना इत्यादि सम्मिलित हैं। इसीलिए कार्यशील अश्वजातीय पशु सकारात्मक आजीविका का समर्थन करने वाली सम्पत्ति की तरह हैं।

स्थायी आजीविका में योगदान देने के साथ-साथ, यह पूंजीगत सम्पत्तियों की सभी श्रेणियों को बनाए रखने और उनकी वृद्धि में विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक भूमिकाएँ भी निभाते हैं। यद्यपि पशुओं के मालिक, विशेषतौर पर महिलाएं इनके योगदान से भली भांति अवगत हैं परन्तु उच्चस्तर की नीतियों, अनुसन्धान कार्यों तथा

अश्वजातीय पशुओं द्वारा किये गए कई कार्यों का एक उदाहरण

वित्तीय योजनाओं में इनका स्थान नगण्य है। यह सच है कि इन गतिविधियों में इनका प्राथमिक स्थान तो नहीं हो सकता किन्तु इन्हें पूरी तरह से भुलाया भी नहीं जाना चाहिए। घरेलू एवं वाणिज्य क्षेत्र में कामकाजी अश्वजातीय पशु संसाधनों को उनके आर्थिक योगदान पर निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

घरेलू योगदान वाले पशु: घरेलू कार्य करने वाले गधे, घोड़े एवं खच्चर वो पशु हैं जो आय का स्त्रोत नहीं है। मुख्य तौर पर इनका प्रयोग बोझा ढ़ोने एवं गाड़ी चलाने के रूप में परिवहन, श्रम एवं सहायता के लिए किया जाता है। यद्यपि ये प्रत्यक्ष आय का स्त्रोत

मानव पूँजी	प्राकृतिक पूँजी	शारीरिक पूँजी	वित्तीय पूँजी	सामाजिक पूँजी
स्वास्थ्य देखभाल और पाठशाला में सहायता	भारवाही या कृषि शक्ति (हल जोतना)	घोड़ागाड़ी (लोगों और सामान के परिवहन हेतु)	आय का स्त्रोत	समय पर रिश्तेदारों और पड़ोसियों की सहायता
श्रम एवं शारीरिक तनाव में कमी	परिवहन में सहायता (छोटे पशुओं के लिए खाद तथा पानी ढ़ोना)	कृषि की मुख्य सहायता	समय, श्रम और पैसे की बचत	सामाजिक समूह तक पहुँच को सुविधाजनक बनाना
समय की बचत जिससे बच्चों के लिए समय निकाला जा सके	पर्यटन को सफल बनाना	श्रम की उपलब्धता		सामुदायिक वयवस्था (पाठशालाओं का निर्माण)

साधारण मनुष्य की जीविका उपार्जन की विभिन्न श्रेणियों में अश्वजातीय पशुओं के योगदान का वर्गीकरण

नहीं होते परन्तु कीमती समय तथा परिवहन पर होने वाले खर्च दोनों की ही बचत करते हैं।

व्यवसायिक योगदान वाले पशु: व्यवसायिक क्षेत्र में कार्यरत पशु मुख्य रूप से आय का स्त्रोत होते हैं। यह विभिन्न उद्योगों के कार्यों में योगदान करते हैं जैसे कि कृषि, पर्यटन, सार्वजनिक परिवहन, निर्माण एवं माल ढुलाई इत्यादि।

आर्थिक सम्पत्ति के रूप में अश्वजातीय पशुओं के साक्ष्य: इन पशुओं के योगदान को शायद ही किसी ने लिखित में परिभाषित किया है। कार्यरत पशुओं में केवल बैल, ऊँट एवं मवेशियों को ही शामिल किया जाता है जो कि मुख्य रूप से फसल सम्बन्धित कार्यों में प्रयोग किये जाते हैं। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में पशुधन के योगदान की व्याख्या करने वाले कुछ अध्ययनों ने भी स्वीकार किया है कि इन पशुओं पर ध्यान देने में कमी रही है। यही कारण है कि पूर्वी अफ्रीका के विकास एवं अंतर्सरकारी प्राधिकरण ने 2010 तथा 2012 में पशुधन योगदान पर एक लेख श्रृंखला प्रकाशित की जिसमें सदस्य देशों मुख्य तौर पर इथोपिया, कीनिया, सुडान तथा युगांडा को अश्वजातीय पशुओं की कोई भी जानकारी न देने के लिए नामित किया गया। संस्था ने सम्बन्धित देशों में पशु ऊर्जा उपयोग के प्रसार एवं आर्थिक मूल्यों पर एक क्षेत्र व्यापक कार्यक्रम शुरू करने को भो कहा है। पिछले कुछ वर्षों में लोगो की आजीविका में सहयोग करने वाले ऐसे पशुओं के योगदान के साक्ष्यों में कुछ वृद्धि हुई है। 2014 में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें "अश्वजातीय पशुओं की मानव आजीविका में भूमिका" विषय को पहली बार शामिल किया गया।

प्रत्यक्ष आय के स्रोत के रूप में: अश्वजातीय पशु रोजगार के सीधे स्त्रोत हैं क्योंकि इन पशुओं के कार्यों के फलस्वरूप नकद आय प्राप्त होती है। इनका व्यापक रूप से प्रयोग करने वाले क्षेत्र इस प्रकार से हैं:

- **परिवहन (सामान एवं लोग):** भारत, पाकिस्तान और नेपाल में घोड़े पर्वत्तीय क्षेत्रों में दैनिक कार्यों तथा व्यवसायिक रूप से धार्मिक स्थानों पर लोगों व सामान को लाने व ले जाने के लिए

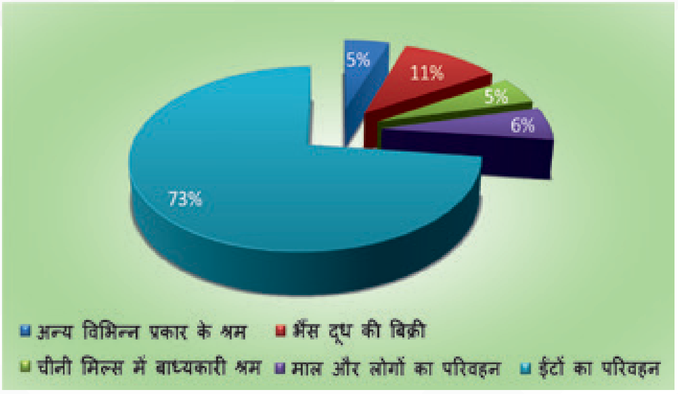

आय में योगदान देने वाली प्रमुख श्रेणियाँ

उपयोग में लिए जाते हैं। इसी प्रकार से इथोपिया में चौपहिया घोड़ागाड़ी में इनका प्रयोग होता है।

- **कृषि:** चावल, कॉफी, कपास एवं दूध का वहन।
- **पर्यटन:** पेट्रा (जार्डन) एवं काफिरा (मिस्त्र) में गधे तथा घोड़ों का प्रयोग।
- **निर्माण:** ईंट एवं रेत ढ़ोने के लिए।
- **खनन:** खदानों से कोयला ढ़ोने के लिए।
- **माल एवं उपज की बिक्री:** सब्जियाँ, अनाज, खाद, पानी एवं पशुओं के चारे इत्यादि का वहन।
- **कचरा संग्रह**

परम्परागत रूप से गधे, घोड़े एवं खच्चर ईंटों का निर्माण करने वाले भट्ठों में काम करते आये हैं। इस कार्य के लिए मुख्य रूप से भारत, पाकिस्तान, नेपाल एवं अफगानिस्तान में इनका प्रयोग होता रहा है। ये भट्ठे कुछ महीनों अथवा पूरे साल कार्यशील रहते हैं। ईंट भट्ठे एक छुपे हुए उद्योग के नाम से भी जाने जाते हैं। यह उद्योग अक्सर असंगठित और अनियमित रहते हैं। इनसे जुड़े हुए पशुओं एवं लोगों को विषम परस्थितियों का सामना करना पड़ता है। हर एक पशु प्रतिदिन एक टन से अधिक ईंटों का वहन करता है। उचित वजन से कहीं अधिक भार लादे जाने के कारण पशुओं को गम्भीर शारीरिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लगातार होने वाली पीड़ाओं में सामान्य तौर पर शारीरिक घाव तथा लंगड़ापन शामिल हैं।

भारत में जुलाई और अगस्त, 2013 में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी हिस्सों मुख्य रूप से मुज्जफरनगर, मेरठ और मथुरा जिलों में घरेलू अर्थव्यवस्था दृष्टिकोण आधारित पद्धति हेतु सर्वेक्षण किया गया। इसमें अश्वजातीय पशु मालिकों ने अपने पशुओं से होने वाली मुख्य आय की अधिकतम सीमा को सांझा किया। 3 प्रकार के परिवारों को अध्ययन में वर्गीकृत किया गया: (1) समृद्ध घरों के मालिक जिनके पास अश्वजातीय पशु भी थे (2) भूमि के छोटे-छोटे हिस्सों के मालिक (3) भूमिहीन किसान। अश्वजातीय पशुओं के स्वामित्त्व वाले परिवारों ने 1,08,475 रूपये की कुल वार्षिक आय की सूचना दी जिसमें लगभग 80% आय प्रत्यक्ष रूप से पशु परिश्रम के परिणाम स्वरूप प्राप्त हुई थी। इसमें से 73% आय ईंटों के परिवहन से, 11% भैंसों के दूध की बिक्री से तथा 5% गन्ना परिवहन से आई। शेष आय घरों में बर्तनों की बिक्री, ऋण इत्यादि से अर्जित हुई। यह सर्वेक्षण अश्वजातीय पशुओं द्वारा किये गये बहुमूल्य योगदान को परिभाषित करता है।

अप्रत्यक्ष आय के स्रोत के रूप में: अप्रत्यक्ष आय पशुओं की भारवाही (ड्राफ्ट पावर) शक्ति से उत्पन्न होती है जिसका उपयोग घरों में आय उत्पन्न करने वाली गतिविधियों के समर्थन में किया जाता है। ग्रामीण इलाकों में इस शक्ति का उपयोग मुख्यतः कृषि तथा पशुपालन के लिए किया जाता है जिसमें गायों, मुर्गियों तथा भेड़ों के लिए चारा-दाना लाना एवं पानी ढोना शामिल हैं। इसके अतिरिक्त मालिकों के लिए भी यह आवागमन के साधन का कार्य करते हैं।

पशु कल्याण के लिए नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता

कल्याण का अर्थ है कि पशु अपनी जीविका उपार्जन की परिस्थितियों में कैसे जीवन यापन कर रहा है। एक पशु कल्याणकारी स्थिति में तब कहा जा सकता है जब वह स्वस्थ, अच्छी तरह से पोषित एवं सुरक्षित जीवन जी रहा हो। वह अपने व्यवहार को व्यक्त करने में सक्षम हो तथा दर्द, भय और परेशानी जैसी अप्रिय परिस्थितियों से पीड़ित न हो।

अच्छे रख-रखाव के लिए रोगों की रोकथाम, पशु चिकित्सा, उचित आश्रय, प्रबन्धन, पोषण एवं दयाशील रखरखाव की आवश्यकता होती है। बहुत से प्रकाशित एवं अप्रकाशित साक्ष्य गधे, घोड़ों तथा खच्चरों द्वारा सहन किया जाने वाले विभिन्न मुद्दों पर ध्यान खींचते हैं।

इनकी समस्याएँ घरेलू और व्यवसायिक दोनों ही स्तरों पर लगभग एक समान होती हैं, हालांकि उनकी आवृत्ति तथा गम्भीरता भिन्न-भिन्न कारकों पर निर्भर हैं, उदाहरण के रूप में वे मालिकों द्वारा इस्तेमाल किये जाते हैं अथवा किरायेदारों द्वारा, काम करने की परिस्थितियाँ, मौसम इत्यादि। अच्छी देखभाल न होने के बहुस्तरीय कारक हैं जिन्हें व्यक्तिगत, तत्कालीन, मध्यवर्तीय तथा अन्तर्निहित कारणों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। अन्तर्निहित कारणों की तरफ सबसे कम ध्यान दिया गया है। अश्वजातीय पशु अधिकाँश राष्ट्रीय पशु स्वास्थ्य प्रणालियों में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं तथा वे रोग उन्मूलन नीतियों, टीकाकरण अभियान, पशुधन एवं पशु स्वास्थ्य नीतियों, कानूनों अथवा दिशा निर्देशों का हिस्सा भी नहीं हैं।

पशु एक संवेदनशील प्राणी है न कि एक मशीन। उनकी भी कुछ आवश्यकताएं होती हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। संवेदनशील व्यवहार से पशु मालिकों को आर्थिक रूप से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है क्योंकि एक स्वस्थ और खुशहाल जानवर अपने मालिक को कुशल कार्यक्षमता से लाभान्वित करता है।

विश्व पशु संरक्षक सूचकाँक विश्व के 50 देशों को जानवरों की रक्षा और कल्याण के लिए वर्गीकृत करता है। इसके अनुसार जिन देशों में सबसे ज्यादा अश्वजातीय पशु पाए जाते हैं उन देशों में सबसे

अश्वजातीय पशुओं के मुख्य कष्ट

सही देखभाल न होने के कारण

कमजोर और अपर्याप्त कानूनी और नीतिगत माहौल है। कुछ देशों ने पशु कल्याण पर क़ानून तो बनाये हैं परन्तु अधिकतर प्रस्ताव कई वर्षों से अनुमोदन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

निष्कर्ष

भारवाही अश्वजातीय पशुओं के वित्तीय योगदान पर प्रमाण सीमित हैं फिर भी इन पर किए गये शोध कार्यों से बहुमुखी प्रतिभा एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका की स्पष्ट तस्वीर झलकती है। चाहे वह परिवहन हो, अनाज अथवा पानी ले जाना हो, खेती करना, खाद उपलब्ध करवाना या निर्माण सामग्री का परिवहन हो, यह पशु लोगों की आजीविका में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। फिर भी राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नीति-निर्धारकों और कार्यान्वयन करने वालों के लिए तो ये लगभग अदृश्य ही हैं क्योंकि इनका खाद्य उत्पादन से सीधा सम्बन्ध नहीं है। इसीलिए इन्हें पशुधन नीति और कार्यक्रमों में द्वितीय पायदान पर रखा जाता है। यही कारण है कि इनकी स्वास्थ्य और कल्याण की आवश्यकताओं का निर्वहन करने में बाधाएं उत्पन्न होती हैं। मनुष्य की आजीविका में निरंतर सहयोग देने वाले इन भारवाहक अश्वजातीय पशुओं की भूमिका के बारे में जागरूकता की आवश्यकता है। इसके लिए ज्ञान और साक्ष्य एकत्रित करने का कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाना चाहिए जिसमें पशु कल्याण के आर्थिक और अंतर्निहित मूल्य सम्पूर्ण रूप से समाहित हों।

यह लेख अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा स्थानीय नीति-निर्माताओं एवं कार्यान्वयन कर्त्ताओं के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत करता है:

- भारवाहक अश्वजातीय पशुओं को पशुधन नीति एवं कार्यक्रमों में स्थान दिया जाना चाहिए।
- आंकड़ा संग्रह एवं अनुसन्धान क्षेत्र में इन पशुओं को महत्व दिया जाए।
- विभिन्न मानकों को इनकी कल्याण योजनाओं के लिए एकमत किया जाए।
- राजनितिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता।

समन्वित अनुसन्धान एवं व्यवस्था द्वारा इन पशुओं पर ध्यान देना निश्चित रूप से इनसे जुड़ी मानव आबादी के उपेक्षित जीवन में सुधार करेगा तथा साथ ही साथ पर्यावरण को होने वाली क्षति को भी सीमित करने में योगदान प्रदान करेगा।

भारत के कानपुर में स्थित सामुदायिक विकास संगठन-श्रम भारती के संयोजक श्री गणेश पांडे के अनुसार "भार-वाहक अश्वजातीय पशु पूरी दुनिया के लिए एक गधा, खच्चर, टट्टू या घोड़ा हो सकता है, लेकिन गरीब मालिक के लिए यह उसकी पूरी दुनिया है।"

कुमाऊँ (उत्तराखण्ड) के ऊँचाई वाले क्षेत्र में पशुपालन: एक परिदृश्य

करम चन्द्र एवं एस के विश्वास

भाकृअनुप-भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, मुक्तेश्वर परिसर - 263138 (उत्तराखण्ड)

उत्तराखण्ड राज्य 51,125 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है, जो कि भारत की कुल भूमि का 17.3 प्रतिशत हिस्सा है। उत्तराखण्ड राज्य में दो अलग प्रक्षेत्र गढ़वाल और कुमाऊँ शामिल हैं। पशुधन और डेयरी विकास इस राज्य की सर्वोच्च प्राथमिकताओं में से एक है। उत्तराखण्ड राज्य में संकर गोवंश की आबादी कुल गोवंश आबादी की 20 प्रतिशत से भी कम है, जो यह दर्शाता है कि राज्य में अवर्णित या स्थानीय पशुधन की आबादी अधिक है। इसका मुख्य कारण संस्थागत नीतियों को बढ़ावा देने की दिशा में सक्षम 'क्रॉसब्रीडिंग प्रोग्राम' की सीमित सफलता है। राज्य में भेड़ व बकरी की संख्या भी कम है और कुल भेड़ व बकरी की संख्या में से एक तिहाई संकर नस्ल (क्रासब्रीड) की है। मध्य पहाड़ी क्षेत्र में गुणवत्ता वाले खाद्य और चारे की कमी पशुओं में रोगों की संवेदनशीलता को बढ़ाती है। परजीवी रोग, पहाड़ी क्षेत्र के पशुओं में बीमारी का सबसे महत्वपूर्ण कारण माना गया है। पहाड़ी क्षेत्र के सभी भूमिगत सम्बन्धित गतिविधियों में से, डेयरी उद्योग में किसानों की आर्थिक विकास की बहुत अच्छी सम्भावनाएँ हैं। इस क्षेत्र में अधिकाँश किसान छोटे धारक हैं और उनके पास सीमित साधन हैं। पहाड़ी क्षेत्र के किसान आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए कृषि विविधीकरण पर निर्भर करते हैं। अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र के किसानों को एक प्रभावी विस्तार व्यवस्था की आवश्यकता है। अतः अनुसंधान संस्थान और लाभार्थी किसानों के बीच एक प्रसार साधन होना चाहिए, जिसकी उच्च उँचाई वाले क्षेत्रों में विशेषरूप से कमी है। पहाड़ी क्षेत्र के मुख्यतः सभी गाँवों में, पशुपालन प्रथा बहुत ही पारंपरिक है। अधिकाँश किसान शिक्षा, सामाजिक भागीदारी, भूमिधारण, दुग्ध उत्पादन, खपत व बिक्री और आय आदि के आधार पर मध्यम वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं।

आवास एवं प्रबंधन परिदृश्य

कुमाऊँ के पहाड़ी क्षेत्र में अधिकतर पशुशालाएँ कच्चे प्रकार की होती हैं और इन्हें स्थानीय भाषा में 'गोठ' कहा जाता है। समशीतोष्ण जलवायु के कारण अधिकतर किसान चीड़ (पाइन) और बाँज (ओक) वृक्ष की पत्तियों को पशुओं के बिछौने के रूप में उपयोग करते हैं। अधिकाँश किसान अपने सभी पशुओं को एक ही पशुशाला में रखते हैं। जिसके कारण कई बार गर्भवती और छोटे पशुओं को चोट लग जाती है। कई किसान अत्यन्त तीव्र सर्दियों एवं बर्फबारी के दौरान पशुओं को कृत्रिम रूप से गर्मी प्रदान करने का उपाय करते हैं और पशुओं को जंजीर या रस्सी से बांधे रखते है।

प्रजनन के पश्चात् अधिकाँश किसान नवजात पशुओं को खीस (लगभग 7 दिन तक) पिलाते हैं। लेकिन अधिकतर किसान दूध छुड़ाने की प्रक्रिया (वीनिंग) नहीं अपनाते और बछड़ों को माँ के साथ ही रखते हैं। अधिकाँश किसान 'हीफर्स' के प्रबंधन और देखभाल की ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। किसान गर्भवती मादाओं को चरागाह में नहीं जाने देते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि तीखी ढ़लानों में पशु फिसल सकते हैं और गर्भपात हो सकता है।

प्रजनन परिदृश्य

जिन क्षेत्रों में कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा है किसान इस सेवा का उपयोग करते हैं। अधिकाँश गाँव काफी दुर्गम स्थानों में होते हैं और पशु-चिकित्सालय काफी दूर होते हैं अतः अच्छी गुणवत्ता वाले वीर्य और तकनीकी कर्मचारी (कृत्रिम गर्भाधान के लिए) न होने के कारण अधिकाँश किसान गायों के लिए प्राकृतिक गर्भाधान की सुविधा अपनाते हैं। कृत्रिम गर्भाधान प्रक्रिया न अपनाने और कम गुणवत्ता वाले साँड़ के कारण गर्भधारण दर कम होती है। पहाड़ी क्षेत्रों में बाँझपन और पुनरावृत्ति प्रजनन मवेशियों की प्रमुख समस्याएँ है।

कुमाऊँ क्षेत्र में गायों और भैंसों का दुग्ध दोहन हाथों द्वारा किया जाता है। अधिकतर किसान दूध दुहने से पहले बछड़े को स्तनपान करवाते हैं ताकि मवेशी दुग्ध दोहन में कोई बाधा न उत्पन्न करे। यदि बछड़ा उपलब्ध न हो तो दुग्ध दोहन से पहले मवेशी को चारा प्रदान करते हैं। दुग्ध दोहन दिन में दो बार किया जाता है।

पोषण परिदृश्य

कुमाऊँ क्षेत्र के किसान गायों के चारे के लिए पूरी तरह से स्थानीय रूप में उपलब्ध संसाधनों जैसे कि बांज के पत्ते और जंगल में उगने वाले अवर्गीकृत घास पर निर्भर करते हैं। सामान्य तौर पर किसानों द्वारा घास या चारा काटने (चैफिंग) का कार्य नहीं किया जाता है। बहुत कम किसान गायों को खिलाने के लिए गेहूँ का भूसा खरीदते हैं। अधिकतर किसान पशुओं के चारे में खनिज मिश्रण के उपयोग के बारे से अवगत नहीं हैं। घर में बना मिश्रण (आटा और खल का मिश्रण) सिर्फ दूध देने वाले पशुओं को ही खिलाया जाता है। अनुत्पादक पशु व बैलों को यह मिश्रण नहीं खिलाया जाता है। पशुओं की चराई गाँव के चारागाह और वन क्षेत्रों में की जाती है। अभाव के समय पशुओं को खिलाने के लिए सूखी घास ('हे') ही एक मात्र तरीका है और बहुत कम किसान 'साइलेज' चारा संरक्षण पद्धति के बारे में जानते हैं।

स्वास्थ्य परिदृश्य

अधिक ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों के अधिकाँश किसानों को बीमारियों की रोकथाम प्रक्रिया के बारे में जानकारी नहीं है और कुछ ही किसान खुरपका-मुँहपका रोग, बकरी प्लेग (पीपीआर), चेचक (पॉक्स), गलघोंटू आदि रोगों के टीकाकरण के बारे में जानते हैं। कुछ सामान्य बीमारी जैसे कि सामान्य सर्दी, दस्त, निमोनिया, ब्लॉट आदि के लिए ज्यादातर किसान स्थानीय उपचार का प्रयोग करते हैं। बहुत ही कम किसान पशुओं में परजीवी नाशक का उपयोग करते हैं। इसलिए इन क्षेत्रों के पशुओं में पाए जाने वाले रोगों के कारण किसानों को लाभ कम होता है।

भेड़ और बकरी पालन

भेड़ और बकरी पालन उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों के किसानों की आय और परिवार के पोषण के लिए, ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग है। यह गतिविधि पहाड़ी क्षेत्रों के सीमांत और भूमिहीन किसानों को रोजगार प्रदान करती है। भेड़ और बकरी की संख्या में कमी का कारण विशेष रूप से किसानों में इनके प्रति रूचि की कमी देखा गया है। आमतौर पर इन पशुओं को उच्च शीतोष्ण घास के मैदानों और उच्च पहाड़ी क्षेत्रों (हाइलैंड्स) में पाला जाता है, क्योंकि पहाड़ी क्षेत्र भेड़ व बकरी की चराई के लिए उपयुक्त होते हैं। हाल ही में बड़ी संख्या में लोग पहाड़ी इलाकों से घाटियों और राज्य के अन्य भागों में चले गए और उनकी व्यावसायिक संरचना भी बदल गई। जिसके परिणामस्वरूप भेड़ व बकरी की

गाय एवं बछड़ा साथ में चारा खाते हुए

गाँव के चरागाह में गाय

आबादी में कमी हो गई। ऊन का उत्पादन और बकरी व भेड़ के मांस के उत्पादन में कमी देखी गई है क्योंकि ऊँचाई वाले क्षेत्र में बाजार की सुविधा की कमी है। इन सब कारणों से भेड़ व बकरी की जनसंख्या में कमी आई है।

उत्तराखण्ड हिमालय के उच्च ऊँचाई वाले क्षेत्रों में प्रोद्योगिकियों के कार्यान्वयन के लिए अनुसंधान और विस्तार के सम्बन्ध को मजबूत करने की आवश्यकता है। इस तरह के प्रयासों की कमी खासकर उच्च ऊँचाई और दूरदराज वाले क्षेत्रों में है। हालाँकि हाल ही में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा शुरू किये गए 'जनजातीय उप योजना' के अन्तर्गत भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, मुक्तेश्वर द्वारा इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ क्षेत्रों में प्रसार कार्यक्रम के प्रयास किए जा रहे हैं। राज्य सरकार ने भी संकर नस्ल की दूध देने वाली गायों को बढ़ावा देने के लिए पहल शुरू की है। उच्च ऊँचाई और दूरदराज़ वाले क्षेत्र में अनुसंधान संस्थान, कृषि विज्ञान केन्द्र, प्रदर्शनियों एवं प्रशिक्षण आदि के माध्यम से प्रचार-प्रसार गतिविधियों को व्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

पहाड़ी क्षेत्र (हाइलैंड्स) में भेड़ व बकरी की चराई

लद्दाखी गधे - गुण व उपयोगिता

राहुल बहल[1], एस के निरंजन[1], ज्योतसना ढींगरा बहल[1], पुनीत रंजन[2], मो. इकबाल[3] एवं विजय कुमार भारती[2]

[1]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001 (हरियाणा)

[2]डी आर डी ओ-डी. आई. एस. ई. आर. - लेह (जम्मू एवं कश्मीर)

[3]पशुपालन विभाग-जम्मू एवं कश्मीर, लेह (जम्मू एवं कश्मीर)

गधा एक मेहनती पशु है। इसकी कठिन मार्गों पर आसानी से व बिना फिसले चल पाने की विशेषता के कारण इसे विशेषकर दुर्गम और पहाड़ी क्षेत्रों में बोझा ढोने के काम में लाया जाता है (वार्षनेय और गुप्ता 1994)। इसे पालने में कम खर्च के कारण यह आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गो के लिए भी काफी उपयोगी है। गधे के इन गुणों के बावजूद इसे योजनाकारों व अनुसंधानकर्ताओं द्वारा अक्सर नज़र अंदाज किया जाता है (बहल व अन्य 2008)। यद्यपि भारत मे पाई जाने वाली गधों की नस्लों के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है, परन्तु निवर्तमान में कुछ नस्लें जैसे स्पीति, सिंधी आदि गधों का वर्णन किया गया है (सिंह व अन्य 2007, बहल व अन्य 2011, बहल व अन्य 2013)। इस शोध का मुख्य लक्ष्य लद्दाख क्षेत्र में पाए जाने वाले गधों के शारीरिक गुणों, उनके पालने की विधि व उपयोगिता को जानना एवं वर्णन करना है।

क्रियाविधि

लद्दाखी गधों के शारीरिक गुण, उनके पालने की विधि व उपयोगिता पर जानकारी राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा तैयार की गई प्रश्नावली के अनुसार पशुपालकों से वार्तालाप द्वारा तथा इन गधों को माप कर इकट्ठी की गई। शारीरिक भार का आंकलन पारकर (2003) के अनुसार किया गया। सांख्यिकी विश्लेषण गुप्ता (2011) के अनुसार किया गया।

लद्दाखी गधों के विस्तार क्षेत्र का वर्णन

लद्दाखी गधे जम्मू और कश्मीर के लद्दाख ज़िले में 2300 से 5000 मीटर की ऊँचाई तक पाए जाते हैं। लद्दाख जिला एक दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र है तथा जंसकार, कराकोरम तथा लद्दाख पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा है। सिंधु, जंसकार और श्योक इस क्षेत्र की प्रमुख नदियाँ हैं। मौसम मुख्यतः ठंडा और शुष्क है। ग्रीष्म ऋतु शुष्क और मध्यम होती है। इस क्षेत्र में मानसून की वर्षा नहीं होती है। सर्दियों में बहुत मात्रा में हिमपात होता है। गर्मी के मौसम में, बर्फ के पिघलने से पानी उपलब्ध होता है। समुद्र तल से अत्याधिक ऊंचाई पर होने के कारण यहाँ ऑक्सीजन की कमी होती है। 2011 की पशु गणना के अनुसार लद्दाख ज़िले में गधों की कुल संख्या 5296 थी।

लद्दाखी गधा

लद्दाखी गधी

तालिका 1: लद्दाखी गधों की विस्तृत शारीरिक माप

शारीरिक माप	नर		मादा	
	औसत±मा.वि. (सेमी)	अन्तराल (सेमी)	औसत±मा.वि. (सेमी)	अन्तराल (सेमी)
कन्धों पर ऊँचाई	93.92±3.63	87-98	93.85±3.8	86-106
शरीर की लम्बाई	95.58±6.17	82-103	97.46±7.37	81-116
छाती की परिधि	100.5±3.99	93-107	102.96±5.58	92-118
कमर की परिधि	109±7.29	100-122	109.55±6.5	97-121
मुँह की लम्बाई	45.75±2.67	42-51	47.28±2.88	42-58
मुँह की चैड़ाई	19.67±0.89	18-21	19.19±1.48	15-25
कान की लम्बाई	20.83±1.27	19-23	22.39±1.99	17-26
गर्दन की लम्बाई	27.67±3.8	22-32	27.51±4.21	17-36
छाती की चैड़ाई	21.54±2.33	19-26	19.92±1.74	14-25
पूँछ की लम्बाई	50.75±7.01	41-63	51.47±5.91	36-67
फोर आर्म की लम्बाई	39.67±1.87	37-42	38.4±2.52	34-44
फोर आर्म की परिधि	20.33±2.07	18-26	19.85±2.0	16-30
कैनन की लम्बाई (अ.टा.)	17.33±1.37	15-19	17.37±1.65	14-21
कैनन की परिधि (अ.टा.)	12.25±0.72	11-13	11.94±0.55	10.5-13
पैस्ट्रन की लम्बाई (अ.टा.)	7.46±0.5	7-8	7.17±0.64	5-8
पैस्ट्रन की परिधि (अ.टा.)	12.1±70.62	11-13	11.65±0.68	10-13
खुर की लम्बाई (अ.टा.)	5.33±0.44	5-6	5.250.56	4-7
खुर की परिधि (अ.टा.)	22.33±1.3	21-24	21.9±1.3	20-25
गास्किन की लम्बाई	41.83±3.24	35-47	41.26±2.93	32-46
गास्किन की परिधि	25.33±2.15	23-30	24.38±2.41	20.32
कैनन की लम्बाई (पि.टा.)	26.08±1.44	24-29	25.89±1.34	23.29
कैनन की परिधि (पि.टा.)	13.04±1.25	11-15	12.69±0.89	11-16
पैस्ट्रन की लम्बाई (पि.टा.)	6.83±0.72	6-8	6.62±0.77	5-9
पैस्ट्रन की परिधि (पि.टा.)	12.5±1.09	11-15	12.14±0.69	10-13
खुर की लम्बाई (पि.टा.)	4.9±60.5	4-5.5	5.1±0.52	4-6
खुर की परिधि (पि.टा.)	20.75±1.71	17-23	20.33±1.42	17-23
अनुमानित भार (किग्रा.)	81.15±8.74	64.72-93.45	78.97±18.03	44.57-127.57

अ.टा. = अगली टांग, पि.टा.= पिछली टांग,मा.वि. = मानक विचलन

नर व मादा में अभिव्यजक अंतर*P<0.05,**P<0.01

पालने की विधि

एक परिवार द्वारा एक से छः गधे पाले जाते हैं। जिन परिवारों द्वारा इन्हें पाला जाता है वह गधों के अलावा गाय, भेड़, बकरी, याक और याक संकर भी पालते है। मुक्त प्रजनन विधि प्रचलित है। नर गधों का बधियाकरण नहीं किया जाता है। टीकाकरण या अन्त: कृमि से मुक्ति के लिए औषधिकरण प्रचलित नहीं है। पशु के बीमार होने पर पशुचिकित्सक से इलाज करवाया जाता है। भेड़ियों, जंगली कुत्तों व पालतू कुत्तों द्वारा इन गधों को और अन्य पशुधन को काटना अथवा कभी-कभी मार देना, गधा पालकों की प्रमुख समस्या है। इन्हें मौसम अनुसार झाड़ियों या लकड़ी से बने बाड़े में या पत्थरों से निर्मित कच्चे अथवा पक्के पशुघर में अन्य पशुओं के साथ या उनसे अलग रखा जाता है। नर व मादा पशु लगभग 2 से 3 वर्ष की आयु में वयस्क होते हैं। मादा पशुओं को पहला बच्चा लगभग 4 वर्ष की आयु में पैदा होता है। इन गधों की उम्र लगभग 15 वर्ष होती है। मादा पशु हर दो वर्ष में एक बार ब्यांत करती है। नवजात गधों को चराई के समय मादा के साथ जाने दिया जाता है। सड़कों का जाल बिछने के कारण और यातायात के साधन की उपलब्धता बढ़ने के कारण, इन गधों की उपयोगिता पहले से बहुत कम रह गई है, इसलिए इनके रख-रखाव पर अब बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इन्हें मुख्यतः चराई द्वारा पाला जाता है। सर्दियों में जब यह क्षेत्र पूरी तरह बर्फ से ढक जाता है तो इन्हें सूखा चारा, जिसे गर्मियों में संरक्षित किया जाता है, दिया जाता है।

शारीरिक गुण

यह गधे हल्के भूरे से गहरे भूरे, गहरे कत्थई एवं काले रंग के होते हैं। शरीर की निचली सतह हल्के रंग की या सफेद होती है। कुछ पशुओं में थूथन और आँखों के चारों ओर सफेद घेरा होता है। कुछ पशुओं में सफेद टांगे या टागों पर ज़ैबरा निशान भी होते हैं। आँखे काली होती हैं। थूथन, चमड़ी व खुर भी काली होती हैं। कंधों पर '+' का निशान सभी भूरे रंग के जानवरों में पाया जाता है जो रीढ़ की हड्डी के ऊपर काली रेखा में पूंछ तक विस्तृत होता है। गहरे भूरे या काले गधों में कंधों का '+' का निशान व मध्य रेखा आसानी से दिखाई नहीं देती है। नाक की हड्डी सीधी या हल्की अवतल होती है। माथा सीधा या अवतल होता है। कानों के मध्य मस्तक पर एक हड्डी वाला उभार होता है।

नर व मादा लद्दाखी गधों के कंधों पर ऊँचाई क्रमशः 93.92±3.62 व 93.85±3.8 सेमी होती है। शरीर की लम्बाई नर गधों में 95.58±6.17 व मादा गधों में 97.46±7.37 सेमी होती है। छाती की परिधि नर व मादा पशुओं में क्रमशः100.5±3.99 व 102.96±5.58 सेमी होती है। पारकर (2003) द्वारा दिए गए सूत्र के अनुसार नर व मादा लद्दाखी गधों का अनुमानित भार क्रमशः 81.15±8.74 व 78.97±18.03 किग्रा पाया गया। पूँछ पिछले घुटनों तक होती है और इसकी लम्बाई नर व मादाओं में क्रमशः 50.75±7.01 और 51.47±5.91 सेमी होती है। अगली और पिछली टांग में कैनन की लम्बाई नर पशुओं में क्रमशः 17.33±1.37 और 26.08±1.44 सेमी व मादा पशुओं में क्रमशः 17.37±1.65 और 25.89±1.34 सेमी होती है। कैनन की परिधि नर और मादा पशुओं में अगली टांग में 12.25±0.72 और 11.94±0.55 सेमी और पिछली टांग में 13.04±1.25 और 12.69±0.89 सेमी होती है। नर और मादा लद्दाखी गधों के अधिकतर शारीरिक मापों में अभिव्यंजक अतंर नहीं पाया गया। केवल छाती की चौड़ाई ($P<0.01$), कान की लम्बाई और पैस्टरन की परिधि में ($P<0.05$), नर और मादा पशुओं में अभिव्यंजक अतंर देखा गया। लद्दाखी गधों की विस्तृत शारीरिक माप तालिका-1 में दर्शायी गयी हैं।

उपयोग

लद्दाखी गधों को मुख्यतः बोझा ढ़ोने के काम में लाया जाता है, जैसेकि पशु बाड़े से गोबर व खाद को खेत तक लाना, जंगल से लकड़ी व चारा लाना, मिट्टी व अन्य इमारती सामान ढ़ोना, पर्यटकों के लिए ट्रेकिंग व पड़ाव का सामान ढ़ोना इत्यादि। यह इस कम ऑक्सीजन वाले दुर्गम क्षेत्र में 60 से 80 किग्रा तक भार ले जाने में सक्षम हैं। गधों व इनके बच्चों को सेना व अन्य लोगों को बेचकर भी कुछ आय प्राप्त होती है। एक वयस्क गधे का मूल्य लगभग 8000 से 10000 रुपये होता है। नर गधे अपेक्षाकृत अधिक मंहगे बिकते हैं।

संदर्भ

गुप्ता एस.पी. (2011). स्टैटिस्टीकल मैथड्स, 41वां संस्करण, सुल्तान चंद एंड संस, नई दिल्ली।

पारकर आर. (2003) डिटरमिनिंग एज, हाईट एंड वेट ऑफ होरसिज, इक्वाईन सांइस, द्वितीय संस्करण, थॉमस डेलमर लरनिंग, न्यूयॉर्क। पि. 217-235.

बहल राहुल, सदाना डी.के. और बहल ज्योत्सना (2008) डन्की-एन अंडरवैल्यूड एनीमल जेनेटिक रिर्सोस ऑफ इन्डिया, लाईव स्टॉक इन्टरनेशनल 12:5-8.

बहल आर., सदाना डी.के., बहल जे., कुमार एस., केदार वी., नड्डा संजीव और जोशी बी.के. (2011). डन्की जेनेटिक रिर्सोसेज ऑफ इन्डिया-स्पीति डन्कीज़, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल प्रकाशन। (मोनोग्राम 74/2011)।

वार्षनेय जे.पी. और गुप्ता एस.के. (1994) द डोंकी एंड इट्स पोटेंशियल; ए रिव्यू; इंटरनेशनल जनरल ऑफ एनिमल साइंसेज, 9:157-167.

सिंह एम.के. गुप्ता एस.के. एवं यादव एम.पी. (2007). परफार्मेस इवेल्यूएशन ऑफ डॉकिस इन एरिड जोन ऑफ इंडिया, इंडियन जनरल ऑफ एनिमल सांइसेज़, 77: 1017-1020.

पशुधन प्रकाश अष्टम-अंक (वर्ष-2017) के पुरस्कृत लेख

'पशुधन प्रकाश' पत्रिका में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ लेखों को भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल द्वारा हर वर्ष पुरस्कृत किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ लेखों का चयन तीन अलग – अलग निर्णायकों द्वारा प्रदत्त अंकों के आधार पर किया जाता है।

पशुधन प्रकाश के अष्टम-अंक (वर्ष-2017) के पुरस्कृत लेख निम्नलिखित हैं:

प्रथम	:	**भदावरी भैंस का संरक्षण एवं सुधार**
₹ 3000/- नगद		बद्री प्रसाद कुशवाहा, सुल्तान सिंह, एस बी मैती, के के सिंह, असीम कुमार मिश्र एवं इन्द्रजीत सिंह
एवं प्रशस्तिपत्र		भदावरी नस्ल संरक्षण एवं सुधार नेटवर्क परियोजना, केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार
		भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी
द्वितीय	:	**समेकित कृषि : सतत आजीविका के लिए एक उत्कृष्ट विकल्प**
₹ 2000/- नगद		सोनिका अहलावत, नेहा, रेखा शर्मा, रीना अरोड़ा एवं एम एस टांटिया
एवं प्रशस्ति पत्र		भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल
तृतीय	:	**चम्बल में बकरी पालन : रोजगार का बेहतर विकल्प**
₹ 1500/- नगद		सत्येन्द्र पाल सिंह
एवं प्रशस्ति पत्र		राजमाता विजयराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, मुरैना

किसानों की आय दुगनी करने का लक्ष्यः पशुधन की भूमिका

सत्येन्द्र पाल सिंह[1] एवं रश्मि सिंह[2]

[1]राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्व विद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, मुरैना - 476001 (मध्य प्रदेश)

[2]बनस्थली विश्वविद्यालय, बनस्थली - 304022 (राजस्थान)

देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से खेती-बाड़ी एवं उससे जुड़े सहायक धंधों पर निर्भर है। देश की कुल कृषि योग्य भूमि (60.4 प्रतिशत) पर 118.9 मिलियन किसान निर्भर हैं। परंतु बावजूद इसके खेती-किसानी लाभ का सौदा नहीं बन पा रही है। इसके पीछे सबसे बड़ी प्रमुख वजह जोत का छोटा आकार होना है। देश में लगभग 87 प्रतिशत किसान सीमांत और लघु श्रेणी से आते हैं। जिसमें 67 प्रतिशत किसान सीमांत श्रेणी से ही हैं। जिनके पास एक हैक्टेयर से भी कम जमीन है। ऐसे में खेती को लाभ का व्यवसाय बनाने तथा किसानों की आय बढ़ाना मुश्किल कार्य है। परंतु खेती-बाड़ी के साथ विविधीकरण की ओर प्रयास किये जायें और पशुपालन पर विशेष जोर दिया जाये, तो यह कार्य नामुमकिन नहीं हैं।

खेती के विकास में पशुधन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ग्रामीण विकास और पशुधन सदैव से एक दूसरे के पूरक रहे हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। देश में लगभग 20.5 मिलियन लोग अपने जीवन यापन के लिये पशुधन पर ही निर्भर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले परिवारों की कुल 14 प्रतिशत औसत आय की तुलना में पशुधन से 16 प्रतिशत की आय लघु और सीमांत किसान परिवारों को होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में पशुधन से दो-तिहाई से अधिक लोगों को जीवन यापन का सहारा मिल रहा है। इसके अलावा शहरी एवं अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में भी पशुधन से 8.8 प्रतिशत जनसंख्या को रोजगार का अवसर प्राप्त हो रहा है। भारत में बड़े पैमाने पर पशु संपदा पायी जाती है। देश की कुल आय, सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 4.11 प्रतिशत हिस्सा पशुधन के क्षेत्र से ही आता है। जिसका कृषि क्षेत्र की जीडीपी में 25.6 प्रतिशत का योगदान है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास में पशुधन का बहुत ही अहम योगदान है। वर्ष 2022 तक किसानों की आय दुगनी करने में पशुपालन महत्वपूर्ण भूमिका में होगा। हालांकि पशुपालन के क्षेत्र में आज भी कई मूलभूत समस्याएं विद्यमान हैं जिनका समाधान किये बिना यह लक्ष्य हासिल कर पाना मुश्किल होगा, परंतु असंभव कदापि नहीं है।

पशु संसाधन

- भारत में दुनिया के सबसे ज्यादा पालतू पशु (512.05 मिलियन) उपलब्ध हैं।
- भारत दुनिया की सबसे ज्यादा भैंसों की संख्या वाला देश है जिनकी संख्या 105.3 मिलियन है।
- भारत दुनिया में दूसरा सबसे ज्यादा गाय (190.9 मि.) एवं बकरी (135.17 मि.) की संख्या वाला देश है।
- भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा मुर्गी बाजार (63 बिलियन अण्डा उत्पादन एवं 649 मिलियन मुर्गा मांस उत्पादन) वाला देश है।
- भारत दुनिया का तीसरा सबसे ज्यादा भेड़ों की संख्या (65.06 मिलियन) वाला देश है।
- भारत ऊंटों की संख्या वाला दुनिया का दसवें नम्बर का देश है।

पशुधन का योगदान

पशुधन से हमें बहुत सी खाद्य तथा अखाद्य चीजें प्राप्त होती हैं। जोकि हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में काम आने के साथ ही हमें खेती-बाड़ी में सहायता के अलावा आर्थिक रूप से भी मदद प्रदान करती हैं।

भोजनः पशुधन हमें दूध, मांस एवं अण्डा प्रदान करता है जोकि मनुष्यों के सेवन के काम आते हैं। इस समय भारत दुनियां में सबसे ज्यादा दूध पैदा करने वाला देश है। भारत में वर्ष 2016-17 में 163.7 मिलियन टन दूध पैदा हुआ है। इस दौरान 88.1 बिलयन अण्डा, 8.89 मिलियन टन मांस का उत्पादन भी हुआ। पशुधन के क्षेत्र से वर्ष 2015-16 में 591691 करोड़ रूपये की धनराशि प्राप्त हुई है।

रेशा एवं खालः पशुधन से हमें ऊन, बाल, खाल, हड्डियां आदि प्राप्त होती हैं। खाल अथवा लेदर पशुधन से प्राप्त होने वाला बहुत ही महत्वपूर्ण उत्पाद है। जिसका भारत से बड़े पैमाने पर अन्य देशों को निर्यात किया जाता है। वर्तमान में भारत में 47.9 मिलियन किग्रा ऊन का उत्पादन हो रहा है।

भारवाहन का कार्यः बैल भारतीय कृषि की रीढ़ रहे हैं। हांलाकि खेती में मशीनीकरण के बाद इनका प्रयोग बहुत कम हो गया है। इसके बावजूद देश के कई भागों में सीमांत किसानों द्वारा आज भी इनका प्रयोग किया जाता है। इसके साथ ही देश के कई भागों में घोड़ा, खच्चर, ऊंट, गधा आदि यातायात के साधनों के रूप में एवं बोझा ढ़ोने के काम आते हैं। खासकर पहाड़ी इलाकों में यह एक बोझा ढ़ोने के एकमात्र साधन हैं।

गोबर एवं पशु अपशिष्ट सामग्रीः गोबर और अन्य पशु-अपशिष्ट पदार्थ खेतों के लिये बहुत अच्छी खाद का काम करते हैं। जिनसे करोड़ों रूपये की बचत होती है।

संपत्ति के रूप मेंः ग्रामीण क्षेत्रों में पशुधन एक चलता फिरता बैंक अर्थात एटीएम का काम करता है। मुसीबत के वक्त में जरूरत

पड़ने पर यह एक संपत्ति के रूप में काम आते हैं। जिन्हें बेचकर पैसा प्राप्त किया जा सकता है।

इसके अलावा पशुधन के कई अन्य उपयोग भी हैं। जिनका प्रयोग देश के ग्रामीण क्षेत्रों में कई अन्य कार्यों के लिये भी किया जाता है जैसे- सांस्कृतिक, मनोरंजन, खेल आदि।

किसानों की अर्थव्यवस्था में पशुधन की भूमिका

पशुपालन किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। खासकर छोटे और मझोले किसानों के अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले भूमिहीन मजदूर किसानों की आजीविका का पशुधन एक महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय किसान मिश्रित खेती प्रणाली पर निर्भर है। फसलों के साथ पशुपालन भारतीय खेती का अभिन्न हिस्सा है जिससे खेती पर आने वाली लागत कम करने में मदद मिलने के साथ ही संसाधनों की भी बचत होती है। पशुधन विभिन्न तरीकों से किसानों की मदद करता है:

आयः ग्रामीण भारतीय परिवारों के लिये पशुधन अतिरिक्त आमदनी का स्रोत है। खासकर ऐसे गरीब ग्रामीण परिवार जोकि कुछ पशु रखकर जीवन यापन कर रहे हैं। गाय और भैंस से प्राप्त होने वाले दूध को बेचकर नियमित आय प्राप्त होती है। बकरी एवं भेड़ जैसे पशुओं से आपात स्थिति में आय प्राप्त की जा सकती है; जैसे- शादी-विवाह, बीमारी के इलाज, बच्चों की पढ़ाई, घर की मरम्मत आदि के समय पैसों की जरूरत पड़ने पर इनको कभी भी कहीं भी विक्रय किया जा सकता है।

रोजगारः हमारे देश में आज भी बड़े पैमाने पर लोग बिना पढ़े लिखे तथा अकुशल हैं जोकि जीवन यापन के लिये पूरी तरह से खेती-बाड़ी पर निर्भर हैं। लेकिन भारत में खेती-बाड़ी पूर्णतः प्रकृति और मौसम पर निर्भर है। जिसके कारण सालभर में अधिकतम 180 दिन से ज्यादा रोजगार खेती से नहीं मिल सकता है। इस कारण भूमिहीन तथा कम भूमि वाले लोग खेती-बाड़ी के खाली समय में अपने श्रम का उपयोग पशुपालन के कार्य में कर सकते हैं।

भोजनः पशुधन से प्राप्त होने वाले उत्पाद जैसेकि दूध, मांस एवं अण्डा पशु प्रोटीन के अति महत्वपूर्ण स्रोत हैं। जिनसे पशुपालक और इनका प्रयोग करने वाले लोगों को उत्तम किस्म की प्रोटीन प्राप्त होती है।

सामाजिक सुरक्षाः पशुधन, पशुपालक को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के साथ ही समाज में उसके स्तर को भी बढ़ाता है। ऐसे परिवार जिनके पास खेती की जमीन नहीं हैं वह उन परिवारों से बेहतर महसूस करते जिनके पास पशुधन नहीं हैं। पशुपालन भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। हमारे देश के विभिन्न भागों में शादियों में पशुओं को उपहार में देने की परंपरा बहुत सामान्य है। हमारे यहां पशुओं को बहुत से सामाजिक-धार्मिक कार्यों में भी प्रयोग में लाया जाता है।

नवजात बच्चेः गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर, घोड़ा, खच्चर आदि पशुओं से प्राप्त होने वाले उनके बच्चे आने वाले कल के जवान गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि हैं। उचित संरक्षण और देखभाल के बिना हम इनकी संतति को आगे नहीं बढ़ा सकते हैं। आगे चलकर मादा पशु जब जवान होकर गर्भधारण कर लेते हैं तो इनकी अच्छी कीमत पशुपालकों को प्राप्त होती है। गाय के बछड़ों को छोड़ दें तो अन्य पशुओं के जवान नर पशुओं की कीमत मादा पशु से किसी भी स्तर पर कम प्राप्त नहीं होती है। इसलिए पशुपालन व्यवसाय में पशु कोई भी पाले शुद्ध मुनाफा तो सिर्फ पशुओं के इन बच्चों से ही प्राप्त होता है।

तालिका 1: भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन से प्राप्त होने वाली आय

मद	वर्ष 2012-13 में वर्तमान कीमतों पर मूल्य (मिलियन रुपये)	कुल मूल्यों का प्रतिशत
दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थ	3496720	65.69
मांस एवं मांस उद्योग के उपोत्पाद	1066050	20.03
अण्डा	202510	3.80
ऊन एवं बाल	5280	0.10
गोबर	372340	7.00
स्टॉक में वृद्धि	180150	3.38
कुल	**5323050**	**100**

स्रोतः बीएएचएस, भारत सरकार, 2014

ग्रामीण अंचल में पशुपालन के क्षेत्र की प्रमुख समस्यायें

भारत विभिन्न जलवायु एवं विभिन्न जैव विविधता वाला देश है। हमारे देश में अलग-अलग क्षेत्रों में पशुओं की अलग-अलग नस्लें पाली जाती है। जिसके चलते अलग-अलग क्षेत्रों में पशुपालकों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पशुपालन के क्षेत्र से किसान-ग्रामीणों की आमदनी दोगुनी करने के लक्ष्य में यह समस्याएं बाधा का कार्य कर रही हैं। जिनका समाधान खोजने पर ही पशुपालाकों की आमदनी दोगुनी करने के लक्ष्य को ओर अधिक गति प्रदान की जा सकेगी।

छोटा बाड़ाः हमारे देश के ग्रामीण अंचल में अधिकांश पशुपालक एक या दो दुधारू पशु ही रखते हैं। इस कारण वह पशुपालन के कार्य को व्यावसायिक रूप से नहीं कर पाते हैं। जबकि 5 से अधिक दुधारू पशुओं का पालन करना लाभकारी होता है।

बछड़ों की अधिक मृत्युदरः देश के ग्रामीण अंचल में गाय-भैंस के बच्चों की मृत्युदर बहुत ज्यादा है। उत्तर भारत के कई राज्यों में उचित प्रबंधन नहीं होने के कारण जन्म लेने के 6 से 8 माह के भीतर भैंस के 70 प्रतिशत तक बच्चे मर जाते हैं। जिन्हें उचित प्रबंधन करके बचाया जा सकता है।

दूध की कीमत कम मिलनाः ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालकों को आज भी दूध की कीमत बहुत कम मिलती है। जहां पशुपालकों को मात्र 10 से 15 ₹ प्रति लीटर में अपना दूध बेचना पड़ता है। उचित विपणन व्यवस्था बनाकर दूध की सम्मानजनक कीमत पशुपालकों को दिलाई जा सकती है।

दूध में मिलावट की समस्याः ग्रामीण क्षेत्रों में दूध की मिलावट भी एक प्रमुख समस्या है। इस कारण वसा प्रतिशत के आधार पर दुग्ध क्रय करने वाली दुग्ध समितियां पीछे हट जाती हैं। जागरूकता और सख्त कार्यवाही करके इस समस्या को रोका जा सकता है।

उन्नत नस्ल के पशुओं की कमीः भारत के ग्रामीण अंचल में आज भी उन्नत नस्ल के दुधारू पशुओं की बहुत कमी है। अधिकांश देशी और द्विनस्ली किस्म की गाय-भैंस, भेड़, बकरी आदि पशु देखे जा सकते हैं। उन्नत नस्ल के पशुओं को बढ़ावा देकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

तालिका 2 : भारत में पशुधन और कुक्कुट आबादी (मिलियन संख्या)

क्र.सं.	पशुधन/पोल्ट्री	पशुधन जनगणना (1951)	पशुधन जनगणना (2007)	पशुधन जनगणना (2012)	वृद्धि/कमी (प्रतिशत में) (2007-2012)
1	संकर गाय	-	33.06	39.73	20.18
2	स्वदेशी गाय	-	166.02	151.20	-8.94
कुल गाय		**155.3**	**199.08**	**190.90**	**-4.10**
3	भैंस	43.40	105.34	108.70	3.19
4	याक	-	0.083	0.077	-7.64
5	मिथुन	-	0.26	0.29	12.88
कुल (गाय, भैंस, याक एवं मिथुन)		**198.70**	**304.42**	**299.98**	**-1.57**
6	भेड़	39.1	71.56	65.07	-9.07
7	बकरी	47.2	140.54	135.17	-3.82
8	शूकर	4.4	11.13	10.29	-7.54
9	घोड़ा एवं टट्टू	1.5	0.61	0.62	2.12
10	खच्चर	0.06	0.14	0.20	43.07
11	गधा	1.3	0.44	0.32	-27.17
12	ऊंट	0.6	0.52	0.40	-22.63
कुल पशुधन		**292.8**	**529.7**	**512**	**-3.33**
13	चिकन	-	617.73	692.65	12.13
14	बत्तख	-	27.64	23.54	-14.85
15	टर्की एवं अन्य	-	3.45	13.02	277.32
कुल पोल्ट्री		**73.5**	**648.83**	**729.21**	**12.39**

स्रोतः बीएएचएस, भारत सरकार, 2014

प्रति पशु कम दुग्ध उत्पादनः देशी गाय-भैंस की नस्ल होने के कारण उनसे चाहकर भी अधिक दुग्ध उत्पादन प्राप्त नहीं होता है। अतः नस्ल सुधार करके इनसे अधिक लाभ लिया जा सकता है।

हरे चारे और संतुलित आहार की कमीः पशुओं के लिये भरपूर मात्रा में हरे चारे एवं संतुलित आहार का नहीं होना भी कम उत्पादन के लिये प्रमुख रूप से जिम्मेदार है। इसकी पूर्ति करके पशुओं से उनकी क्षमता के अनुरूप उत्पादन प्राप्त करने के साथ ही बांझपन जैसी समस्याओं से भी मुकाबला किया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान की सुविधाओं का अभावः इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता है कि देश के ग्रामीण अंचल में बेहतर और अच्छी कृत्रिम गर्भाधान की सुविधाओं की बहुत कमी है। जबकि इस सुविधा को तत्काल बेहतर करने की सख्त जरूरत है।

पशु चिकित्सा सेवाओं की कमीः अच्छी और समय पर पशु चिकित्सा सेवाओं का मिलना ग्रामीण पशुपालकों के लिये अभी भी पहुंच से बाहर है। जिसमें और सुधार करने की आवश्यकता है।

तकनीकी जानकारी का अभावः ग्रामीण पशुपालकों को अधिक से अधिक तकनीकी ज्ञान देकर पशुपालन के कार्य को लाभ का व्यवसाय बनाया जा सकता है।

बीमारियों की अधिकताः बीमारियां भी पशुपालन में घाटे का कारण बनती हैं। बांझपन एवं थनैला जैसी बामारियों से पशुपालकों को बहुत अधिक आर्थिक छति उठानी पड़ती है।

चारा-दाना और मजदूरी का महंगा होनाः चारे-दानें की कीमतें और महंगी मजदूरी भी पशुपालन के कार्य में एक अड़चन का काम करती हैं। महंगा चारा-दाना लाभ के अंतर को कम कर देता है जबकि दूध आदि उत्पाद की कीमतें उस अनुपात में नहीं बढ़ती हैं।

मंहगा इलाजः बीमारी होने की दशा में पशुओं का इलाज एक महंगा सौदा है। चिकित्सक की फीस से लेकर पशुओं की दवाएं भी काफी महंगी पड़ती हैं। इस कारण कई बार गरीब पशुपालक पूरी एवं सही चिकित्सा भी नहीं करा पाते हैं।

टीकाकरण में रूचि न दिखानाः पशुपालकों में टीकाकरण के प्रति कोई रूचि नहीं दिखाई देती है। वह अपने दुधारू और गर्भवती पशुओं को टीकाकरण नहीं करने देते हैं। इस कारण संक्रामक एवं जानलेवा रोगों से बचाव में बाधा उत्पन्न होती है।

सरकार द्वारा पशुधन विकास के लिए प्रयास

- देशी गाय की उत्पादकता को दोगुना करने हेतु 27 राज्यों में राष्ट्रीय गोकुल मिशन के तहतः 582 करोड़ रूपये की परियोजनाएं शुरू की गई हैं। जिनके द्वारा 39 देशी गाय तथा 13 भैंस वंशीय नस्लों का संवर्धन एवं विकास किया जा रहा है। इसके तहतः 10.2 करोड़ वीर्य की खुराक उत्पादित कर 7.3 करोड़ कृत्रिम गर्भाधान से उत्पन्न बछड़ों को चिन्हित किया गया है।
- पशुओं की नस्ल सुधार तथा उत्पादकता बढ़ाने हेतु 870 उच्च गुणवत्ता के नर बछड़ों को ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कराया गया है।
- कृत्रिम गर्भाधान की अवस्थापना व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु 5000 से अधिक पशु मित्र तथा कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित किया गया है।
- 2764 मोबाइल कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापित किए गए हैं तथा 80312 किसानों को उत्पादकता बढ़ाए जाने संबंधी प्रशिक्षण भी दिया गया है।
- दुधारू पशुओं की पहचान हेतु 27.47 लाख आईडी टैग लगाएं जा रहे हैं।
- प्राकृतिक गर्भाधान हेतु दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में 1720 नर बछड़े तथा 257 उच्च उत्पादकता के सांड उपलब्ध कराए गए हैं।
- गोकुल ग्रा. योजना के तहत 9 राज्यों में 14 गोकुल ग्रामों के विकास के लिय 119 करोड़ रूपये स्वीकृत किये गये हैं।
- स्वदेशी नस्ल के पशुओं के समग्र विकास और संरक्षण एवं संवर्धन के लिये देश में पहली बार 50 करोड़ की लागत से दो राष्ट्रीय कामधेनु प्रजनन केन्द्रों (चिंतलदेवी, जिला-नेल्लोर, आंध्र प्रदेश तथा इटारसी, जिला-होशंगाबाद, मध्य प्रदेश) की स्थापना की जा रही है।
- 825 करोड़ की राष्ट्रीय बोवाईन उत्पादकता मिशन के तहत 8.8 करोड़ दुधारू पशुओं को नकुल स्वास्थ्य पत्र उपलब्ध कराया जाएगा।

- आधुनिक प्रजनन तकनीकी के तहतः 10 वीर्य केंद्रों पर 150 सेक्स सीमेन सोर्टिंग संयत्र स्थापित किए जायेंगे। इसके साथ ही 50 इन-विट्रो तथा भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीकी के लैब स्थापित किये जा रहे हैं।
- तीव्र आनुवंशिक उन्नयन के जरिए देशी नस्लों के दुग्ध उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय जीनोमिक केंद्र की स्थापना राष्ट्रीय बोवाईन उत्पादकता मिशन योजना से की जा रही है।
- भारत सरकार द्वारा ई-पशुधन हाट पोर्टल की स्थापना भी की गई है। जिसके माध्यम से किसान पशुओं की खरीद और ब्रिकी कर सकते हैं।

डेयरी विकास

- दुग्ध उत्पादन 2014-15 से 2016-17 के बीच 16.96 प्रतिशत बढ़ा और अब 163.6 मिलियन टन अनुमानित है। यदि हम 2011-14 की तुलना 2014-17 से करें तो 16.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह प्रगति अभूतपूर्व है क्योंकि, विश्व में 2014-15 के दौरान दुग्ध उत्पादन में मात्र 1.8 प्रतिशत की वृद्धि ही प्राप्त हुई।
- देश में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दूध की उपलब्धता 2014-15 में 322 ग्रा. से बढ़कर 2016-17 में 351 ग्रा. हो गई है।
- सहकारिता द्वारा औसत दुग्ध खरीद 2014-15 में 380 लाख लीटर से बढ़कर 2016-17 के दौरान 430 लाख लीटर प्रतिदिन हो गई है।
- विश्व बैंक द्वारा पोषित 2242 करोड़ की राष्ट्रीय डेयरी योजना-प्रथम के तहतः 26000 से अधिक गांवों को दुग्ध क्रय हेतु चयनित किया गया है। इस उद्देश्य से दुग्ध सहकारी समितियों में 9 लाख अतिरिक्त किसानों को सदस्य बनाया गया है।
- डेयरी उद्यमिता विकास योजना के अंतर्गत 2014-17 में 82678 किसान उद्यमियों को रू. 372.65 करोड़ का अनुदान दिलाया गया है।

पशुधन स्वास्थ्य एवं रोग नियंत्रण

- खुरपका-मुहंपका रोग नियंत्रण कार्यक्रम (एफएमडी-सीपी) का दायरा 19 राज्यों के 351 जिलों से बढ़ाकर सम्पूर्ण भारत के सभी जिलों में लागू किया गया है। इस हेतु 540.19 करोड़ रूपये जारी किये गये हैं।
- वर्ष 2014-17 में 670.49 मिलयन पशुओं का टीकाकरण किया गया। इसके अलावा अन्य रोगों की मुक्ति हेतु 900 मिलियन से भी अधिक पशुओं का टीकाकरण किया गया। एफएमडी नियंत्रण हेतु 2016-17 के दौरान 267.73 मिलियन टीकाकरण की उपलब्धि प्राप्त की गयी।
- पशुओं की उत्पादकता बढ़ाकर किसानों की आय को दोगुना करने के लिए गत् तीन वर्षों में देश के ग्रामीण क्षेत्रों में कुल 1030 पशु चिकित्सालयों का निर्माण तथा सुदृढ़ीकरण कराया गया है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में सरल-सुलभ पशुचिकित्सा उपलब्ध कराने के लिये पशु चिकित्सा कालेजों की संख्या जोकि 2011-14 में 36 थी को बढ़ाकर 2014-17 में 46 किया गया है। पशु चिकित्सा कालेजों में विद्यार्थियों की सीटें भी बढ़ाई गई हैं।
- राष्ट्रीय पशुधन मिशन के तहत गत् तीन वर्षों में 630 करोड़ रूपये जारी किये गये हैं।
- इसके अलावा प्रशिक्षण, उद्यमिता एवं रोजागार सृजन, लाभार्थी सहायता, चारे की वैज्ञानिक खेती, चारा विकास आदि के लिये भारत सरकार द्वारा सराहनीय प्रयास किया जा रहा है।

स्वच्छ ग्राम-स्वस्थ मृदा और जैव अपशिष्ट प्रबंधन

स्वच्छता जहां हमारे स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता के कई फायदे भी हैं। पशुपालन से हमें गोबर, उनकी बिछावन, मल-मूत्र, बचा हुआ चारा-भूसा आदि प्राप्त होता है। इसको वर्मी-कम्पोस्ट बनाकर अपने खेतों की मृदा के स्वास्थ्य को काफी हद तक सुधारा जा सकता है। इससे फसलों पर आने वाली लागत तो कम होगी ही जमीन की जलधारण क्षमता, गुणवत्ता परक खाद्यान्न, फल-सब्जी आदि का उत्पादन भी प्राप्त हो सकेगा। इतना ही नहीं बल्कि अतिरिक्त रूप से पैदा वर्मी-कम्पोस्ट और केंचुओं को बेचकर आर्थिक लाभ लिया जा सकता है। देश के कई क्षेत्रों में डेयरी संचालक दूध से ज्यादा वर्मी-कम्पोस्ट उत्पादन करके कमा रहे हैं।

बकरी पालन – आय बढ़ाने का एक संभावी विकल्प

नरेश कुमार वर्मा

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001 (हरियाणा)

बकरी एक बहुपयोगी पशु है जो भारतीय पशुधन का एक महत्वपूर्ण घटक है और मुख्य रूप से छोटे और सीमांत किसानों द्वारा पाली जाती हैं। अपने आर्थिक महत्व, कम लागत संसाधन, छोटी पीढ़ी अंतराल, उच्च प्रसार के कारण बकरियों ने गरीबों और भूमिहीन किसानों के जीवन में एक विशेष स्थान अर्जित किया है जिसके कारण उन्हें "गरीब आदमी की गाय" भी कहा जाता है। बकरियों को सीमान्त और अधोमुखी भूमि, जो कि सभी प्रकार के पशुओं के लिए अनुपयुक्त है, में बहुत कम खर्च के साथ रखा जा सकता है। छोटे आकार, आवास की सरल आवश्यकता, बीमारी के लिए अधिक प्रतिरोध तथा अपने उत्पादों के आसानी से निपटान के कारण इसे सोना जैसा माना जाता है, जिसे किसी भी समय किसानों द्वारा भुनाया जा सकता है। बकरी को ए टी एम (कभी भी दूध व कभी भी पैसा) और चलता फिरता फ्रिज़ की उपमा से भी सम्बोधित किया जाता है। बकरी मुख्यतः मांस के लिए पाली जाती है। कुछ नस्लें (जमनापारी, बीटल, जखराना एवं सुरती) अपनी दूध की क्षमता के लिए भी जानी जाती है। बकरी के दूध और मांस में प्रोटीन प्रचुरता में पाया जाता है। बकरी की मिंगनी उत्तम खाद के रूप में जानी जाती हैं जिसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व् पोटैशियम की मात्रा अधिक पाई जाती है। पूर्वी व् दक्षिण क्षेत्रों में पाली जाने वाली नस्लें (ब्लैक बंगाल, मलबरी) एक ब्यांत में दो या अधिक बच्चे दे सकती हैं। विकासशील देशों में, बकरी पालन, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। भूमि धारणों की वर्तमान गिरावट की प्रवृत्ति को देखते हुए बकरी पालन ग्रामीण जनता के बीच एक व्यवहारिक आजीविका विकल्प के रूप में उभर रहा है। सन् 2012 की पशुगणना के अनुसार भारत में बकरियों की संख्या 135 मिलियन दर्ज की गईं। बकरी संख्या वृद्धि में ग्रामीण क्षेत्रों का विशेष योगदान रहा है।

बकरी की प्रमुख नस्लें

अभी तक 28 पंजीकृत बकरी नस्लों में जम्मू और कश्मीर से 1 (चंगथंगी), हिमाचल प्रदेश से 2 (चेगू, गद्दी), पंजाब से 1 (बीटल), उत्तर प्रदेश से 2 (जमनापारी, बरबरी), उत्तराखंड से 1

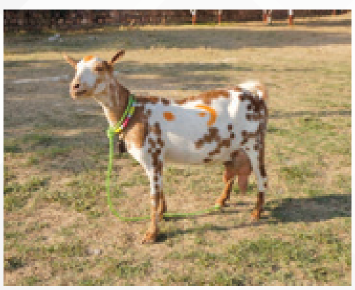

बरबरी

बीटल

टेरासा

जमनापारी

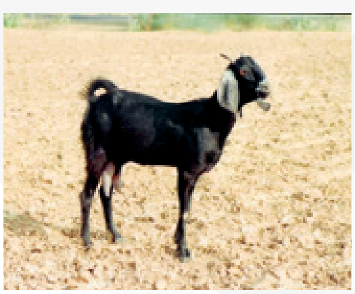

जखराना

चंगथंगी

सिरोही

मालाबारी

बकरी आवास के प्रकार

(पंतजा), राजस्थान से 3 (जखराना, मारवाड़ी, सिरोही), गुजरात से 5 (सुरती, गोहिलवाडी, कच्छी, मेहसानी, झालावाढ़ी), महाराष्ट्र से 4 (संगमनेरी, उस्मानाबादी, कोंकण कन्याल, बेरारी) ओडिशा से 1 (गंजम), पश्चिम बंगाल से 1 (ब्लैक बंगाल), तमिलनाडु से 3 (कन्नी अडू, कोदियाडू व सलेम ब्लैक), केरल से 2 (मालाबारी, अतापदी ब्लैक), अंडमान एवं निकोबार से 1 (तेरासा) और नागालैंड से 1 (सुमि-ने) पंजीकृत नस्लों की सूची में शामिल हैं। इसके इलावा बहुत सी कम ज्ञात नस्ल की बकरियां देश के विभिन्न राज्यों में पाई जाती है जिनका गहन अध्यन करके उन्हें पंजीकृत नस्लों में शामिल किया जा सकता है

सामान्य प्रबंधन

बकरियों का स्वास्थ्य एक अच्छी व लाभदायक बकरी पालन के लिए काफी महत्व रखता है। अच्छी गुणवत्ता वाला हरा चारा और संतुलित आहार उत्पादकता बढ़ाने में सराहनीय कार्य करते हैं। चयनात्मक और स्वस्थ बकरों का उपयोग करते हुए नियंत्रित प्रजनन, नस्ल सुधार में सहायता करते हैं। झुंड में अवांछित गर्भधारण व प्रजनन से बचने के लिए हर 12-18 महीनों के बाद बकरे को बदला जाना चाहिए। जो बकरे प्रजनन उद्देश्यों के लिए नहीं चुने जाते उन्हें 2-4 सप्ताह की उम्र में खारिज किया जाना चाहिए। प्रजनन के लिए चयन करते समय, पूरी तरह से विकसित, विस्तारित और समान आकार के वृषण वाले बकरों को ही प्राथमिकता देनी चाहिए। इसी तरह, बकरियों में अच्छी तरह से विकसित लियोटी और थन तथा बच्चों के पोषण के लिए पर्याप्त दूध वाली बकरियों का ही चयन किया जाना चाहिए । पहली बार प्रजनन के लिए चयनित नर और मादा जानवरों में यौन परिपक्वता की आयु 12-15 महीने या 25 किलो शरीर के वजन को माना जाना चाहिए। आम तौर पर पहली ब्यांत के दौरान एक ही बच्चा पैदा होता है इसके बाद की ब्यांतों में प्रति ब्यांत बच्चों की संख्या बढ़ती जाती है। बेहतर भोजन व प्रबंधन के साथ एक ही ब्यांत में बकरी 3 से 4 बच्चे दे सकती है।

आवासीय व्यवस्था

बकरी के आवास के लिए, स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों जैसे बांस, फूस व् अन्य निर्माण सामग्री से कम लागत का शेड तैयार किया जा सकता है। शेड में पर्याप्त स्थान होना चाहिए एवं वह अच्छी तरह हवादार होना चाहिए। जानवरों के विभिन्न समूहों को रखने के लिए प्रबंध होना चाहिए। मल-मूत्र निकासी के लिए व्यवस्था होनी चाहिए। बकरी आवास सीधे जमीं पर या जमीन से 3-4 फीट की ऊंचाई पर (मचान टाइप) बनाया जा सकता है। मचान टाइप घर अधिक हवादार व साफ़ सुथरे होते हैं। इस तरह के घरों के नीचे की जगह को स्टोर हाउस के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। नवजात बच्चों के लिए बांस की बनी टोकरी का प्रयोग किया जाता हैं।

तालिका 1: विभिन्न आयु वर्ग के जानवरों के लिए अनुशंसित फर्श की जगह

आयु वर्ग	फर्श की जगह
0 – 3 माह	0.5 – 1.0 वर्ग फीट
3 -6 माह	1.0 – 2.5 वर्ग फीट
6 – 12 माह	2.5 – 3.5 वर्ग फीट
प्रौढ़ बकरा	5.0 वर्ग फीट
प्रौढ़ मादा बकरी	6. 5 वर्ग फीट

खुले खेतों में घर बिना छत के अस्थायी रूप से क्षेत्र को बाड़ लगा कर बनाया जाता है। एक दो जानवरों के लिए अलग से घर नहीं बनाया जाता।

तालिका 2 : बकरियों के लिए पोषण की व्यवस्था

आयु / अवस्था	भोजन की किस्म	मात्रा
जन्म – 3 दिवस	खीस	पेट भर
3 दिवस – 3 सप्ताह	दूध / विकल्प	पेट भर
3 सप्ताह – 3 माह	दूध, चारा	पेट भर
3 माह – परिपक्वता / गर्भधारण	चारा, दाना	पेट भर 450 – 500 ग्रा.
दुधारू बकरी	दाना	350 ग्रा. प्रति लीटर दूध
बकरा	चराई, दाना	पेट भर, 400 ग्रा. / दिन (प्रजनन के मौसम के दौरान)

बकरी पोषण

बकरी एक लघु रोमन्थी पशु है जो विभिन्न प्रकार के चारा खाना (ब्राउज़) पसंद करती है। इन्हें रसोई कचरे के साथ भी खिलाया जा सकता है जो कि चारे की लागत का 30-40% बचा सकता है। वे बासी चारा खाना पसंद नहीं करती। बकरियां थोड़ा-2 व् बार-2 खाना पसंद करती हैं, इसलिए इन्हें चारे को कम मात्रा में कम से कम 3-4 बार एक दिन में दिया जाना चाहिए। आमतौर पर कहा जाता है कि बकरी कुछ और सब कुछ खा सकती है; इनके पास बहुत ही संवेदनशील होंठ होते हैं और उन्हें ऐसे भोजनों की आदत होती है जो स्वच्छ और स्वादिष्ट हों। बकरी को स्थानीय वनस्पति पर रखा जाता है। इनकी चराई स्टाल फीडिंग, अर्द्ध-स्टॉल फीडिंग, अकेले चराई और पूरक आहार के साथ हो सकती हैं। 1-5 जानवरों के छोटे झुंड को स्टाल फीडिंग पर रखा जा सकता है, जबकि बड़े झुंड को सुबह जंगले में चरने के लिए भेज दिया जाता है, और साँझ को वापिस लाया जाता हैं। चरागाह में चराई के दौरान, जानवरों को ऐसी जगह पर ले जाया जाता है जहां पानी भी उपलब्ध हो। प्राकृतिक घास, झाड़ियां, पेड़ और फसल के अवशेष चरागाह चराई का हिस्सा होते हैं। चारा संसाधनों में पाला

बकरियों का रेवड़

बकरी पोषण

(ज़िज़ाफ्यस बेर), खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरिया), बेर (ज़िइज़फस रोटोडिफोज़िया), नीम (अजादिराछा इंडिका), बबूल (बबड़ी अरेकि), किक्कार (बबूल निलोटिका) आदि प्रमुख हैं। बकरियां मुश्किल पहाड़ी ढलानों में आसानी से ब्राउज़ कर सकती हैं। स्टॉल-फेड वाले जानवरों को लूम, ग्वार, मस्त, मूंग, बाजरा, ज्वार, मक्का आदि दिया जाता है। गर्भवती पशुओं और अच्छी दूध देने वाले बकरियों को विशेष राशन दिया जाता है। नवजात शिशु को दूध के भोजन पर रखा जाता है।

बकरियों की बीमारियाँ व उनकी रोकथाम

बकरी पालन के लिए किसी को भी बकरियों में होने वाली आम बीमारियों और उनके नियंत्रण की विधियों से अवगत होना चाहिए। कई मामलों में बकरी की गहन पालन व्यवस्था के दौरान बीमारियाँ फ़ैल जाती हैं जिससे जानवरों की मृत्यु दर में वृद्धि होती हैं। बकरी के रोगों के बारे में कम ज्ञान या अज्ञानता से बकरी पालन व्यवसाय में भारी नुकसान हो सकता है। इसलिए लक्षणों की पहचान करना और समय पर उपचार और निवारक देखभाल को लागू करना महत्वपूर्ण है।

तालिका 3: बकरियों में होने वाली प्रमुख बीमारियाँ

बीमारी	लक्षण	रोकथाम
थनैला (मेस्टाईटिस)	बुखार,पतला दूध, लियोटी व् थनों में सुजन, दूध में खून का आना	साफ़-सफाई, एंटीबायोटिक्स लगाना
खुर रोग (फुट रोट)	लंगडाना, खुरों का गलना, दुर्गन्ध आना, खुरों में दर्द होना	टीकाकरण, खुरों की कटाई, नीले थोथे के घोल से पैरों का धोना
ब्रूसीलोसिस	बच्चा गिरना, प्लेसेंटा का बाहर न आना, नर पशुओं में नपुंसकता, जोड़ो में सूजन	टीकाकरण, पीड़ित जानवरों को अलग रखना, मृत भ्रूण का निपटान करें और नाल को हटा दें
मुँह-खुर रोग (एफ.एम.डी.)	बुखार, पावों का गलना, मुह में छालें पड़ना, लार का आना	पीड़ित जानवरों को अलग रखना, साफ़-सफाई, टीकाकरण
कोन्टेजेअस काप्रिने प्लयूरो नुमोनिया	दस्त लगना, नाक और आँखों से पानी बहना, बुखार, अत्यधिक संक्रामक व् घातक	ठण्ड से बचाव, साफ़ सुथरा पानी व् चारा देना
अन्तः परजीवी	वजन कम होना, दूध घटना, दस्त लगना, खून की कमी होना	साफ़ सुथरा पानी व् चारा देना, कृमि नाशक दवाई का उपयोग
चेचक (गोट पोक्स)	बुखार, नाक बहना, लार गिरना, सांस लेने में कठनाई, थूथन, टांगो व् लियोटी पर घाव	टीकाकरण
पी पी आर	बुखार, नाक बहना, लार गिरना, सांस लेने में कठनाई	पीड़ित जानवरों को अलग रखना, साफ़ सफाई, टीकाकरण

बकरी पालन से अनुमानित आय (बकरी संख्या – 8 मादा, 2 नर)

तय लागत

प्रजनन योग्य नर व मादा बकरियों (शारीरिक वजन प्रत्येक 25 किग्रा.) की कीमत @ 2500/-	25000/-
आवासीय व्यय	15000/-
कुल लागत	**40000/-**

आवर्ती लागत

चारे व् दाने पर खर्च (300 ग्रा. प्रतिदिन/बकरी x 360 x 10 x ₹20/kg)	21600/-
पशु बीमा	5000/-
दवाइयां व टीकाकरण आदि	2000/-
अन्य खर्च	2000/-
कुल लागत	**30600/-**

पहली पीढ़ी से आय

3-4 माह आयु के बच्चो की बिक्री (औसतन 10 बच्चे @ 3000/-)	30000/-
वर्ष के अंत में मांस के लिए पाले गए बकरों (5) की बिक्री @ 6000/-	30000/-
खाद के रूप में मींगनी की बिक्री (@ 500/- प्रति क्विंटल)	5000/-
दूध की बिक्री (औसतन 3.0 लीटर/दिन @ 30/-x 90 दिन)	8100/-
कुल आय	**73100/-**

लाभ : 42500/-
(केवल आवर्ती लागत के आधार पर)

आजीविका में योगदान

बकरी पालन, छोटे सीमांत और भूमिहीन किसानो के लिए आजीविका का महत्वपूर्ण स्रोत हैं ये आजीविका जीवित पशु बेचकर या उनसे प्राप्त उत्पाद जैसे दूध, उन, मांस, चमड़ा, खाद आदि बेच कर कमाते हैं। बकरी पालन में महिलाओं तथा बच्चों की भूमिका अहम रहती हैं बकरियों की नरम, सरल और मैत्रीपूर्ण प्रकृति के कारण छोटे बच्चे भी उन्हें संभाल सकते हैं

निष्कर्ष

पशुधन की खेती में बकरी पालन एक बहुत सरल और आसानी से प्रबंधित व्यवसाय है। ज्यादा खर्च किए बिना हम इससे आय का निरंतर स्रोत पा सकते हैं । बकरी के दूध में, गाय और मानव दूध की तुलना में कैल्शियम, मैग्नीशियम और फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है। शिशुओं, बूढ़े और दिमागदार लोगों के लिए बकरी के दूध की सिफारिश की जाती है। पिछले कुछ वर्षों में डेंगू के मरीजों के लिए बकरी का दूध अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ हैं। उपभोक्ताओं में बकरी के दूध और इसके उत्पादों की स्वीकृति को उत्कृष्ट बताया गया है। मांस, दूध और औषधीय मूल्य वाले दूध उत्पादों की बिक्री द्वारा बकरी पालन से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। किसानों की आय को दोगुना करने के राष्ट्रीय मिशन को पूरा करने में यह उद्यम एक महत्वपूर्ण माध्यम साबित हो सकता है।

राजस्थानी ऊँटों का महत्व तथा संरक्षण के उपाय

हर्षवर्धन मीणा एवं लोकेश वशिष्ठ

पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, राजस्थान पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर - 334001 (राजस्थान)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि में पशुपालन व्यवसाय की एक बड़ी हिस्सेदारी रही है। ऊँट पालन इसी का एक अहम् भाग है। ऊँट को रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है। भारत में ऊँटों की संख्या सबसे ज्यादा राजस्थान में है। ऊँट देश में राजस्थान के प्रतीक के समान हैं इसीलिए इसे यहाँ राज्य पशु का दर्जा भी दिया गया है।

यह एक ऐसा पशु है, जिसका इतिहास राजाओं-महाराजाओं के काल से भी पुराना है। किंतु वर्तमान समय में इनकी संख्या लगातार कम होती जा रही है। प्राप्त आंकड़ों के मुताबिक साल 2003 मे देशभर में ऊँटों की संख्या 7 लाख से अधिक थी। साल 2007 में 4.98 लाख और साल 2012 में 4 लाख के आस पास थी। धीरे-धीरे यह आंकड़ा तेजी के साथ कम होता जा रहा है। आज यह संख्या मात्र 3 लाख से अधिक रह गयी है। यानी पिछले 14 सालों में 42 प्रतिशत की भारी कमी आई है और लगभग 4 लाख ऊँट कम हुए हैं, जो की एक चिंतनीय विषय है।

उपयोगिता

ऊँटो का उपयोग राजा-महाराजा पहले युद्ध के लिए करते थे, लेकिन इसके बाद ऊँट का इस्तेमाल अन्य कामों में भी किया जाने लगा। बॉर्डर सिक्योरिटी फ़ोर्स में ऊँटों का बेड़ा आज भी शामिल है। रेगिस्तानी इलाकों में गश्त के लिए सेना के पास ऊँट ही सर्वोत्तम साधन है। वर्तमान में ऊँट को मुख्य रूप से बोझा ढ़ोने एवं कृषि कार्यों में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा इसका दूध भी बहुत उपयोगी है, ऊँटनी का दूध बहुत पौष्टिक होता है। खानाबदोश लोग आज भी ऊँटनी का दूध पीते हैं। ऊँटनी का दूध स्वादिष्ट, मीठा और क्रीम के स्वाद जैसा होता है। इसके दूध से दही नहीं जमती। ऊँट के बाल वस्त्र उद्योग में प्रयोग किये जाते है। बालों से ओवर कोट, रस्सी, ऊन, थैली, कम्बल आदि बनाए जाते हैं।

बीकानेरी ऊँट वजन ढ़ोने और जैसलमेरी ऊँट दौड़ में काम आता है। इसके अलावा कश्मीर में दो कूबड़ वाला ऊँट भी पाया जाता है। यह ऊँट पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र होता है।

संरक्षण की आवश्यकता

ऊँटों के विलुप्त होने का मुख्य कारण बड़ी मात्रा में इनका वध है। कई राज्यों में बड़े पैमाने पर ऊँटों का बड़े स्तर पर वध होता है। इनके मांस को भारी मात्रा में दूसरे देशों को निर्यात किया जाता है। इसके अलावा दूसरे राज्यों में भी ऊँटों को बेचा जाता है।

राजस्थान तथा आसपास के क्षेत्रों में बने अभ्यारण्य में पालतू पशुओं का प्रवेश वर्जित है और ऊँट पालतू पशुओं की श्रेणी में आता है। इस वजह से उनका इन क्षेत्रों में प्रवेश वर्जित है। इन क्षेत्रों में ही ऊँटों के भोजन के मुख्य प्राकृतिक स्रोत पाए जाते हैं।

ऊँटों की उपयोगिता (स्रोत: भाकृअनुप- रा.प.आनु.सं. ब्यूरो, करनाल)

हाथी दाँत व हाथियों के शिकार पर रोक का ऊँटों की संख्या पर असर पड़ा है, क्योंकि ऊँट की हड्डी अब बड़ी मात्रा में हाथी दाँत की जगह इस्तेमाल में लाई जाने लगी है। अकाल और सूखे से त्रस्त लोग भी अक्सर ऊँटों को माँस के लिए मार देते हैं और हड्डियाँ तक बेच देते हैं। जिन क्षेत्रों में आज भी सड़क मार्गों की कल्पना नहीं की जा सकती वहाँ हमें इंसान के इस पारम्परिक सहयोगी 'रेगिस्तान के जहाज' को डूबने से बचाने के लिए दीर्घकालीन योजनाएँ बनानी चाहिए।

संरक्षण के उपाय

ऊँट राजस्थान का राज्य पशु है, इसको बचाने के लिए सरकार ने पूरे राज्य में कुछ नियम इनको बचाने की मुहीम के तहत लागू किये हैं:

- **दूसरे राज्यों में ऊँटों के बेचने पर प्रतिबन्ध:** राजस्थान सरकार ने दूसरे राज्यों में ऊँट के बेचने पर पूरी तरह से प्रतिबन्ध लगा दिया है। इससे वध के लिए दूसरे राज्यों में जाने वाले ऊँट पूरी तरह से सुरक्षित हो गए हैं।
- **ऊँट पालन को बढ़ावा:** सरकार राज्य में ही ऊँट पालन को बढ़ावा देने पर कार्य कर रही है। इसके तहत जो पशुपालक ऊँट पालते हैं, राज्य सरकार की ओर से उनको अनुदान राशि दी जाती है।

राष्ट्रीय ऊँट अनुसन्धान केंद्र बीकानेर द्वारा भी इनके प्रजनन को बढ़ाने के लिए कार्य किया जा रहा है एवं बड़े स्तर पर इनको बचाने के लिए सोशल मीडिया कैम्पेन, प्रदर्शनी, डोक्यूमेंट्री आदि के जरिए मुहिम चलाई जा रही है।

ऊँट की खाल से बने उत्पाद (स्रोत: www.camelsaust.com.au/camel products)

ऊँट के दूध का संकलन सरकारी डेरी, आरसीडीएफ द्वारा किया जाता है।

सरकार द्वारा अन्य तरीकों से भी ऊँट पालन को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके कुछ मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं:

ऊँट के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए, पशु की लगातार घटती संख्या को रोकने हेतु ऊँट प्रजनन को बढ़ावा देने की दिशा में राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के अंतर्गत "ऊष्ट्र विकास योजना" लागू की गयी है। सरकार द्वारा इनके उत्थान के लिए राजस्थान ऊँट बिल पारित किया गया है जिसके तहत सरकार द्वारा ऊँट और ऊँटपालक का सरकारी पंजीकरण अनिवार्य है।

ऊँट बीमा को भी सरकार द्वारा बढ़ावा दिया गया है यानि ऊँटपालक को अपने पशु का बीमा करा सकते हैं।

सरकार ऊँटपालकों को गर्भवती मादा ऊँटनी के रजिस्ट्रेशन पर 3000 रूपये देती है। उसके बाद उसके बच्चे को एक महीने का हो जाने पर दूसरी किस्त 3000 रूपये देती है उसके बाद बच्चे की आयु 9 माह होने पर तीसरी किस्त 4000 रूपये देती है।

पशुपालकों की समस्याएं

ऊँट पालने वाले किसानों को काफी समस्याएं हो रही हैं। कोटा के ऊँटपालक किसान कहते हैं कि सबसे बड़ी समस्या तो हमारे सामने चारे की है क्योंकि घास के मैदान राज्य में बहुत कम हैं, इसलिए सभी पशु छः महीने दूसरे राज्य में रहते हैं और छः महीने अपने राज्य में, इसके अलावा सरकार द्वारा लगाए गए दूसरे

ऊँट के बाल से बना कम्बल (स्रोत: www. global.recuten.com; Internet)

राज्य में बेचने के प्रतिबन्ध से व्यवसाय पर फर्क पड़ा है क्योंकि पहले इनको बेचकर पशुपालको की आमदनी हो जाती थी। एक ऊँट लगभग 50,000 से 70,000 रूपए में बेचा जाता था वहीं इनके बच्चे की 20000 से 50000 रूपए तक कीमत मिल जाती थी। ऊँट पालकों का कहना है कि उनके पास इसके अलावा कोई और व्यवसाय का साधन नहीं है। सरकार द्वारा दिया जाने वाले अनुदान में ऊँटों को पालने का भी पूरा नहीं हो पाता है।

निष्कर्ष

ऊँट बहुउपयोगी पशु है, इनकी लगातार कम होती संख्या चिंतनीय है। विलुप्त होती प्रजाति को बचाना बहुत जरुरी है। इनके संरक्षण के लिए एक नेशनल पार्क की आवश्यकता है। इनकी संख्या में लगातार गिरावट से तो लगता है कि आने वाले कुछ वर्षों में ऊँट पूरी तरह से विलुप्त हो जायेंगे। इसके लिए सरकार को कुछ और ठोस कदम उठाने चाहिए। इसी के साथ चाहिए की ऊँटपालकों को हो रही परेशानी को ध्यान में रखते हुए अनुदान बढ़ाने या देने के बजाए आत्मनिर्भर बनाया जाए, जिससे कि ऊँटपालक ऊँट पालने के साथ-साथ अन्य लघु उद्योग भी कर सकें। इसी के साथ इनके प्रजनन को और अधिक बढ़ाने के लिए अनुसंधान पर जोर दिया जाए। ऊँटों के लिए अलग अभ्यारण्य की स्थापना की जाये। ऊँट के उत्पादों पर शोध किये जाएं जिससे कि उनका व्यावसायिक महत्व बढ़े।

पुष्कर मेले में ऊँट (स्रोत: भाकृअनुप- रा.प.आनु.सं. ब्यूरो, करनाल)

गधा: अश्व परिवार का विशेष पशु

कर्ण वीर सिंह

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001 (हरियाणा)

गधा (एक्वस अफ्रीकेनस एसिनस), घोड़े की प्रजाति की एक उपजाति 'एसिनस वर्ग' का पशु है। शारीरिक आकार में यह घोड़े से छोटा होता है, कान लंबे होते हैं, पूँछ का आकार और रंग घोड़े से सर्वथा भिन्न होता है। इसे लोग मुख्यतय: सामान ढ़ोने के लिय पालते हैं। गधे को अधिकतर धोबी और कुम्हार वर्ग के लोगों द्वारा पाला जाता है। आजकल इसका प्रयोग मुख्यत: ईंट भट्ठों में तथा फ़ौज में मालवाहक के तौर पर होता है। गधे के रखरखाव तथा खाने का खर्च बहुत कम है। गधे को घोड़े की तुलना में अधिक बुद्धिमान माना गया है। दिशा और मार्ग के विषय में गधे की स्मरणशक्ति बहुत तेज है। यह अकेला लगभग 10 मील सामान लेकर आ-जा सकता है।

इस जीव में गजब की सहनशीलता है। इसके चेहरे का भाव हर्ष और विसाद दोनों में एक सा बना रहता है। यह पशु अपनी मंद बुद्धि और हठीलेपन के लिए प्रख्यात है। भारतवर्ष में इसका प्राचीनतम उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। प्राचीन साहित्यों में गधे के बारे में बहुत सी कहावतें प्रचलित हैं, जैसे : "धोबी का गधा, न घर का, न घाट का", "गधे के सिर से सींग की तरह गायब होना" और गधे की दुल्लती आदि।

कहा जाता है कि रोम की खूबसूरत रानी क्लियोपैट्रा अपनी त्वचा की खूबसूरती के लिए हर रोज पानी की जगह गधे के दूध से नहाती थी। दरअसल अन्य दूध की तुलना में गधी का दूध खट्टा माना जाता है। जब दूध खट्टा होता है, उसमें मौजूद लैक्टोज शुगर लैक्टिक एसिड में बदल जाती है। यह काम दूध में मौजूद बैक्टीरिया 'लेक्टोबैसिलस' करते हैं। इस तरह के एसिड जैसे ही त्वचा पर लगाए जाते हैं, वो 'डेड स्किन' को हटा देते हैं, जिससे नई और चमकदार त्वचा सतह पर आ जाती है।

आनुवंशिक इतिहास

यद्यपि हजारों वर्ष पहले गधे और घोड़ों के पूर्वज समान थे, परन्तु वे बहुत ही अलग प्रजाति के रूप में विकसित हुए हैं। जंगली गधे की दो अलग-अलग प्रजातियां हैं। एशियाई प्रजातियों की शाखा लाल सागर से उत्तरी भारत और तिब्बत तक फैले क्षेत्र से आई है, जहां गधे को विषम जलवायु और ऊंचाई के इलाके पर अपने आप को अनुकूलित करना पड़ा। नतीजतन यह हुआ की आज एक से अधिक प्रकार के एशियाई जंगली गधे पाए जाते हैं। प्रजातियों की अफ्रीकी शाखा उत्तरी तट में भूमध्य सागर और सहारा रेगिस्तान के बीच दक्षिण में लाल सागर तक पाई जाती है। आज अफ्रीकी गधे की दो अलग-अलग प्रजातियां हैं। न्यूबियन जंगली गधा और सोमाली जंगली गधा। अनुवांशिक अनुसंधानों में गधे को अफ्रीकी मूल का जानवर माना गया है, लेकिन इन्हें पालतू बनाये जाने के समय और स्थान के बारे में निश्चित तौर पर कुछ कहना मुश्किल है। वर्ष 2002 में मिस्र में एक शाही कब्रिस्तान की खुदाई कर रहे अमेरिकी पुरातत्वविदों के दल को यकीन था कि वे इतिहास की इस प्राचीनतम पहेली का हल सुलझा देंगे। उन्हें गधों के कंकाल मिलने की उम्मीद कतई नहीं थी। इन गधों को ऐसे दफनाया गया था, मानो ये कोई आला अधिकारी हों। इन कंकालों से पांच हजार साल पहले गधों को पालतू बनाए जाने के प्रमाण मिलते हैं।

लगभग 2000 साल पहले गधों को प्रशांत महासागर से रेशम को व्यापारिक सामानों के बदले सिल्क रोड के साथ भूमध्यसागर तक

मिस्र के एक शाही कब्रिस्तान में मिले थे पांच हजार साल पहले गधों से ढुलाई के प्रमाण (स्रोत: www.thinkdifferentlyaboutsheep.weebly.com/animals-in-art-donkeys.html)

ले जाने के लिए इस्तेमाल किए जाता था। ग्रीस में गधों को संकीर्ण पथों के बीच काम करने के लिए एक आदर्श जानवर माना जाता है। इसी कारण अंगूर के बागानों में खेती के लिए उनका उपयोग भूमध्य देशों से स्पेन तक फैल गया, जिसका दक्षिणी सिरा उत्तरी अफ्रीका के तट तक फैला है और संभवत: यह अफ्रीकी जंगली गधे के लिए एक प्रवेश द्वार था।

गधे का उपयोग कृषि में और भारवाही जानवरों के रूप में किया जाता था। रोमन आक्रमण के साथ गधे इंग्लैंड आए थे। हालांकि 1550 के दशक तक ब्रिटेन में गधे आम नहीं थे और 1650 के दशक तक आयरलैंड में भी दुर्लभ थे। जब ओलिवर क्रोमवेल ने कृषिभूमि पर काम करने के लिए घोड़ों को हटाने के लिए आयरिश लोगों को मजबूर किया, तब गधे एक शक्ति के स्रोत के रूप में अपनाये गए। यह जानवर चुस्त, कठोर और कड़ी मेहनत का रूप है।

भारत में गधे

भारत में बड़े और छोटे आकार के गधे आम हैं। बड़े आकार के गधे रंग में हल्के भूरे रंग के होते हैं। छोटे आकार वाले काले रंग से भूरे रंग के होते हैं। इसके अलवा दो जंगली गधों की प्रजातियाँ भी पाई जाती हैं। आज, अधिकांश जंगली गधे की प्रजातियाँ या तो विलुप्त हैं या लुप्तप्राय हैं जिन में से एक प्रजाति खर जो कि विलुप्त होने के कगार पर है आज सिर्फ कच्छ के रण में पाई जाती हैं और कियांग जो पूर्वोतर राज्य सिक्किम और उत्तर में हिमालय के लद्दाख में पाई जाती है। ये गहरे भूरे रंग के होते हैं और इनके पेट का भाग सफ़ेद होता है। कियांग जंगली गधे की आबादी तिब्बत, चीन, नेपाल और भारत के पर्वती क्षेत्रों में व्यापक रूप से वितरित है। जंगली गधे कियांग की विभिन्न श्रेणियों में तीन उप-प्रजतियाँ प्रभाषित की गई हैं;- हालांकि इनका वर्गीकरण अभी भी विवादास्पद और अनिश्चित है।

गधे के गुण सुधार के लिए साल 1990 में विदेशी गधे पोइतु का फ्रांस से निर्यात किया गया था और 2010 में पोइतु गधे से ए.आई. का मानकीकरण कर लिया गया। इसके अलावा देश में स्वदेशी नस्लों के घोड़े व गधों के लिए अभयारण्य का निर्माण 2010 में किया गया। हरियाणा और उत्तर प्रदेश, तथा भारतीय सेना के एक्वाइन प्रजनन फार्म में आज फ्रांस और अन्य यूरोपीय देशों से प्राप्त विदेशी नस्ल की अच्छी गुणवत्ता वाले गधे के स्टैलियन पशुपालन विभाग द्वारा रखे जा रहे हैं। इंग्लैंड में स्थापित गधा अभयारण्य संस्था, इन जानवरों के मालिकों को संवेदनशील बनाने में मदद के लिए कई देशों के साथ काम करती है, और आज दिल्ली, अहमदाबाद, ग्वालियर, सोलापुर और सीकर में पांच परियोजनाएं संचालित कर रही है। लेह-लद्दाख में गधे के लिए एक अभयारण्य भी स्थापित किया गया है।

स्पीति गधा, भारतीय गधे की एक मात्र पंजीकृत नस्ल है, जो हिमाचल प्रदेश के लाहौल और स्पीति क्षेत्र में पाई जाती है। इस नस्ल का उपयोग कम ऑक्सीजन वाले पर्वतीय वातावरण में काफी लाभकारी है। आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान और अन्य राज्यों में भी गधे के पालन करने वाले लोगों के कुछ अलग गांव हैं। भारतीय मेले का महत्त्व गधों के बिना अधूरा है और कुछ विशेष मेले तो केवल गधों और घोड़ों के लिए ही आयोजित होते हैं, जैसेकि बाराबंकी मेला या देवा मेला जो प्रत्येक वर्ष अक्टूबर में, पूर्णिमा से लगभग एक सप्ताह पहले लखनऊ के पास देवा शरीफ शहर में आयोजित होता है। धौलेरा के पास साबरमती और वाटरक नदियों के संयोजन पर वाउथा गांव में पांच दिनों के लिए मवेशी मेला आयोजित होता है जो भारत का सबसे बड़ा गधा मेला है। इसी प्रकार उज्जैन, सोनपुर, पुष्कर, नागौर, झालावाड़, गंगापुर(भीलवाड़ा), कलायत मेला और आगरा के पास बटेश्वर मेला। इसके अलावा भारत के अन्य कम ज्ञात मवेशी मेले जैसे कि काराउली पशु मेला, नलवारी पशु मेला, कुंडा मेला, रामदेव मवेशी मेला और कुलकुंडा पशु मेला आदि भी लगते हैं जहाँ गधों का विशेष महत्व है।

खच्चर

गधे व् घोड़ी के संकरण से खच्चर पैदा होता है। यदि नर घोड़ा हो और मादा गधा हो तो खच्चर जैसा हिन्नी पैदा होता है। यह गधे और घोड़े दोनों की अपेक्षा अधिक ताकतवर होते हैं और ज़्यादा बोझ ढ़ो सकते हैं। खच्चर में जो अतिरिक्त ताकत व सहनशीलता पाई जाती है वह संकर ओज (हाइब्रिड विगर) का परिणाम है। खच्चर में कई विशेषताएं हैं जो घोड़ों से भिन्न होती हैं। सबसे अधिक ध्यान देने

(स्रोत: www.postagestamps.gov.in/Stamps20131.aspx)

योग्य विशेषताओं में से एक खच्चर के लंबे और बहुत बड़े कान हैं। यह गधों से ज्यादा बोझा ढ़ोने में माहिर होते हैं। खास तौर से पहाड़ी इलाकों में खच्चर सवारी के काम भी आता है। आधुनिक पालतू खच्चर मुख्य रूप से न्यूबियन घोड़ो के वंशज हैं। गधे, खच्चर और घोड़े के बीच मुख्य अंतर आनुवंशिक है। घोड़ों में 64 गुणसूल हैं, गधे में 62 और खच्चर/ हिन्नी में 63 होते हैं। इसी कारण खच्चर और हिन्नी बाँझ होते हैं हालांकि कई उदाहरण है जहाँ खच्चर या हिन्नी ने घोड़े या गधे के साथ सफल गर्भधारण किया है।

18वीं सदी से पहले और उसके बाद प्रजातियों की समझ में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अरस्तू से लेकर कार्ल लीनियस के समय तक प्रजाति एक अपरिवर्तनीय श्रेणी थी। यह सजीवों के एक ऐसे समूह को परिभाषित करती थी जो चिर-स्थायी मानी जाती थी। अरस्तू मानते थे कि हर प्रजाति का एक मूल तत्व होता है और सन्तानोत्पत्ति की क्रिया के ज़रिए यह मूल तत्व अगली पीढ़ी को सौंपा जाता है। कार्ल लीनियस, जिन्होंने सारे सजीवों को समानता के आधार पर समूहों में बाँटने का प्रयास किया था और हमें आधुनिक वर्गीकरण प्रणाली दी थी, भी मानते थे कि प्रजाति एक स्थायी समूह है। इस तरह से देखें तो खच्चर उनके लिए एक बड़ी चुनौती थी। उसमें न तो घोड़े का मूल तत्व है, न गधे का, तो फिर खच्चर का मूल तत्व क्या है?

वर्तमान में गधा और खच्चर पालकों की अनेक समस्याएं हैं और इन समस्याओं का हल सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं को मिलकर ही करना होगा। पशुपालन विभाग अब तक दुधारू पशुओं और पालतू पशुओं के स्वास्थ्य को प्राथमिकता देता रहा है। जो लोग सबके भविष्य को संवारने के साथ प्रकृति के संरक्षण में कठिन श्रम कर रहे हैं, उनके हित के लिए शासन-प्रशासन के साथ आमजन को भी सोचना होगा, ताकि उन्हें गरीबी के जंजाल से बाहर निकाला जा सके।

85 सेंटीमीटर की गाय से खारा पानी पीने वाली भैंस तक: एक नजर डालें भारत के अद्वितीय पशुधन आनुवंशिक संसाधनों पर

अनुज चौहान, अरविंद सोनवने, रणवीर सिंह, सुशील कुमार, सुबोध कुमार एवं भारत भूषण

भाकृअनुप - भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्ज़तनगर - 243122 (उत्तर प्रदेश)

संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन की परिभाषा के अनुसार, पशु आनुवंशिक संसाधनों में वह सभी पशु प्रजाति, नस्ल और उपभेद शामिल हैं जिनका प्रयोग वर्तमान या भविष्य में खाद्य पदार्थों और कृषि उत्पादन के संदर्भ में मानव जाति के आर्थिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिए उपयोगी है। परंपरागत रूप से, पशुधन संसाधन की दृष्टि से भारत एक विशाल जैव विविधता का केंद्र रहा है और प्राचीन समय से यहाँ गाय, भैंस, भेड़, बकरी, शूकर, ऊंट, घोड़ा, गधा, याक और मिथुन का पालन किया जाता है। कुक्कुट में, मुर्गी के अलावा, बत्तख, हंस, बटेर, टर्की, फीसेंट और पेर्ट्रिज जैसे पालतू उपभेद भी मौजूद हैं। कुछ क्षेत्रों में अन्य प्रजातियां जैसे खरगोश और कबूतर भी महत्वपूर्ण हैं। इन पशु आनुवंशिक संसाधनों के विशाल और विविध रूपों ने भारत की मूलतः कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। खेती किसानी से बचे कचरे, घास-फूस के इस्तेमाल और परिवार के लोगों के श्रम के जरिये ही पशुओं की साज-संभाल होती है। विभिन्न घरेलू पशुधन और कुक्कुट प्रजातियों की नस्लें दूध, मांस, ऊन, फाइबर, अंडा, खाद, ईंधन, जुताई तथा भारवहन एवं कृषि कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। पशुधन संसाधन भूमिहीन और छोटे भूमिधारकों के लिए आय, रोजगार और खाद्य सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसके अतिरिक्त देशवासियों की सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं की पूर्ती की दृष्टी से भी हमारे पशुधन एक विशिष्ट धरोहर हैं। देश में विविध जलवायु एवं पारिस्थितिकी क्षेत्र होने के कारण पशुधन प्रजातियों की बड़ी संख्या में नस्लें विकसित हुई है । वर्तमान में, भारत में पशुओं और मुर्गियों की 169 पंजीकृत नस्लें हैं, जिसमें गाय की 41, भैंस की 13, भेड़ की 42, बकरी की 28, घोड़े की 7, शूकर की 7, ऊंट की 9, गधे एवं याक की 1-1 और कुक्कुट समुदाय में मुर्गी की 18 एवं बत्तख व गीज की 1-1 नस्लें शामिल हैं। यह महत्वपूर्ण है कि पिछले वर्षों में पहली बार याक, बत्तख व गीज की नस्लें भी पंजीकृत की गयी हैं। आज देश के सुदूर - दुर्गम इलाकों से नयी-नयी पशुधन नस्लें निकल कर आ रहीं हैं। 2016 में कुल 9 नई पंजीकृत नस्लों में 5 पूर्वोतर राज्यों से हैं और इन क्षेत्रों में और भी नस्लें होने की संभावना हैं। अभी भी भारत के मुख्य पशुधन गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, व शूकर की और भी अधिक संख्या में नयी नस्लें हो सकती हैं। इस के अलावा, खच्चर, याक, मिथुन, बत्तख, बटेर जैसी अन्य प्रजातियों की आबादी की अधिक संख्या, को वर्गीकृत किया जाना बाकी है। भारत के भिन्न- भिन्न प्रांतों में ऐसी पशुओं की स्थानीय पशुधन नस्लें/ आबादी मौजूद हैं जो उस क्षेत्र की ग्रामीण आबादी की जीवन रेखा का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनका रखरखाव पारिस्थितिक रूप से अधिक टिकाऊ है, खासकर सीमांत वातावरण में वे अक्सर विशेष उत्पादों के लिए प्रयुक्त होती हैं। वह कार्यों की एक विस्तृत श्रृंखला को पूरा करती हैं और बड़ी संख्या में उपयोगी उत्पादों को प्रदान करती हैं। किसानों द्वारा छोटे/ बड़े झुंड में नस्लीय तथा गैर-वर्णित स्वदेशी जानवरों का रखरखाव किया जा रहा है। इस लेख में आगे ऐसी नस्लों का वर्णन किया गया है, जो कठिन कृषि-जलवायु स्थितियों में रहते हुए भी विलक्षण गुणों के प्रदर्शन के कारण अद्वितीय कहलाई जा सकती हैं ।

वेचूर गाय

वेचूर नस्ल का नाम केरल के कोट्टायम जिले के एक गांव के नाम पर पड़ा जहां ये गायें मूल रूप से पाई जाती हैं। यह नस्ल उच्च वसा वाले दूध, कम चारे की आवश्यकता और बीमारियों के लिए उच्च प्रतिरोधकता के लिए बहुत लोकप्रिय रही है। गिनीज बुक ऑफ रिकॉर्डस में सबसे छोटे कद की गौ-प्रजाति के रूप में वेचूर नस्ल की एक गाय 85 सेमी. की ऊंचाई, 124 सेमी. की लंबाई और 130 किग्रा. वजन को मान्यता मिलने से यह बहुत प्रसिद्ध हुई। अगर इस जगह के इतिहास के पन्ने पल्टें तो वेचूर और आस-पास के स्थानों में जल मार्ग परिवहन का मुख्य साधन था। क्षेत्र के जानवरों का आवागमन नदियों, नालों और बैकवाटर जैसी बाधाओं के कारण प्रतिबंधित था, जिसके कारणवश इनका भौगोलिक अलगाव हुआ।

वेचूर गाय

खराई ऊंट

इसके अलावा भारी वर्षा और क्षेत्र की गर्म आर्द्र जलवायु ने भी एक छोटी सी गाय के लिए प्राकृतिक चयन का कार्य किया। वेचूर बैल अपने छोटे आकार और हल्के वजन के साथ भी, दलदली धान क्षेत्रों में खेती के लिए उपयुक्त थे। इन गायों के लिए कम लागत की आवश्यकता ने भी क्रमिक विकास में योगदान दिया। वेचूर गाय केरल की आदर्श आंगन की गाय के रूप में प्रतिष्ठित है जो एक छोटे परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करती है। इसके चलते यह ऐसी गायों में से एक है, जो प्रथा के तौर पर बेटियों को शादी का उपहार देने के लिए प्रसिद्ध है। इस नस्ल के सींग पतले, छोटे और नीचे की ओर मुड़े रहते हैं। किसी-किसी पशु में सींग बहुत छोटे होते हैं और मुश्किल से दिखाई देते हैं। वेचूर गाय की विशेषता है कि उनके खाने का खर्च कम और दूध की मात्रा अधिक होने के साथ-साथ उसका दूध अधिक वसा-युक्त (6.02 से 7.86 प्रतिशत) होता है। इसके दूध में वसा ग्लोब्यूल का छोटा आकार इसे आसानी से पचाने योग्य, बच्चों के लिए एवं स्वास्थ्य लाभ हेतु आदर्श भोजन बनाता है।

खराई ऊंट

खराई ऊंट गुजरात राज्य में कच्छ क्षेत्र के तटीय हिस्से मुख्यतः मुंद्र के टुंडावांढ, अबसाडा के मोहाडी, लैयारी और भचाऊ के जंगी गांव में में पाया जाता है । इन ऊंटों के लिए शुष्क भूमि और तटीय परितंत्र दोनों परिस्तिथियाँ अनुकूल हैं इनमें समुद्र के पानी में तैरने की अदभुत क्षमता है। ये मुख्य रूप से मैनग्रोव और अन्य खारे पानी की प्रजातियों को चरते हैं । खराई ऊंट उच्च खारा पानी पर फल-फूल सकता है और उच्च ज्वार-भाटा को सहन कर सकता है। समुद्र तट पर समुद्र के भीतर लगने वाली 'मैंग्रूव' वनस्पति ही खराई ऊंट का मुख्य आहार है। इस कारण हर रोज 5 से 7 किलोमीटर तक पानी में तैर कर ये ऊंट 'मैंग्रूव' तक पहुंचते हैं। जमीन पर दौड़ने, रेगिस्तान में चलने और समुद्र में तैरने की क्षमता रखने वाले खराई ऊंट अन्य ऊंटों के मुकाबले अलग होते हैं। खराई ऊंट वजन में हल्के होते हैं। उनके कान छोटे होते हैं और इनकी खूंध भी छोटी होती है। कच्छ में रबारी, मुस्लिम और समा जाति के लोग ऊंट पालन व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। स्थानीय स्तर पर नर ऊंट का माल परिवहन में उपयोग होता है। हालांकि अब ऊंटनी के दूध को बेचकर भी पैसा कमाया जा रहा है और दूध उत्पादक डेरियों के साथ सरकार एवं संस्थाएं ऊंटनी के दूध का बाजार खड़ा करने की कोशिश कर रही हैं।

गैरोल भेड़

यह एक छोटी आकार की भेड़ की नस्ल है जो पश्चिम बंगाल के सुंदरबन डेल्टा क्षेत्र में पाई जाती है। ग़ैरोल अपनी बहुप्रसवता की खूबी और सुंदरबन क्षेत्र के गर्म और आर्द्र वातावरण, लवणीय मार्श भूमि के अनुकूलन के लिए प्रसिद्ध है। इस नस्ल में जुड़वां और तीन मेमनों का जन्म आम है। गैरोल में घुटने की गहराई तक दलदली भूमि में चराई करने की क्षमता है। इसका रंग आम तौर पर सफेद–भूरा होता है। काले या भूरे रंग के जानवर भी देखे जाते हैं। नर में आम तौर पर सींग होता है और मादाएं सींग रहित होती हैं। गेरोल भेड़ को मुख्यतः मांस उत्पादन के लिए रखा जाता है तथा

गैरोल भेड़ (स्रोत: रा.प.अनु.सं. ब्यूरो, करनाल)

केंद्रपाड़ा भेड़

किसान आम तौर पर ऊन नहीं काटते हैं। उच्च प्रजनन क्षमता एवं बहुअजता के लिये पहचाना गया फेक-बी जीन इस नस्ल में मौजूद है। फेक-बी जीन अण्डाणु देने की दर एवं प्रति ब्यांत बच्चा देने की दर को बढ़ाता है। इसका प्रभाव अण्डाणु देने की दर पर योगात्मक तथा प्रति ब्यांत बच्चा देने की दर पर आंशिक प्रभावी होता है। इस जीन का एक प्रतिरूप अण्डाणु उत्सर्जन की दर को 1.6 गुणा बढ़ाता है या एक से दो अतिरिक्त बच्चो की संख्या को बढाता है तथा इसके दो प्रतिरूप अण्डाणु देने की दर को लगभग तीन गुणा बढ़ाते हैं। छोटी कद काठी की इस भेड़ का वजन औसतन 16-18 किग्रा. होता है। आस्ट्रेलिया में पाई जाने वाली प्रसिद्ध भेंड़ बूरुला की उच्च उर्वरता भी फेक बी जीन का ही नतीजा है। गहन डीएनए मार्कर आधारित तकनीक से यह स्थापित हो गया है कि फेक-बी जीन उत्परिवर्तन आस्ट्रेलियाई भेड़ समूहों में भारत की गैरोल भेड़ से हुआ है, तत्पश्चात् उन भेड़ों में निरंतर संकर प्रजनन से बूरूला मेरिनो की उत्पत्ति हुई। के.भे. एवं ऊन.अनु. सं., अविकानगर एवं पशु आनुवंशिकी विभाग, भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज़्ज़तनगर, बरेली ने सुंदरबन क्षेत्र में मौजूद गैरोल भेडों में फेक-बी जीन की वस्तु-स्थिति तथा फेक-बी जीन की आनुवंशिक बहुरूपता का उच्च प्रजनन क्षमता एवं बहुअजता यानि प्रति ब्यांत बच्चा देने की दर के साथ उसके सहसम्बंध पर अध्ययन किया है तथा गैरोल के उपयोग से देश की अन्य भेड़ों में सुधार की संभावना को दर्शाया है। भारत में इस जीन का प्रसार गैरोल भेड़ के प्रजनन के द्वारा दक्कनी, बन्नूर, मालपुरा आदि नस्लों मे किया जा रहा है। केंद्रीय भेंड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, राजस्थान द्वारा विकसित संकर भेड़ 'अविशान' में 12.5 प्रतिशत गैरोल, 37.5 प्रतिशत मालपुरा और 50 प्रतिशत पाटनवाड़ी वंशानुगतता सम्मिलित है।

केंद्रपाड़ा भेड़

केंद्रपाड़ा भेड़ की नस्ल ओडिशा के छः तटवर्ती जिलों-केंद्रपाड़ा, जगतसिंहपुर, कटक, पुरी, जाजपुर और भद्रक में पाई जाती है। स्थानीय स्तर पर केंद्रपाड़ा भेड़ को कुजी कहा जाता है। यह भारत में राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा भेड़ नस्ल का पंजीकरण प्राप्त करने वाली 42वीं नस्ल है। केंद्रपाड़ा भेड़ भारत की दूसरी तथा विश्व की छठीं भेड़ के रूप में चिह्नित की गई है जो फेक बी जीन का वाहक होती है। गैरोल की तरह यह जीन इसे एक से अधिक बच्चे जनने में सक्षम बनाता है। केंद्रपाड़ा भेड़ उच्च तापमान, उच्च आर्द्रता और भारी वर्षा के परिवेश के लिए स्वयं को अनुकूलित बना लेती है। इस भेड़ का उपयोग मुख्य रूप से मांस के उत्पादन हेतु होता है। यह भेड़ मुख्यतः भूरे रंग के होती हैं। इसका सिर, चेहरा, पेट तथा पैर ऊन रहित होता है। शरीर का अन्य भाग गैर-चमकदार बालों से आच्छादित होता है। कुछ नर भेड़ों में बटन प्रकार के सींग पाए जाते हैं। वयस्क भेड़ों का वजन 24 से 30 किग्रा. के मध्य पाया जाता है। इस प्रजाति के भेड़ों की अनुमानित संख्या सवा लाख के करीब है।

कड़कनाथ मुर्गी

कड़कनाथ मुख्यतः मध्यप्रदेश के झाबुआ और धार इलाके में बहुतायत में पायी जाती है। इसके अलावा यह छत्तीसगढ़, राजस्थान और गुजरात के कुछ हिस्सों में भी मिलती है। मध्यप्रदेश

और छत्तीसगढ़ दोनों राज्य कड़कनाथ के मूल प्रजनन क्षेत्र होने का दावा कर रहे थे। लेकिन हाल ही में मध्यप्रदेश ने इस मुर्गी की भौगोलिक पहचान से जुड़ा 'जिओग्राफिकल इंडिकेशन' टैग हासिल कर लिया है। इस नस्ल की खासियत है कि इसके मांस में वसा (फैट) एवं कोलेस्ट्राल कम होता है और प्रोटीन ज्यादा। लोगों में मान्यता है कि दिल और डायबिटीज के रोगियों के लिए कड़कनाथ बेहतरीन दवा है। इसके अंडे काफी महंगे होते हैं। इसका एक अंडा करीब 50 रुपये में बिकता है जबिक एक कड़कनाथ मुर्गे की कीमत 900 से 1200 रुपये प्रतिकिलो तक होती है। वयस्क मुर्गी की कीमत 3000 से लेकर 4000 के बीच होती है। स्थानीय भाषा में कड़कनाथ को कालीमासी भी कहते हैं, क्योंकि इसका मांस, चोंच, जुबान, टांगे, चमड़ी आदि सब कुछ काला होता है यहां तक कि कलगी, वेटल्स और जीभ भी बैंगनी रंग की दिखती हैं। लोलकी का चमकता नीला रंग अपनी अद्वितीय विशेषताओं को दर्शाता है। इस नस्ल की ख़ासियत यह है कि इसके अधिकतर आंतरिक अंग काले रंग के दिखाई देते हैं जो दिल, आंतो, वायुनली आदि धमनियों में अधिक स्पष्ट होते है। मांसपेशियों और ऊतकों का काला रंग मेलेनिन रंगद्रव्य के कारण होता है। कड़कनाथ प्रजाति के तीन रूप हैं। पहला जेड ब्लैक, इसके पंख पूरी तरह काले होते हैं। दूसरा पेंसिल्ड, इस मुर्गे का आकार पेंसिल की तरह होता है। पेंसिल्ड शेड मुर्गे के पंख पर नजर आते हैं जबकि तीसरी प्रजाति गोल्डन कड़कनाथ होती है। इस मुर्गी के पंख पर गोल्ड छींटे दिखाई देते हैं। इसकी मांग देश के कोने-कोने में है। हालात यह है कि झाबुआ के कृषि विज्ञान केंद्र स्थित हैचरी में कड़कनाथ के चूजे लेने के लिए महीनों की वेटिंग चल रही है। कर्नाटक, हैदराबाद एवं उत्तर प्रदेश के लोग कड़कनाथ के चूजे लेना चाहते हैं। मध्यप्रदेश के सहकारिता विभाग ने 'मध्यप्रदेश कड़कनाथ ऐप' तैयार किया है जिससे अब यह लोकप्रिय मुर्गा आपको घर बैठे मिल सकेगा।

पश्मीना बकरी

पश्मीना, जिसे विश्व में पशुओं से प्राप्त रेशों में से सबसे बेहतरीन रेशा माना जाता है को चांगथांगी और चेगू नस्ल की बकरियों से प्राप्त किया जाता है। चांगथांगी नस्ल जम्मू-कश्मीर राज्य में लेह के चांगथांग तहसील में पायी जाती है तथा चेगू नस्ल का प्रजनन क्षेत्र स्पीति डिवीजन (लाहुल और स्पीति जिला) के ठंडे रेगिस्तान क्षेत्र, किन्नौर जिले की हैंगंग घाटी, लाहुल क्षेत्र के टोड और मियार घाटी क्षेत्र और पेंगी घाटी (चंबा जिला) में सुराल और उदेन के उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों तक सीमित है। ये बकरियां समुद्र तल से करीब 14,000 फुट की ऊंचाई पर पायी जाती हैं तथा एक मोटी, गर्म अंडरकोट विकसित करती हैं जो कश्मीर पश्मीना ऊन का स्रोत है। इन नस्लों को मुख्य रूप से पूरे साल खुले रेंज में चराई प्रणाली के तहत रखा जाता हैं। ये नस्ल स्थानीय ठंड एवं शुष्क कृषि-जलवायु स्थितियों के अनुकूल है। विशेषकर चांगथांगी ठंड के प्रति बहुत सहिष्णु है और पहाड़ में केवल घास पर जीवित रह सकती है, जहां तापमान शून्य से 20 डिग्री सेल्सियस नीचे तक गिर जाता है। ये नस्ल सबसे बहुतायत में सफेद रंग में ही मौजूद है हालांकि भूरे–लाल, भूरे और काले जानवर भी देखे जाते हैं। नस्ल में सफेद रंग पश्मीना फाइबर रंग की मांग को ध्यान में रखते हुए बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें सफेद

कड़कनाथ मुर्गी (स्रोतः रा.प.अनु.सं. ब्यूरो, करनाल)

निकोबारी मुर्गी

चेगू बकरी

अम्ब्लाचेरी गाय

रेशा बाजार में अपनी दुर्लभता और ब्लीचिंग के बिना डाइंग के लिए उपयुक्तता के कारण उच्चतम कीमत में बिकता है। भारत के पश्मीना ऊन की पूरी दुनिया में बड़ी मांग है। बेहतरीन कपड़ों को बनाने में इसका इस्तेमाल किया जाता है। एक बड़ी पश्मीना शाल को बनाने के लिए तीन बकरों से प्राप्त ऊन का प्रयोग किया जाता है और एक बकरे से लगभग 80 से 170 ग्रा. तक ऊन प्राप्त हो जाती है। पश्मीना का धागा सिर्फ14 से 19 माइक्रॉन्स का होता है, यानि मनुष्य के बाल से भी छह गुना पतला। मौसम की विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए चंगथांगी और चेगू बकरियों को पालने वाले पशुपालक घूमंतू रूप से जीवन यापन करते हुए चारागाह की खोज में झुण्ड में बकरियों को एकजगह से दूसरे जगह पर ले जाते हैं।

अम्ब्लाचेरी गाय

अम्ब्लाचेरी कृषि कार्य श्रेणी की नस्ल है जो तमिलनाडु राज्य में नागपट्टिनम और तिरुवरार जिलों के तटीय मैदानों की मूल निवासी है। अम्ब्लाचेरी के पालन का मुख्य उद्देश्य उच्च ड्राफ्ट क्षमता और गर्मी के प्रति सहिष्णुता के साथ ग्रीष्म ऋतु में प्रति दिन लगभग 6-7 घंटे के लिए दलदली व धँसाऊ धान क्षेत्रों के गीले खेत में हल जुताई की विशेषता के कारण है। अम्ब्लाचेरी नस्ल हल्के वजन होने के कारण इस क्षेत्र में उपलब्ध जलीय प्रकार की मिट्टी में काम करने के लिए बहुत उपयुक्त है। अन्य उद्देश्य में कार्टिंग, जुताई और थ्रेसिंग शामिल हैं। इस गाय के बछड़े किसी हिरण के शावक जैसे दिखते है और लाल अथवा भूरे रंग के होते हैं। तीन से चार महीने की आयु में लाल रंग, सलेटी या सफेद रंग में बदलना शुरू होता है। पूरा सलेटी रंग आम तौर पर छह से आठ महीने की आयु में प्राप्त होता है। अधिकतर गायों में चेहरे, गर्दन, श्रोणि हिस्सों पर गहरा भूरा रंग मौजूद होता है। युवा नरों में दो साल की उम्र में कूल्हे, आगे और पीछे के क्वार्टर का रंग काला हो जाता है। इसका औसत दूध उत्पादन 500 किग्रा. प्रति ब्यांत है।

बद्री गाय

यह उत्तराखंड के सुदूर पर्वतीय इलाकों में पाली जाने वाली छोटे कद की गाय है। पहाड़ी गाय के रूप में पहचान रखने वाली स्थानीय प्रजाति की बद्री गायें कद में बकरी और भेड़ से कुछ बड़ी होती हैं तथा इन गायों को पहाड़ पर चढ़ने-उतरने में भी दिक्कत नहीं होती है। इसके दूध की शुद्धता और पौष्टिकता का कारण इसका खानपान माना जाता है। दरअसल ये गायें जंगलों में होने वाली घास के साथ–साथ वहां उत्पन्न जड़ी-बूटी आदि भी चरती हैं। ये गायें पहाड़ों के मौसम के अनुकूल भी हैं। इस नस्ल को न्यूनतम देखभाल की आवश्यकता होती है और इनमें मजबूत रोग प्रतिरक्षा भी देखी गयी है। यह गाय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि इसे पहाड़ियों के उन क्षेत्रों में रखा जा सकता है जहां अन्य गाय किस्मों को पालना मुश्किल होता है। इसका औसत दूध उत्पादन 630 किग्रा. प्रति ब्यांत है।

निकोबारी मुर्गी

निकोबारी मुर्गी विशेष रूप से कार निकोबार, चौरा, टेरेसा, कैमोरोटा, कचल, तिलंचांग और ग्रेट निकोबार के गांवों जैसे पिलो भाभी,

चियांगन बस्ती और पिलपिलों में पायी जाती है। निकोबारी को स्थानीय रूप से 'थकनीट' के नाम से जाना जाता है जिसका अर्थ है छोटे पैर। इसकी खासियत इसके अन्य मुर्गियों की तुलना में छोटे पैर होते हैं। ये निकोबार की रेतीली जमीन और वहां के मैंगूज पेड़ों की उठी जड़ों से तेजी से निकलने के काम आते हैं। इसकी दौड़ काफी तेज होती है। यह उच्च फाइबर आहार का उपभोग और उपयोग करने में सक्षम है। निकोबारी भूरे मट्मैले रंग, मध्यम आकार, छोटे पैर वाली और एक गठीले शरीर वाली एक मजबूत मुर्गी है। गुलाबी रंग के वेटल और ईयर लोब्स, छोटी और मोटी गर्दन, भूरे रंग के शेड के साथ काले पंख, आगे की ओर उठी हुई छाती, मध्यम पूंछ, सैडल पंख लंबे और पूंछ के साथ अच्छी तरह नियोज्य हैं। आम तौर पर, सुबह में अण्डा देने के बाद यह भोजन की तलाश में लंबी दूरी तक चलती है और केवल शाम को वापस आती है। पक्षी घर के आस-पास के भोजन की खोज और उपभोग करके शरीरिक रखरखाव और उत्पादन के लिए अपनी पोषण संबंधी आवश्यकता को पूरा करती है। यह गर्म और आर्द्र जलवायु के अनुकूल है और इसे विस्तृत आवास सुविधाओं की आवश्यकता नहीं होती है। रात के दौरान पक्षी झाड़ियों में या घर के पास एक कोप के अंदर आश्रय लेता है। इसकी कठोर प्रकृति और आम पोल्ट्री रोगों के तुलनात्मक प्रतिरोधकता होने के कारण, व्यवसायिक प्रजनन के तहत रोग प्रतिरोधकता लक्षण के लिए माता-पिता में से एक के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

चिलिका भैंस

चिलिका भैंस को उसका नाम अपने मूल प्रजनन क्षेत्र से मिलता है, जो ओडिशा राज्य में चिलिका झील के आसपास है। नस्ल के प्रजनन क्षेत्र में ओडिशा के कटक, गंजम, पुरी और खुर्दा जिले शामिल हैं। ओडिशा में प्रसिद्ध चिलिका झील के किनारे स्थित गांवों में लोग लगभग शून्य लागत के साथ भैंसों को पालते हैं। चिलिका भैंसों को पूरे वर्ष कोई आवास उपलब्ध नहीं कराया जाता है। गर्मी और भारी बारिश के दौरान भैंसें गांव से दूर झील के तट पर पेड़ के नीचे आश्रय लेने के लिए जाती हैं। ये भैंस किसी भी खाद्य पूरक के बिना केवल चराई पर रहती है। झील में उगने वाली घास इन भैंसों को बहुत ज्यादा पसंद हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'छारा' और 'पिट्टा' कहते हैं। यह पशु चिलिका झील में गहराई तक प्रवेश करने और वहां उगने वाली वनस्पति पर भोजन करके ग्रामीण लोगों के लिए अच्छी कमाई कराती है। यह भैंस झील की बेकार घास को एक अत्यधिक पौष्टिक दूध उत्पाद में परिवर्तित करती है और लगभग शून्य निवेश के साथ ग्रामीण परिवेश में आय के एक अच्छे स्रोत के रूप में कार्य करती है। इस इलाके में जानवरों को देर दोपहर में झील में भेजा जाता है और उन्हें बिना किसी देखे पूरी रात वहां रहने दिया जाता है और फिर अगले दिन सुबह दुग्ध दोहन के लिए तट पर वापस लाया जाता है। दोहन दिन में केवल एक बार किया जाता है। चिलिका भैंस का रंग भूरा-काला या काला है। भैंस मध्यम शरीर, मजबूत पैर और छोटे उदर की होती है। सींग काले, सीधे, घुमावदार ऊपर और अंदर की ओर मुड़े होते हैं। इसका औसत दूध उत्पादन 8.7% की औसत दूध वसा के साथ 500 किग्रा. प्रति ब्यांत है।

जैविक विविधता मानव जाति के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए अनमोल वैश्विक धरोहर है। घरेलू पशुधन और कुक्कुट हमारे राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं और ग्रामीण क्षेत्रों के किसानों के लिए आय सुरक्षा और आजीविका विकल्पों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत के विविध कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों की विशाल श्रंखला ने पशुधन और कुक्कुट की विभिन्न प्रजातियों की बड़ी संख्या में नस्लों को विकसित करने में मदद की है। विशिष्ट पशुधन और कुक्कुट नस्लों की यह विविधता विशिष्ट पारिस्थितिकी के अन्दर सैकड़ो वर्षों के विकास के कारण उभरी है। कई जटिल और संवेदनात्मक कारक जैसे मनुष्य की जरूरतें, प्रजातियों की अनुकूलता, कृषि-जलवायु स्थिति, चयन और पशुपालन प्रथाएं अंततः एक नस्ल के उद्भव में सहयोगी होती हैं। विशेष कृषि-पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में विशिष्ट उद्देश्य के निर्वहन के लिए प्रत्येक नस्ल / प्रकार / स्ट्रेन को विशिष्ट जीनों के कुल के रूप में माना जाना चाहिए। पशु आनुवंशिकी संसाधनो में मौजूद जैव विविधता का देशवासियों के लाभ के लिए संरक्षण, रखरखाव और सुधार बेहद जरूरी है।

भारत में भेड़ पालन - एक परिचय

राकेश कुमार, मनदीप कौर, आशीष कुमार, सोनिका अहलावत एवं रीना अरोड़ा

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001 (हरियाणा)

भारत में भेड़ों का ऊन एवं मांस उत्पादन के लिए विशेष महत्त्व है। यह और बात है कि भारतीय भेड़ों की उत्पादन क्षमता इन दोनों मामलों में कम है। भेड़-पालन एक कम लागत वाला व्यवसाय है लेकिन हमारे पास भेड़ प्रजातियों के लक्षणों एवं उनमें विद्यमान उत्कृष्ट अनुकूली लक्षण, सहन शक्ति तथा रोग-प्रतिरोधक क्षमता इत्यादि गुणों में विविधता के बारे में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। फिर भी भेड़-पालन एक रूचिकर एवं लाभकारी व्यवसाय बन सकता है। यह व्यवसाय शुरू करने से पहले यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आप अपनी भेड़ों की देखभाल के लिए पर्याप्त समय और प्रयास लगाने के तैयार हैं या नहीं। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष जानकारी एकत्रित करने का प्रयास भी अवश्य होना चाहिए जो निम्नलिखित है:

- **एकल या साझा व्यवसाय:** आप यह व्यवसाय अकेले ही शुरू करना चाहते हैं या किसी अन्य अनुभवी व्यक्ति के साझीदार बनकर अनुभव प्राप्त करना चाहते हो।
- **भेड़ों की संख्या:** कितनी भेडें रखने का सामर्थ्य आप में है।
- **चरागाह की उपलब्धता:** चरागाह में चराने के उपरान्त भेड़ों के उत्तम स्वास्थ्य हेतु जरूरी चारा आसपास ही मिल जाना चाहिए।
- **ऊन की कटाई:** भेड़ों से ऊन की कटाई कैसे, कहाँ और किसके द्वारा की जाती है।
- **पशु चिकित्सक:** आसपास ही कोई पशु चिकित्सक उपलब्ध है या नहीं।
- **बीमारियों से बचाव:** भेड़ों में आने वाली बीमारियों एवं परजीवियों से उन्हें बचाने के बारे में जानकारियां एकत्रित करें।
- **भेड़ नस्ल का चुनाव:** अपने क्षेत्र की जलवायु एवं उपयोगिता अनुसार (मांस अथवा ऊन) ही भेड़ की नस्ल का चुनाव करें।
- **बाजार:** भेड़ों, मेमनों एवं ऊन को बेचने हेतु बाजार की उपलब्धता की जानकारी होनी चाहिए।

भेड़ पालन के लाभ

अपने अनेकों उपयोगों जैसे ऊन, दूध, मांस, खाल एवं खाद इत्यादि के कारण भेड़ को विशेषकर शुष्क, अर्द्ध-शुष्क एवं पहाड़ी क्षेत्रों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। यह व्यवसाय ऊन और मांस के विक्रय द्वारा भेड़ पालकों को आय का एक विश्वसनीय स्त्रोत प्रदान करता है। भेड़ पालन से निम्न प्रकार के लाभ हो सकते हैं:

- भेड़ों के आश्रय के लिए अधिक महंगे भवनों की आवश्यकता नहीं होती बल्कि दूसरे अनेक प्रकार के पशुओं की तुलना में बहुत कम मेहनत से इन्हें संभाला जा सकता है।
- भेड़ों का शुरूआती झुण्ड बहुत ही कम लागत से तैयार किया जा सकता है, जो तेजी से बढ़ता जाता है। यहाँ तक कि एक नर और एक मादा भेड़ से इसे शुरू किया जा सकता है, जो प्रति प्रजनन तेजी से बढ़ता रहता है।
- यह बहुत ही कम खर्च में घास को मांस व ऊन में बदलने वाला पशु है।
- यह विभिन्न प्रकार की वनस्पति को खा सकता है जो इसे खरपतवार-नाशकों में श्रेष्ठ बनाता है।
- भेड़ किसी भी प्रकार के पेड़ को हानि नहीं पहुंचाती।
- यह ऊन, मांस एवं खाद के उत्पादन द्वारा भेड़ पालकों को तीन विभिन्न प्रकार के आय के स्त्रोत प्रदान करती है।
- इसके होंठों की रचना खेतों से अनाज के उन दानों को उठाने में सहायता करती है जो फसल एकत्रित करते समय खेतों में गिर जाते हैं। इस प्रकार यह व्यर्थ खाद्यान्नों को लाभकारी उत्पादों में बदल देती है।
- यह विभिन्न प्रकार की जलवायु में सहजता से अपने आपको ढ़ाल लेती है।

भेड़ का जीवन चक्र

भेड़ में गर्भ काल पांच महीने का होता है। इस प्रकार यह वर्ष में एक या दो बार मेमनों को जन्म देती है। तीन महीने की आयु होने पर मेमनों

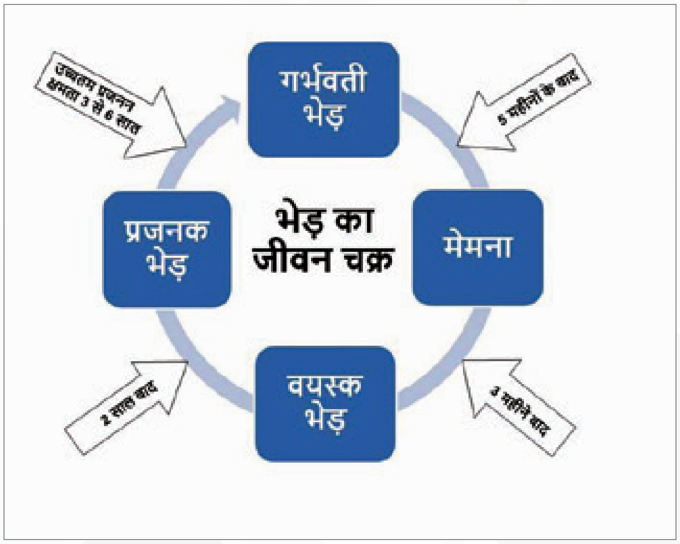

का माँ का दूध छुड़वा दिया जाता है तथा उन्हें चरने के लिए दूसरी भेड़ों के साथ चरागाह ले जाया जाता है। दो वर्ष की आयु में भेड़ का शरीर पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है। इसकी प्रजनन क्षमता 3 से 6 वर्ष की आयु तक उच्चत्तम होती है जिसके बाद यह कम होना शुरू हो जाती है। भेड़ की औसत आयु 10 से 12 वर्ष होती है।

आवास सुविधा

अच्छे पशु आवास की मूल आवश्यकता यह है कि इससे पशुओं को अनुकूल वातावरण मिले और जंगली जानवरों से बचाया सके। भेड़ को रहने के लिए कम जगह की आवश्यकता होती है। यह अन्य पशुओं के साथ भी रखी जा सकती है। लेकिन व्यवसायिक उत्पादन के लिए भेड़ों के लिए अच्छी आवासीय सुविधा आवश्यक है। बरसात और सर्दी के मौसम में भेड़ों को ढ़के हुए बाड़े या घर के अन्दर रखना चाहिए। भेड़ों का आवास साफ़ सुथरा व हवादार होना चाहिए। आवास की बनावट इस प्रकार होनी चाहिए कि हर जानवर को चलने-फिरने की स्वतन्त्रता हो।

पोषण प्रबंधन

भेड़ को दिन में कम से कम दो बार पीने के लिए ताजे एवं स्वच्छ पानी की जरूरत होती है। इस जरूरत को पूरा करने के लिए नांद या तालाब का प्रयोग किया जाता है। वातावरण के अधिक तापमान एवं चारे में नमी की कमी के कारण पीने के लिए ज्यादा पानी की जरूरत होती है।

माँ का दूध छूटने पर मेमने सूखी घास, खाद्यान्न और हरी घास खाना आरम्भ कर देते हैं। भेड़ अपने अनोखी रचना वाले होठों की सहायता से धरती के समीप निचले स्तर पर पाई जाने वाली घास को बहुत ही सुलभता से खा सकती है। आमतौर पर इन्हें दिन में दो बार भोजन दिया जाता है जो या तो नांद में दिया जाता है या फिर इन्हें चरने के लिए चरागाह में ले जाया जाता है। कम गर्मी के समय इन्हें चराया जाता है और अधिक गर्मी के समय इन्हें किसी छायादार एवं ठंडे स्थान पर विश्राम कराया जाता है। छोटे मेमनों, बीमार भेड़ों एवं गर्भवती मादा भेड़ों को नांद में ही भोजन दिया जाता है। जरूरत पड़ने पर पोषणविद की सलाह पर इन्हें पूरक आहार भी दिया जाता है जिसमें एक या एक से अधिक खाद्यान्नों का मिश्रण होता है, जैसे चना, मक्का, ज्वार, गेहूँ, जौ, लोबिया मटर सेम इत्यादि।

खुली आवास प्रणाली

बंद आवास प्रणाली

मध्यम तापमान में भेड़ सबसे अधिक सहज होती है। कम तथा अधिक तापमान इसे असहज कर देता है जिससे कई तरह की समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। अतः सर्दी के मौसम में इसे हवा से बचाने के जरूरत होती है क्योंकि हवा के चलने से तापमान में और गिरावट आती है तथा ठंड के कारण होने वाले रोग इसका स्वास्थ्य खराब कर देते हैं। इसी तरह गर्मी के मौसम में तापमान कम करने तथा ताज़ी हवा के लिए पंखे चलाये जाते हैं।

स्वास्थ्य की देखभाल

भेड़ों को स्वस्थ रखने के लिए निम्न उपाय किये जाते हैं:

- जीवन के पहले कुछ घंटो में मेमने माँ के पीले गाढ़े दूध (खीस) से बीमारियों के विरूद्ध लड़ने की शक्ति प्राप्त करते हैं।
- जीवन के प्रथम तीन महीनों में हर छः सप्ताह के बाद व तदोपरांत हर छः महीनों के अंतराल पर बूस्टर टीकों से इन्हें बीमारियों से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है।
- भेड़ के बच्चे के जीवन में माँ का दूध छुडाने का समय बहुत ही विकट होता है। इस आयु वर्ग में भेड़ों को विशेष देखभाल की जरूरत होती है क्योंकि अन्य सामान्य बीमारियों के अतिरिक्त स्केबी माउथ, माइकोटिक डरमेटाईटिस, निमोनिया जैसी कुछ घातक बीमारियों से भी इनका सामना होता है। उपलब्ध भोजन की मात्रा में सबसे अधिक अस्थिरता भी इसी आयु में होती है। भेड़ पालक पोषणविद एवं पशु चिकित्सकों के सहयोग से भेड़ों को स्वस्थ रखते हैं।
- भेड़ झुण्ड के विकास के लिए अच्छे शरीर भार व अच्छे डील-डौल वाले मेमनों को प्रजनन हेतु नर भेड़ के रूप में सुरक्षित रख लिया जाता है तथा शेष नर-मेमनों को बधिया कर दिया जाता है जिससे उनके शरीर भार में तेजी से वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप भेड़ पालकों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।
- भेड़ों को बाह्य: तथा अंत: परजीवियों से बचाने के लिए डीटीकिंग तथा डीवार्मिंग की जाती है।

सामान्य रोग

अन्य पालतू पशुओं की भांति भेड़ों में भी कई प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं जिनके लक्षणों को पहचान कर पशु चिकित्सक एवं पोषणविद की सहायता से इन पर काबू पाया जा सकता है। भेड़ में पायी जाने वाली कुछ बीमारियों का विवरण निम्न है

भेड़ों की चराई

भुखमरी (भूख से मरना): कई बार मादा भेड़ में दूध की कम उत्पत्ति अथवा नवजात मेमनों की संख्या अधिक होने के कारण किसी मेमने को पूरा आहार नहीं मिल पाता जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है।

अल्प ताप अवस्था: यह रोग नवजात मेमने के जीवन के प्रथम 36 घंटों के दौरान हो सकता है। इस अवस्था में उसके शरीर का तापमान 98^0 F से कम हो जाता है।

फुट रोट (पैर का गलना): इस रोग के कारण भेड़ एक या अधिक पैरों से लंगड़ी हो जाती है परन्तु सभी लंगड़ी भेड़ों में यह रोग नहीं होता। इस रोग की पहचान संक्रमित पैर से आने वाली एक विशेष दुर्गन्ध से की जाती है। इस बीमारी में जिंक सल्फेट के घोल से जानवर के पैर धोने से लाभ होता है तथा इसके लिए टीका भी उपलब्ध है।

फुट स्काल्ड (पैर कीलता): इस अवस्था में भेड़ के खुरों के बीच के चमड़ी का रंग सफेद या लाल हो जाता है तथा इसमें सूजन आ जाती है। इस बीमारी में जिंक सल्फेट के घोल से पैर धोने पर लाभ होता है।

मुँह-खुर रोग: आमतौर पर इसे एफ एम डी कहा जाता है। इस रोग के कारण भेड़ के मुंह, जीभ, होंठों तथा पैरों पर फफोले हो जाते हैं जो बाद में फूटकर जख्म बन जाते हैं। इस रोग से भेड़ों को बचाने हेतु टीके का प्रयोग किया जाता है।

भेड़ पॉक्स: यह चेचक जैसी भेड़ की बीमारी होती है जिसमें 2-5 दिन के बुखार के बाद शरीर पर फफोले होने लगते हैं। पलकों पर सूजन हो जाती हैं जो आँखों को पूरी तरह ढक लेती है। इस बीमारी के लिए टीका उपलब्ध है।

ब्ल्यू टंग (नीली जीभ): इसमें मुंह, नाक और जीभ की श्लेष्मा झिल्ली में सूजन तथा रक्त स्राव होने लगता हैं जिससे जीभ का रंग लाल या नीला हो जाता है। इस बीमारी के लिए टीका उपलब्ध है।

मांस उत्पादन

भारत में 20 निर्यात उन्मुख आधुनिक बूचड़खाने एवं मांस प्रसंस्करण प्लांट पंजीकृत है जो लगभग 56 देशों में कच्चे मांस का निर्यात करते हैं। वर्ष 2016-17 के दौरान 22008.58 मिलियन टन भेड़/बकरी के मांस का निर्यात किया गया जिसका मूल्य 86774.13 लाख रूपये था। भेड़ तथा मेमने का मांस, मांस-उद्योग का एक छोटा सा भाग है जहाँ मांग पूर्ति से ज्यादा है।

ऊन उत्पादन

ऊन भेड़, बकरी व खरगोश से प्राप्त की जाती है। विश्व में प्रति वर्ष उत्पादित होने वाले ऊन में भारत की हिस्सेदारी मात्र 2% है। वर्ष 2016-17 के दौरान भारत में कुल ऊन उत्पादन 43.5 मिलियन किग्रा. था।

ऊन उतारने के लिए कतरनी, कैंची अथवा बिजली से चलने वाली मशीनों का उपयोग किया जाता है। आमतौर पर वर्ष में दो बार भेड़ों की ऊन कतराई की जाती है। एक सर्दियों के बाद मार्च-अप्रैल के महीने में और दूसरी वर्षा ऋतु के बाद सितम्बर-अक्टूबर के महीने में।

ऊन का विपणन

भारत में ऊन विपणन का क्षेत्र बहुत छोटा तथा बिखरा हुआ है। घरेलू बाजार एवं निर्यात के सभी खंडों की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इस क्षेत्र में संगठित एवं विकेंद्रीकृत क्षेत्र मिलकर काम करते हैं। इन जटिलताओं का संज्ञान लेकर इस क्षेत्र की उन्नति एवं विकास के लिए सरकार ने वस्त्र मंत्रालय में केन्द्रीय ऊन विकास बोर्ड की स्थापना की है। राज्य सरकारों ने भी इस क्षेत्र को प्रोत्साहन देने हेतु अलग से निगमों/ महासंघों की स्थापना की है। ग्रामीण स्तर पर सहकारी समितियों की स्थापना की गयी है जहाँ भेड़ पालकों से सटीक वजन करके बेहतर दाम पर ऊन खरीदी जाती है। इससे भेड़ पालक ग्रामीण बिचौलियों के हाथों लुटने से बच पाते हैं।

भेड़ पालन से जुड़ी संस्थाएं

राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो: भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद का यह संस्थान हरियाणा के करनाल में स्थित है। इस संस्थान का मुख्य ध्येय भारत में पाए जाने वाले पालतू पशुओं की प्रजातियों का लक्षणीकरण, मूल्यांकन, दस्तावेजीकरण, पंजीकरण एवं संरक्षण करना है। अतः भारत में विद्यमान सभी भेड़ नस्लों के गुण, विभिन्न नस्लों के सुधार हेतु चलाए जा रहे कार्यक्रमों अथवा

भेड़ प्रजातियों से जुड़ी किसी भी जानकारी के लिए इस संस्थान से सम्पर्क कर सकते हैं।

केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसन्धान संस्थान: भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद का यह संस्थान राजस्थान के जिला टोंक में स्थित है। भेड़ पालकों के ज्ञान वर्धन, आनुवंशिक सुधारों एवं तकनीकी विकास के लिए इस संस्थान में मालपुरा, चोकला, अविकालिन, पाटनवाडी, गैरोल व केंद्रपाड़ा इत्यादि भेड़ नस्लें पाली गयी हैं। यहाँ से भेड़ पालन के विकास हेतु भेड़ पालकों को उत्तम आनुवंशिक गुणों वाले नर भेड़ बहुत कम दाम में दिए जाते हैं जिससे कि उनके पास श्रेष्ठ जर्मप्लाज्म तैयार हो सके और उन्हें अधिक से अधिक लाभ मिल सके।

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड बैंक): यह ऐसा बैंक है जो भेड़ पालन के लिए ऋण देता है तथा इस ऋण पर सब्सिडी भी देता है।

भारत में पायी जाने वाली भेड़ नस्लें

भारतीय भेड़ के लक्षणों में आनुवंशिक विविधता की कोई सीमा नहीं है (आचार्य 1982)। मुज्जफरनगरी बड़ी और भारी मांस नस्लों में से एक है। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में सोनाड़ी एक त्रिगुण सम्पन्न नस्ल है जो दूध व मांस के साथ ऊन के उत्पादन में भी सक्षम है। भारत के पूर्वी क्षेत्र में गैरोल नाम की एक अनोखी नस्ल पायी जाती है जो प्रति प्रजनन मेमनों की उच्च दर तथा मांस देने वाली नस्लों में से एक है। इसी क्षेत्र में गंजम एक अन्य नस्ल है जिसे किसान मांस उत्पादन के लिए पालते हैं। भारत के दक्षिणी भाग में भी मांस उत्पादन के लिए उत्तम मानी जाने वाली कुछ अच्छी नस्लें पायी जाती है जिनमें ढक्कनी सबसे अधिक संख्या में पायी जाती है। देश के कुल मांस उत्पादन में ढक्कनी की हिस्सेदारी सबसे अधिक है। इस क्षेत्र की नेल्लोर नस्ल भारत की सबसे लम्बी भेड़ है। मचेरी तथा मद्रास-रेड अपनी उत्कृष्ट खाल (चमड़ी) एवं मांस के लिए जानी जाती हैं। मांड्या इसी क्षेत्र की अन्य नस्ल है जिसकी मांस रचना सर्वोत्तम होती है।

भौगोलिक स्थितियों के आधार पर पूरे भारत को चार भागों में बांटा जा सकता है। प्रत्येक भाग में अलग-अलग प्रकार की भेड़ें पाई जाती है।

उत्तरी ठंडे (शीतोष्ण) क्षेत्र: गद्दी, बखरवाल, चांगथांगी, गुरेज व करनाह इस क्षेत्र के प्रमुख भेड़ नस्लें हैं।

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र: इस क्षेत्र में मुख्यतः मगरा, चोकला, जैसलमेरी, जालौनी, खेरी, मालपुरा, मारवाड़ी, मुजफ्फरनगरी, पूगल एवं सोनाडी इत्यादि नस्लें पाई जाती हैं।

दक्षिणी प्रायद्वीपीय क्षेत्र: इस क्षेत्र की मुख्य नस्लों में हसन, केंगुरी, किलाकरसल, मांडया, मचेरी, नेल्लोर, नीलगिरी, रामनाड व्हाइट, तिरुचि ब्लैक एवं वेम्बूर इत्यादि सम्मिलित हैं।

पूर्वी क्षेत्र: बालन्गीर, तिब्बतन, बोनपाला, छोटानागपुरी, गंजम एवं गैरोल इत्यादि इस क्षेत्र की प्रमुख नस्लें हैं।

चोकला भेड़

गैरोल भेड़

मांड्या भेड़

उपसंहार

इस बात से हर कोई परिचित है कि तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के कारण बेरोजगारी का दानव दिन प्रतिदिन बड़ा होता जा रहा है। इस दानव को हराना अकेले सरकार के बस की बात नहीं है। बेरोजगारी के विरुद्ध इस लड़ाई में स्व-रोजगार ही सबसे शक्तिशाली हथियार की भूमिका निभा सकता है। भेड़ पालन इस शक्तिशाली हथियार का एक महत्वपूर्ण अंग बन सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि घटते चरागाह तथा सूक्ष्म एवं बिखरे हुए बाज़ार के कारण यह व्यवसाय अपनी लोकप्रियता खोता जा रहा है जिसके कारण भारत का युवा वर्ग इससे दूर भाग रहा है। लेकिन इस बात में भी दो राय नहीं हैं कि ऊन एवं मांस के क्षेत्र में अपार सम्भावनाएं निहित है। सरकार के हस्तक्षेप से इस क्षेत्र में स्थिरता आ रही है। सहकारी समितियों की स्थापना से बिचौलियों का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है। बैंकों से ऋण आसानी से मिलने के कारण धन की उपलब्धता में भी कोई समस्या नहीं रही। अब यदि भेड़ पालक भी वैज्ञानिक सोच के साथ इस यज्ञ में अपने समय और प्रयास की आहुति डाल दें तो वह दिन दूर नहीं जब यह व्यवसाय फिर से युवाओं को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल होगा और बेरोजगारी दूर करने में मनुष्य का सहायक सिद्ध होगा।

सन्दर्भ

आचार्य आर एम. 1982. शीप एण्ड गोट ब्रीड्स ऑफ इंडिया, एफ. ए. ओ. प्रकाशन।

शीप हस्बैंडरी - विकिपीडिया, द फ्री एन्साइक्लोपीडिया। http://en.wikipedia.org/wiki/sheep_husbandry

एस टी विरोजी, डी थम्मी राजू और रवीन्द्र रेड्डी. 2008. अडाप्शन ऑफ शीप हस्बैंडरी प्रैक्टिसिस इन आंध्रप्रदेश, इण्डिया. लाइवस्टॉक रिसर्च फॉर रूरल डेवलपमेंट 20 (7) 2008.

नाबर्ड्स माडल बैंकएबल प्रोजेक्ट्स। http://nabard.org/modelbankprojects/animal_sheep.asp

शीप 201- अ बिगिनर्स गाइड टू रेंजिंग शीप। www.sheep101.info/201/deseasesa-z.html.

पीसीआर आधारित तकनीक द्वारा पश्मीना फाइबर से निर्मित टेक्सटाइल्स उत्पादों की शुद्धता की पहचान

राजीव कुमार, अमर सिंह मीणा एवं डी बी शाक्यावार

भाकृअनुप- केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, मालपुरा - 304501 (राजस्थान)

टेक्सटाइल्स कम्पनियों को अपने उत्पादों की अच्छी गुणवत्ता को बनाने के लिए पादपों, पशुधन एवं अन्य जीवों से प्राप्त फाइबर (रेशे) निरन्तर चाहिए होते हैं। कुछ फाइबर पशुधन की विभिन्न प्रजातियों से भी प्राप्त होते हैं जैसे कि पश्मीना फाइबर भारत के पहाड़ी इलाकों, अत्यन्त ठण्डी जगहों (लेह, लद्दाख, लाहोल स्पीति) में पाई जानी वाली बकरी की नस्ल से प्राप्त होते हैं। चांगथागी एवं चेगू ऐसी ही बकरी की नस्लें हैं जिनसे विशिष्ट पशुधन फाइबर पश्मीना प्राप्त होता है। पश्मीना के शीतरोधी गुण के कारण बकरी की ये नस्लें अत्यन्त ठंडे प्रदेशों में जीवित रह पाती हैं। इसी प्रकार अंगोरा फाइबर, जो कि अंगोरा खरगोश से प्राप्त होता है तथा भेंड़ की विभिन्न भारतीय नस्लों से प्राप्त ऊन भी कई टेक्सटाइल उत्पादों में उपयोग में प्रयोग की जाती है। इन विशिष्ट पशुधन फाइबर की आवश्यकता भारत के टेक्सटाइल उद्योगों को विभिन्न मूल्य- संवर्धित उत्पादों को बनाने में होती है। शॉल के निर्माण के लिए पश्मीना, अंगोरा तथा ऊन की अधिक माँग होने के कारण इनका अच्छा मूल्य प्राप्त होता है।

भारत प्रतिवर्ष करीब 40-50 टन फाइबर चांगथागी एवं चेगू नस्ल की बकरी से प्राप्त करता है (शाक्यवार एवं अन्य 2013)। बकरी के पश्मीना फाइबर की गुणवत्ता बहुत अच्छी होने के कारण इनसे निर्मित टेक्सटाइल उत्पादों में शुद्धता तथा मिलावट एक आम समस्या है। पश्मीना फाइबर की सीमित उपलब्धता, अधिक कीमत एवं बढ़िया शीतरोधी गुणों के कारण भारत तथा विश्व में इनकी माँग बहुत ज्यादा रहती है। भेड़ की ऊन बहुत अधिक मात्रा तथा कम कीमत में आसानी से मिल जाती है, अतः पश्मीना द्वारा निर्मित उत्पादों में इसकी मिलावट की जाती है। भेड़ की ऊन की रासायनिक एवं आकारिकी संरचना भी पश्मीना के फाइबर से मिलती-जुलती है। आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों ने गहन शोध से मेरीनो भेड़ के भौतिक गुणों का विकास पश्मीना फाइबर के समान कर लिया है। इनको आसानी से पश्मीना फाइबर के टेक्सटाइल उत्पादों में मिलाया जा सकता हैं (शाक्यावार एवं अन्य 2013)। अंगोरा खरगोश के फाइबर को पश्मीना बकरी तथा भेड़ की ऊन से ईलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी के द्वारा उनकी संरचनात्मक बनावट के

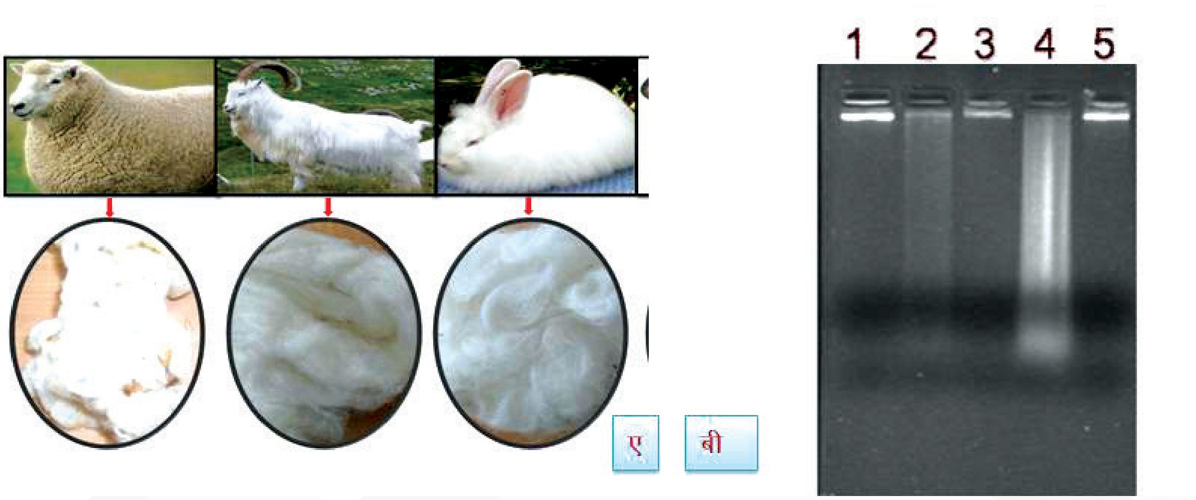

चित्र 1: (ए) भेड़, बकरी एवं खरगोश से प्राप्त फाइबर (बी) रक्त तथा फाइबर से अलग किये गये डीएनए का 2 प्रतिशत ऐगरोस जैल इलेक्ट्रोफोरेसिस पर बैंडिंग पैटर्न। पंक्ति 1 भेड़ के रक्त से निकला डीएनए, पंक्ति 2 भेड़ की ऊन का डीएनए, पंक्ति 3 कच्चे पश्मीना फाइबर से प्राप्त डीएनए, पंक्ति 4 अम्ल से उपचारित पश्मीना फाइबर से प्राप्त डीएनए, पंक्ति 5 अंगोरा खरगोश के बालों से प्राप्त डीएनए।

आधार पर पहचाना जाता है। व्यापारिक स्तर पर इस तकनीकी से फाइबर की पहचान करना, प्रयोगात्मक रूप से जटिल तथा दुर्गम है (केरखोफ एवं अन्य 2009)। ईलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी का अधिक मूल्य, तकनीकी दक्ष व्यक्ति की आवश्यकता तथा समान रूप से उत्पादों को इकट्ठा करने में समस्या इस विधि को जटिल बनाते हैं। सूक्ष्मदर्शी आधारित विभिन्न तकनीकों के विकास के लिए पिछले सालों में बहुत प्रयास किये गये जिससे कि भेड़ एवं बकरी से प्राप्त फाइबर (रेशे) एवं उनसे निर्मित टेक्सटाइल उत्पादों की पहचान की जा सके। ये तकनीक पशुधन के फाइबर के भौतिक गुण पर आधारित थी लेकिन वर्तमान समय में नयी तकनीकों के विकास से पशुधन के फाइबर के भौतिक गुणों को परिवर्तित किया जा सकता है। इसलिए पशुधन विशिष्ट फाइबर की पहचान करने के लिए अन्य वैकल्पिक तकनीकों का विकास करना आवश्यक था। पिछले कुछ वर्षों में जैव-प्रौद्योगिकी के बढ़ते शोध- कार्य के कारण बहुत सारे पशुधन, मानव एवं अन्य जीव-जन्तुओं के आनुवंशिक पदार्थो (डीएनए) के पूर्ण अनुक्रम की उपलब्धता बढ़ी है जिससे पशुधन की विभिन्न प्रजातियों के विशिष्ट आण्विक चिन्हकों का पता करने में आसानी हुई है। पशुधन के विभिन्न फाइबर से गुणवत्ता पूर्ण डीएनए की प्राप्ति की जा सकती है, जिसके कारण पीसीआर आधारित विभिन्न टेस्ट का विकास हुआ। इस नई तकनीकी द्वारा प्रजाति के विशिष्ट उत्पादों को आसानी से पहचाना जा सकता है। इस टेस्ट से भारत के वस्त्र उद्योग के द्वारा विकसित विभिन्न पशुधन फाइबर उत्पाद की गुणवत्ता को बनाये रखने में भी मदद मिलेगी।

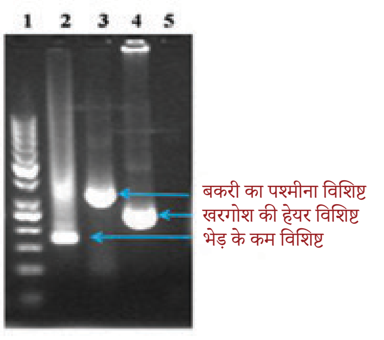

चित्र 2: तीन प्रतिशत ऐगरोस जैल इलेक्ट्रोफोरेसिस डीएनए बैंडिंग पैटर्न। बकरी का पश्मीना विशिष्ट खरगोश के हेयर विशिष्ट एवं भेड़ की ऊन विशिष्ट आण्विक चिन्हक से प्राप्त डीएनए बैंडिंग पैटर्न। एम 50 बेसपेयर निश्चित आकार के बैंडिंग पैटर्न का चिन्हक।

पीसीआर आधारित विधि से पशुधन विशिष्ट फाइबर तथा टेक्सटाइल कम्पनियों द्वारा निर्मित विभिन्न उत्पादों की शुद्धता की पहचान तथा आपस में फाइबर की मिलावट को प्रयोगशाला में जाँचा जा सकता है (कुमार एवं अन्य, 2015 ए)। डीएनए के किसी जीन के भाग के आवर्धन से पश्मीना फाइबर, ऊन, याक फाइबर, तथा ऊँट के बालों की पहचान टेक्सटाइल उत्पादों में सम्भव है (केरखोफ एवं अन्य, 2009)। वर्तमान में रीयल-टाइम पीसीआर के उपयोग से बकरी एवं भेंड़ के फाइबर से निर्मित उत्पादों में मिलावट को पहचाना तथा उनका मात्रात्मक मापन करना सम्भव हुआ है (जी डब्लू एवं अन्य, 2011)। पशुधन के फाइबर में कोशिका मृत्यु बदलाव के कारण डीएनए अणु टूट जाता है । इसके अतिरिक्त पशुधन के फाइबर की वस्त्र-निर्माण के दौरान विभिन्न अम्लीय एवं क्षारीय विलयन से धुलाई तथा छपाई की जाती है, जिसके कारण भी डीएनए की गुणवत्ता घट जाती है। इस तरह के भौतिक एवं रासानिक क्रिया से गुजरने के बाद उनसे निर्मित टेक्सटाइल उत्पादों से गुणवत्ता पूर्ण डीएनए की प्राप्ति हमारे संस्थान के वैज्ञानिकों ने की है।

डीएनए की प्राप्ति

पश्मीना बकरी का फाइबर, भेड़ की ऊन, अंगोरा फाइबर, याक फाइबर, ऊँट के बाल तथा रेशम (सिल्क) को विभिन्न स्थान से एकत्रित किया गया। उनके प्राकृतिक फाइबर (0.5 ग्रा. प्रत्येक) से डीएनए की प्राप्ति की गई। इसके लिए फीनोल-क्लोरोफार्म विधि में आंशिक बदलाव से गुणवत्ता पूर्ण डीएनए की प्राप्ति हुई। क्योंकि पशुधन के फाइबर से टेक्सटाइल उत्पाद बनाने के बाद डीएनए की प्राप्ति जटिल है अतः संस्थान के वैज्ञानिकों ने व्यापारिक स्तर पर उपलब्ध सिलिका आधारित डीएनए कॉलम के उपयोग से गुणवत्ता पूर्ण डीएनए की प्राप्ति की। सर्वप्रथम रासायनिक रंगो को टेक्सटाइल उत्पादों से दूर किया गया। उसके बाद फाइबर कोशिका का पाचन किया गया। डीएनए की गुणवत्ता ऐगरोस जैल-इलेक्ट्रोफोरेसिस (चित्र-1) से परखी गई (चित्र-3)। स्पेक्ट्रोफोटोमीटर द्वारा डीएनए के मात्रात्मक मापन करने पर डीएनए शुद्ध तथा विभिन्न अवयव से मुक्त पाया गया। इससे प्राप्त डीएनए से 10-15 पीसीआर अभिक्रिया पूर्ण की जा सकती हैं।

पीसीआर से पहचान

भेड़ एवं बकरी के माइट्रोकान्ड्रियल जीनोम में उपस्थित 12 एस, 16 एस राइबोसोमल आरएनए एवं डी-लूप जीन के डीएनए अनुक्रम की प्रजाति विशिष्टता से पीसीआर प्राइमरों को डिजाइन किया गया है (वोटेरो एवं अन्य, 2003)। पीसीआर अभिक्रिया मिश्रण में इन प्राइमरों का उपयोग कर भेड़ की ऊन तथा पश्मीना बकरी के फाइबर से प्राप्त डीएनए पर अलग-अलग आकार के आण्विक चिन्हक का आवर्धन हुआ (चित्र-2)। इन प्रजाति विशिष्ट प्राइमरों का पशुधन के अन्य फाइबर जैसे अंगोरा, याक, फाइबर, ऊँट के बाल एवं सिल्क फाइबर से प्राप्त डीएनए पर आवर्धन नहीं हुआ। इस प्रकार भेड़ एवं बकरी के फाइबर के विभिन्न अनुपातिक मिश्रण में निर्मित फाइबर उत्पादों की पहचान सम्भव है। पीसीआर तकनीक से 5-10% तक पशुधन फाइबरों की मिलावट की जाँच की जा सकती है। पीसीआर आधारित तकनीक से पश्मीना के फाइबर से प्राप्त डीएनए से 326 बेसपेयर का आवर्धन प्राप्त होता है। इसी प्रकार भेड़ की ऊन से प्राप्त डीएनए से 172 बेस पेयर, अंगोरा खरगोश के बालों से प्राप्त डीएनए से करीब 260 बेसपेयर का आवर्धन प्राप्त हुआ तथा पीसीआर नेगेटिव में पीसीआर उत्पाद का आवर्धन प्राप्त नहीं हुआ (चित्र-2)। पश्मीना तथा ऊन के कच्चे फाइबर से विभिन्न रासानिक रंजको के उपचार से विभिन्न रंगो तथा डिजाइन के टेक्सटाइल उत्पादों का निर्माण होता है, जिससे डीएनए की गुणवत्ता का क्षय होना आम बात है। संस्थान के वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार के टेक्सटाइल्स उत्पादों (पश्मीना एवं ऊन आधारित) से गुणवत्ता पूर्ण डीएनए की प्राप्ति उपरान्त, प्रजाति आधारित फाइबर की पीसीआर तकनीक से पहचान की है। संस्थान ने पश्मीना के टेक्सटाइल उत्पादों की शुद्धता तथा मिलावट को परखने के लिए भारतीय पेंटेट भी फाइल किया हैं (कुमार एवं अन्य, 2015 बी)। भारत देश के विभिन्न टेक्सटाइल व्यापारियों, उद्योगों, आयात-निर्यात संस्था तथा भारतीय कस्टूम विभाग से पश्मीना उत्पादों की जाँच के सैम्पल आते रहते हैं, जिनकी 1200 रूपये प्रति सैम्पल के शुल्क के आधार पर 10-15 दिन के अन्दर परीक्षण करके जाँच रिपोर्ट संबंधित संस्था को भेजी जाती है। संस्थान ने कंसल्टेन्सी सर्विस एबसोलूट पश्मीना इनकॉर्पोरेशन, नई दिल्ली, जेकेएम ऑवरसीज प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, मैसर्स सोडानी बोटीक्यू, जयपुर तथा भारतीय कस्टम एवं एक्साइज विभाग के पश्मीना से संबंधित टेक्सटाइल उत्पादों में शुद्धता की पहचान करके जाँच रिर्पोट भेजी हैं।

निष्कर्ष

व्यापारिक स्तर पर पश्मीना फाइबर से निर्मित उत्पाद की शुद्धता बनाये रखना उत्पाद की पहचान के लिए आवश्यक है। पश्मीना फाइबर से निर्मित उत्पादों की शुद्धता एवं गुणवत्ता इनके उत्पादों का आयात-निर्यात करने के लिए एक मानक टेस्ट के रूप में जरूरी है। यह आवश्यक है कि पश्मीना फाइबर के उत्पादों में अन्य फाइबर की मिलावट आसानी से पहचानी जा सके एवं उपभोगता को नकली पश्मीना उत्पादों की पहचान बताई जा सके। इससे उपभोक्ताओं को पश्मीना फाइबर से निर्मित उत्पादों की उपलब्धतता तथा खरीद करने में आसानी होगी। इस तकनीक से पश्मीना फाइबर आधारित लघु उद्योगों से जुड़े किसान अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं जो कि पश्मीना बकरी के पालन तथा संक्षरण में भी मददगार होगा।

चित्र 3: गुणवत्ता पूर्ण डीएनए की प्राप्ति के लिए टेक्सटाइल्स उत्पादों का प्रसंस्करण।

संदर्भ

शाक्यवार डी.बी., राजा ए एस एम, कुमार ए, पारीक पी के, एवं वानी एस ए. 2013. पश्मीना फाइबर प्रोड्क्शन, कैरेक्टरेस्टिक्स एण्ड युटिलाजेशन, इंडियन जर्नल ऑफ फाइबर एण्ड टेक्सटाइल रिसर्च, 38; 207-214.

केरखोफ के, केकुटी जी, कूस एल एण्ड मुसीग जे. 2009. डेवलपमेट ऑफ ए डीएनए- एनालिटिकल मैथड फार दी आइडेन्टीफिकेशन ऑफ एनीमल हेयर फाइबर इन टेक्सटाइल्स। टेक्सटाइल्स रिसर्च जर्नल 51; 703-709.

जी डब्लू, बाई ली, जी एम एण्ड यंग एक्स 2011. ए मेथड फॉर क्वांटीफाइंग मिक्डि गोट कैसमेर एण्ड शीप वूल। फोरन्सिक साइंस इन्टरनेशनल 208; 139-142.

बोटेरो एम टी, सीवेरा टी, नूसीरा डी, रोसाटी एस, साची पी, एण्ड टूरी आर एम. 2003. ए मल्टीप्लेक्स पॉलीमरेज चेन रिएक्शन फॉर दी आइडेन्टीफिकेशन ऑफ काओ गोट एण्ड शीप मिल्क इन डेयरी प्रोड्क्टस । इन्टरनेशनल डेयरी जर्नल 13; 277-282.

कुमार राजीव, डी, बी. शाक्यावार, पी. के. पारीक, ए. एस. एस. राजा, एल. एल. एल. प्रिन्स, सतीश कुमार, एण्ड एस. एम. के. नकवी 2015 ए. डवलेपमेंट ऑफ पीसीआर बेस्ड टेकनीक फॉर डीटक्शन ऑफ प्योरिटी ऑफ पश्मीना फाइबर फ्रॉम टेक्सटाइल मैटेरियल्स । एप्लाइड बायोकैमस्ट्री एण्ड बायोटेक्नोलाजी 175(8); 3856-3862.

कुमार राजीव, डी. बी. शाक्यावार, पी. के. पारीक, एल. एल. एल. प्रिन्स, ए. एस. मीना, एस. कुमार, एस. एस. ए. राजा, एस. ए. वानी एण्ड एस. ए. करीम. 2015 बी. आइडेन्टीफिकेशन ऑफ कैसमेर (पश्मीना) फाइबर फ्रॉम प्रोसेस्ड प्रोड्क्ट बाई पीसीआर बेस्ड टेकनिक. ऑफिशियल जर्नल ऑफ द पेटेन्ट ऑफिस, 26/2015: 40697.

जखराना ब्रायलर मेमना उत्पादन के लिए चयन, प्रजनन तथा आहार प्रबंधन

साकेत भूषण

भाकृअनुप-केन्द्रीय बकरी अनुसन्धान संस्थान मखदूम, मथुरा - 281122 (उत्तर प्रदेश)

भारत में खेती के साथ-साथ पशुपालन की प्रथा सदियों पुरानी है। वर्तमान में किसानों द्वारा खेती के साथ-साथ पशुपालन करना काफी कम हो गया है। देश के विभिन्न भागों में चरागाह भूमि और हरे चारे की कमी की वजह से पशुपालन, विशेष रुप से बकरीपालन छोटे एवं घरेलू स्तर के किसानों के लिए कठिन हो गया है। पशुपालन में बकरी पालन प्राचीन काल से ही आर्थिक तथा सामाजिक रूप से पिछड़े लोगो का व्यवसाय रहा है। वर्तमान में पुराने ढ़ंग से बकरीपालन करना गैर-लाभदायक होता जा रहा है।

ब्रायलर मेमना उत्पादन की नई तकनीक द्वारा मेमनें माँस के लिए कम समय में अधिक से अधिक वजन के तैयार किए जाते हैं। जिस तरह से लगभग दो माह में मुर्गी के चूजे 1.5 से 2.0 किग्रा. तक के ब्रायलर के रूप में तैयार हो जाते हैं, उसी तरह ब्रायलर मेमना उत्पादन में विशेष तकनीक का प्रयोग करके ब्रायलर मेमनें किसी भी उपलब्ध नस्ल की बकरी के मेमनों से तैयार किए जा सकते हैं। अगर ब्रायलर मेमनों का उत्पादन किया जाय तो ब्रायलर मेमना उत्पादन में बड़े आकार के नस्ल वाली बकरियों के मेमनों का 12 माह की उम्र पर औसत वजन 45 किग्रा. तक, मध्यम आकार के नस्ल वाली बकरियों के मेमनों का 35 किग्रा. तथा छोटे आकार वाली बकरियों के मेमनों का औसत वजन 30 किग्रा. तक का करके बेचा जा सकता है। ब्रायलर मेमना पालन में स्वास्थ्य प्रबंधन करके मेमनों की मृत्यु दर 6 प्रतिशत से कम कर सकते हैं जिससे कम से कम नुकसान के साथ अधिक से अधिक फायदा हो। शहरी क्षेत्रों में भी सघन पद्धति द्वारा कम जगह में भी मेमनों को चारा, दाना, भूसा देकर, आसानी से व्यवसायिक ब्रायलर मेमनों का उत्पादन किया जा सकता है। इस विधि द्वारा जिन किसानों के पास गाँव में बकरियों को चरने के लिए पर्याप्त भूमि नहीं है वो भी ब्रायलर मेमना उत्पादन करके अधिक से अधिक लाभ ले सकते हैं। शहरी क्षेत्रों में सघन पद्धति से व्यवसायिक ब्रायलर मेमना उत्पादन करने पर मेमना व्यवसायी को दाना, भूसा तथा हरा चारा आदि सभी खरीद कर खिलाना पड़ेगा जबकि गाँव में बकरी पालक अपने खेतों में दाना, चारा तथा भूसा पैदा कर सकता है तथा गाँव के पास जंगल अथवा चरागाह में मेमनों को चरा कर दाना, चारा, भूसा पर होने वाले खर्च में बचत कर सकता है। दूसरी ओर शहरी क्षेत्रों में आधुनिक पशु चिकित्सा की सुविधायें, मेमनों के लिए वैक्सीन, बैंक की सुविधा, कृषि एवं पशुपालन विभाग की सुविधाओं आदि के लिए बकरी पालक अधिकारियों से आसानी से सम्पर्क कर सकता है तथा उनके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का लाभ आसानी से ले सकता है। ब्रायलर मेमना उत्पादन विधि से गाँवो तथा शहरी क्षेत्र के बेरोजगार नौजवानों, भूमिहीन मजदूरों और छोटे किसानों को न केवल घर पर ही एक अच्छा रोजगार मिल सकता है बल्कि सामान्य बकरी पालन से काफी ज्यादा लाभ भी मिल सकता है। इस प्रौद्योगिकी द्वारा जखराना ब्रायलर मेमना 3 माह में 24 से 26 किग्रा. वजन तक के किए गए हैं। मेमनें 12 माह तक की उम्र में पूर्ण वजन के हो जाते हैं जिससे बकरी पालक कम समय में अधिक संख्या में मेमनों का उत्पादन कर सकते हैं। ब्रायलर मेमने 12 माह की उम्र पर तैयार हो जाते हैं और इस उम्र के मेमनों का माँस सर्वाधिक स्वादिष्ट तथा पोषक होने से इनकी कीमत भी अच्छी मिल जाती है।

चयन, निष्कासन तथा प्रजनन के सामान्य नियम

- हर ब्याँत के सबसे अधिक वजन वाले 2-5 नर मेमनों का चयन करके उनको प्रजनक रेवड़ के लिए विकसित किया जाता है। शेष बचे मेमनें ब्रायलर मेमनें के रूप में पाले जाते हैं।
- एक ब्याँत में तीन या उससे अधिक मेमनें पैदा होने पर सभी मेमनें प्रजनक रेवड़ के लिए रखे जाने चाहिये जिससे रेवड़ में प्रति ब्याँत अधिक से अधिक बच्चे पैदा हों।
- प्रति ब्याँत रेवड़ में पैदा हुये जानवरों का वजन बढ़ाने के लिए चयनित प्रजनन कराना सर्वोतम माना गया है, अत: अच्छे वजन तथा गुण वाले बकरे तथा बकरियों का चयन करके चयनित प्रजनन ही अपनाना चाहिये।
- प्रजनक रेवड़ में मेमनें पैदा करने के लिए व्यस्क बकरे तथा बकरियों के समागम में निकट अंत:प्रजनन नहीं होना चाहिये।

इस तरह के प्रजनन से संतानों में अनावश्यक विकारों के गुण आ सकते हैं।

- प्रजनक रेवड़ में चयन या निष्कासन कार्यक्रम की समीक्षा मेमनें के जन्म वजन, 3, 6, 9 तथा 12 माह के वजन के स्तर पर की जाती है। मुख्य रूप से प्रजनक रेवड़ के लिए नर तथा मादा मेमनें का निष्कासन आधार ब्याँत संख्या तथा 9 माह के वजन पर किया जाता है तथा बाद में उसको 12 माह के वजन से सत्यापित करके अंतिम रूप से चयन अथवा निष्कासित कर सकते हैं।
- व्यस्क बकरे तथा बकरियाँ अलग-अलग बाड़े में रखी जायें ताकि उनमें स्वतः प्रजनन रोका जा सके तथा चयनित प्रजनन आसानी से किया जा सके।
- जिस नस्ल की बकरियाँ रेवड़ में हो उसी नस्ल के बकरे का चयन प्रजनन के लिए करना चाहिये।
- बकरियों के निकट सम्बंधी का चयन प्रजनक बकरे के लिए नहीं करना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो 3-5 पीढ़ी तक के सम्बंधी का चयन प्रजनक बकरे के लिए ना करें।
- जिस नस्ल का नर चुना गया है उस नस्ल के सभी गुण उस प्रजनक बकरे में होने चाहिये।
- चयनित प्रजनक बकरे के माता-पिता भी शुद्ध नस्ल के रहे हों तथा प्रजनक बकरे का रंग, आकार तथा वजन उस शुद्ध नस्ल के अनुरूप हो।
- चयनित प्रजनक बकरे विकलांगता रहित हों, उसके शरीर की बनावट एवं आकृति आकर्षक हो तथा सिर एवं गर्दन शरीर के आनुपातिक हों।
- चयनित प्रजनक बकरे चुस्त-दुरुस्त तथा तन्दुरुस्त होने चाहिए। बकरे में पुरुषत्व हो, वह क्षमतावान हो तथा फुर्तीला हो।
- चयनित प्रजनक बकरे किसी आनुवंशिक रोग से ग्रसित न हों और न किसी रोग के वाहक हों।
- चयनित प्रजनक बकरे विकसित जननांग वाले हों तथा उनके अण्ड-कोष पूर्ण विकसित एवं समान आकार के होने चाहिए।
- चयनित प्रजनक बकरे ऐसे माँ-बाप की संतति हो जिसमें कभी भी अवांछित लक्षणों की अभिव्यक्ति न हुई हो।
- चयनित प्रजनक बकरे के माता-पिता में भी उच्च प्रजनन एवं जनन क्षमता रही हो।
- चयनित प्रजनक बकरे के माता-पिता की अन्य संतानों में रोग ग्रसिता तथा मृत्यु दर का स्तर अल्प रहा हो।
- प्रजनक बकरे के माता-पिता में इक्षित उत्पादन गुण जैसे 12 माह पर उसका अधिक वजन का होना आवश्यक है जिससे उसकी माँस उत्पादक क्षमता उच्चस्तरीय हो।

जखराना ब्रायलर नर मेमना 12 माह की उम्र पर (51 किग्रा. वजन)

ब्रायलर मेमना उत्पादन के लिए प्रजनन व्यवस्था

एक साल से कम आयु के बकरे को प्रजनन कार्य में नहीं लगाया जाना चाहिए। सामान्यत: रेवड़ में प्रजनन के लिए बकरा 2 से 5 वर्ष तक की आयु के बीच का ही रखना चाहिये। एक अध्ययन में पाया गया कि प्रजनन के लिए बकरे की आयु 2 से 3 वर्ष तक सबसे उपयुक्त होती है। प्रजनन मौसम में एक बकरे का उपयोग 20-25 बकरियों के प्रजनन के लिए किया जाता है। एक दिन में एक बकरे से 2-3 बकरियों से ज्यादा का गर्भाधान नही कराना चाहिए। यद्यपि एक बकरे का उपयोग साल में 50 से 70 बार तक संभव हैं परंतु एक बकरे का इतना उपयोग तभी करना चाहिए जब योग्य बकरों की कमी हो। प्रजनन के लिए वर्ष में दो बार मार्च से मई और सितंबर से नवम्बर उपयुक्त पाये गए हैं। जिन किसानों के पास बकरियाँ चराने के लिए चरागाह की व्यवस्था है वो बकरीपालक प्रजनक रेवड़ रखकर, मेमनें पैदा करके भूमिहीन किसानों तथा मजदूरों को 2 से 3 माह के मेमनें बेच कर उनको ब्रायलर मेमना उत्पादन की सुविधा

दे सकते हैं। इससे न केवल कम समय में किसानों को वित्तीय लाभ मिलेगा बल्कि वे दूसरे गरीब किसानों के लिए उनके गाँव-घर पर ही रोजगार सृजन में सहायता कर सकते हैं।

प्रजनक रेवड़ में प्रजनन के लिए चयनित प्रजनन की प्रक्रिया अपनाई जाती है। प्रजनन कराने के लिए प्रजनक बकरे तथा बकरियों का चयन उनके 9 माह के शारीरिक भार के आधार पर किया जाता है। इसमें प्रत्येक प्रजनक नर तथा मादा का वजन, जन्मतिथि, मादा की ब्याँत संख्या, उससे पैदा हुये मेमनों में पहचान संख्या का अभिलेखन किया जाता है तथा प्रति ब्याँत 10-15% कम भार वाले नर तथा मादा मेमनों का निष्कासन कर दिया जाता है। प्रजनन के लिए केवल अनुवांशिक रूप से वजन के लिए उच्च क्षमता वाले शीर्ष नरों का चयन कर लिया जाता है जिससे प्रजनक रेवड़ में आनुवंशिक रूप से अधिक भार वाले नर ही रहें। बकरियों से मेमना पैदा होने के बाद, 2-3 माह की उम्र पर नर मेमनों का चयन कर लिया जाता है फिर उनको अलग रख कर शरीरिक भार में वृद्धि के लिए विशेष रूप से ब्रायलर मेमना के रूप में पाला जाता है। बकरी पालक शेष बची मादा मेमनों को भविष्य के प्रजनक मादाओं के रूप में रख कर पाल सकते हैं अथवा प्रजनक मादाओं की संख्या बाड़े की क्षमता से ज्यादा होने पर उनको प्रजनक मादाओं के रूप में अन्य किसानों को अच्छी कीमत पर बेच भी सकते हैं, इससे अच्छे मेमनें तथा दूध भी प्राप्त किया जा सकता है। बकरियों में प्रजनन के लिए खास ऋतु में, मदकाल आता है जो कि लगभग 3 दिन तक रहता है। प्रजनन ऋतु में प्रत्येक दिन सुबह एवं सायं नकली सहवास के लिए एक बकरे के जननाँग के ऊपर बड़ा सा कपड़ा लगाकर कमर पर बाँधकर उसको व्यस्क मादाओं के बीच छोड़ देते हैं। नर केवल मदकाल में रहने वाली मादा से ही सहवास का प्रयास करेगा। इस तरह मदकाल वाली मादा की पहचान करके चयनित बकरे से उनका प्रजनन कराना चाहिये।

ब्रायलर मेमना रेवड़ के लिए मेमनों का चयन तथा निष्कासन

ब्रायलर मेमना रेवड़ में चयन एवं निष्कासन कार्यक्रम की समीक्षा मेमनें के जन्म वजन तथा 3 माह के वजन के स्तर पर उसकी ब्याँत संख्या के आधार पर की जाती है। तालिका-1 में दी हुई ब्याँत संख्या, तथा आयु के वजन से अगर रेवड़ में पैदा हुये मेमनें का वजन कम है तो उसको प्रजनक रेवड़ से निष्कासित कर दिया जाता है तथा शेष का चयन कर लिया जाता है।

तालिका 1: रेवड़ में नर मेमनें के निष्कासन के लिए ब्याँत संख्या के अनुसार जखराना मेमनें का वजन (किग्रा.)

ब्याँत स.	जन्म भार	3 माह	6 माह	9 माह
पहली	2.50	15.0	22	33
दूसरी	2.55	17.5	25	35
तीसरी	2.60	19.0	26	36
चौथी	2.55	18.5	26	36
पाँचवी	2.50	18.0	25	35
छठी	2.45	17.5	23	34

मुख्य रूप से प्रजनक रेवड़ के लिए नर बच्चों का निष्कासन 3 माह पर (तालिका-1) दिये गये वजन से निम्न वजन (किग्रा.) के आधार पर किया जाना चाहिए। बाद में उसकी समीक्षा 6 तथा 9 माह पर भी कर सकते हैं ताकि 12 माह पर मेमनें का वजन तालिका में दिये वजन से कम न हो।

आहार प्रबन्धन

सामान्य मेमना पालन के समय मेमनों के लिए पिसा दाना तथा मेमना-गोली दाना की मात्रा: बाजार में पिसा तथा गोलीनुमा ब्रायलर मेमना दाना उपलब्ध रहता है जिसमें आवश्यक खनिज लवण तथा गुड़ आदि मिला रहता है। बकरी पालक इस प्रकार के दाने को बाजार से खरीद कर तालिका-2 एवं 3 के अनुसार खिला सकते हैं अथवा आगे दी गई विधि के अनुसार खुद दाना बनाकर भी खिला सकते हैं।

मेमने हेतु बाजार में उपलब्ध दाना

तालिका 2: शरीर रक्षा हेतु मेमनें की उम्र के अनुसार दाने की प्रति दिन की मात्रा

मेमनें की उम्र	दाने की मात्रा (प्रति मेमेना प्रति दिन)
1-2 माह	पिसा दाना खाने की पूर्ण क्षमता तक
2-3 माह	पिसा दाना औसत 250 ग्रा. तक
3-6 माह	पिसा दाना औसत 400 ग्रा. तक
6-9 माह	मेमना गोली दाना औसत 600 ग्रा.
9-12 माह	मेमना गोली दाना औसत 700 ग्रा.

तालिका 3: ब्रायलर मेमना उत्पादन के लिए हरे चारे, भूसा, दाना आदि की प्रतिदिन की मात्रा

मेमनें की उम्र	हरे चारे की मात्रा	भूसे की मात्रा
2-3 माह	खाने की क्षमता तक	खाने की क्षमता तक
3- 6 माह	400 ग्रा. तक	800 ग्रा. तक
6-9 माह	500 ग्रा. तक	1200 ग्रा. तक
9-12 माह	600 ग्रा. तक	1500 ग्रा. तक

तालिका 4: ब्रायलर मेमने के लिए घर पर दाना तैयार करने हेतु विभिन्न अवयवों का प्रचलित अनुपात

वस्तु प्रकार	मात्रा (%)
मक्का, ज्वार, चना, गेहूँ का मिश्रण अथवा इनमें से कोई भी उपलब्धता के अनुसार	60%
मूँगफली/ तिल अथवा कोई अन्य खली	12%
गेहूँ अथवा चावल का चोकर	15%
सूखी गैरनमकीन मछली	10%
खनिज लवण	1.5 %
नमक	1.5%
लिवर टॉनिक	5-10 मिली. प्रति 100 किग्रा. दाना में मिलाएं
मछली तेल	5-10 मिली. प्रति 100 किग्रा. दाना में मिलाएं

ब्रायलर मेमनें के उत्पादन में ध्यान देने योग्य मुख्य बातें

- मेमनों के जन्म के तुरन्त बाद उनकी नाल काट कर घाव पर टिन्चर आयोडीन लगाई जाती है तथा मेमनों को खीस पिलाई जाती है।
- मेमनों का जन्म के समय का वजन, उनका लिंग, जनन का प्रकार तथा प्रसव के पहले माँ के वजन का अभिलेखन किया जाता हैं।
- मेमनों को एक हफ्ते की उम्र तक दिन में 3-4 बार दूध पिलाया जाता है उसके बाद केवल सुबह शाम दूध पिलाया जाता है। मेमनों की उम्र 3 माह की होने पर उनको माँ का दूध पिलाना बंद कर दिया जाता है। तीन माह की उम्र के बाद चरागाह उपलब्ध होने पर मेमनों को प्रतिदिन 4-6 घंटे चराया जाता है।
- वैज्ञानिक मेमना पालन में मेमनों का जन्म के तुरंत बाद वजन, उसके बाद से 3 महीने की उम्र तक हर पखवाड़े तथा उसके बाद प्रति माह मेमनों का वजन का अभिलेखन किया जाता है। बाद मे मेमनों के वजन को उनके जन्म भार, 3, 6, 9 एवं 12 माह के भार में वर्गीकृत कर लिया जाता है ताकि गैर अनुवांशिकी कारकों का उनके वजन पर प्रभाव का अध्ययन किया जा सके।
- अच्छे मेमनों की खरीद कि लिए केंद्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान के विशेषज्ञ या राज्य के संयुक्त निदेशक, पशुपालन से संम्पर्क किया जा सकता है। उनसे किसानों को इस बात की जानकारी मिल जायेगी कि किस क्षेत्र के लिए किस नस्ल का अथवा किस तरह का मेमना खरीदना अच्छा होगा। सामान्यत: जिस क्षेत्र में ब्रायलर मेमना का उत्पादन करना है उस क्षेत्र की बकरी नस्ल के मेमनें ही ब्रायलर मेमना उत्पादन के लिए लें।
- मेमनों के जीवन के लिए पहला माह संकटमय होता है। इस लिए इन दिनों में अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है। अच्छी देखभाल से मृत्यु दर कम की जा सकती है।
- मेमनों के स्वस्थ विकास के लिए पहली पेट के कीड़े मारने की दवा (डीवर्मिंग) ब्रायलर मेमनें को 45वें दिन की उम्र पर दी जानी चाहिए उसके बाद डी-वर्मिंग आवश्यकता अनुसार दोहराई जानी चाहिए।
- एक माह बाद मेमनों को छोटे फीडर में पिसा दाना तथा थोड़ा-थोड़ा हरा चारा देना शुरू करें। मेमनें इसे धीरे धीरे खाना शुरु कर देंगे। इस राशन को 12 घंटे तक खाने के लिए देना चाहिए।
- जानवरों का दाना बाजार में उपलब्ध होता है उसको बकरी पालक खरीद कर खिला सकते हैं अन्यथा बकरी पालक स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग करके स्वयं दाना तैयार कर सकते हैं।

- बाजार में स्टार्टर तथा फिनिशर दाना उपलब्ध होता है उसको खरीद कर तीसरे माह से 6 माह तक ब्रायलर मेमने को स्टार्टर दाना दें। 6 माह से 12 माह तक फिनिशर दाना उसकी इच्छानुसार खिलाएं।
- एक माह की उम्र से सामान्य बीमार होने पर मेमनें को कोई एन्टीबायोटिक दवा पशुचिकित्सक से पूछकर आधा ग्रा. प्रति लीटर पानी में मिलाकर दें, ताकि मेमनों को बीमारियों से बचाया जा सके।
- शुरु के दिनों में जमीन पर लगाई गई बिछावन को रोजाना साफ करें। पानी का बर्तन रखने की जगह हमेशा बदलते रहें।
- मरे हुए मेमनें को बाड़े से शीघ्र बाहर निकाल दें। नजदीक के अस्पताल या पशुचिकित्सक से पोस्टमार्टम करा लें। पोस्टमार्टम कराने से यह मालूम हो जायेगा की मौत किस बीमारी या कारण से हुई है।
- मेमनों के बाड़े के दरवाजे पर एक बर्तन या नाद में फिनाइल का पानी रखें। मेमनें के बाड़े में जाते या आते समय आने-जाने वाले लोग पैर अवश्य धो लें। यह पानी रोज बदलें।
- अच्छे लाभ के लिये ऊँचे आकार, मध्यम आकार तथा छोटे आकार के नस्ल वाली बकरियों के मेमनों का 12 माह की उम्र तक औसत वजन क्रमश: 45 किग्रा., 35 किग्रा. तथा 30 किग्रा. तक का करके बेचा जाना चाहिए।
- बारह माह की उम्र पर ब्रायलर मेमना को बेच देना चाहिये क्योंकि इस उम्र पर न केवल ब्रायलर मेमने का माँस स्वादिष्ट होता बल्कि उसमें अधिकतम पोषक तत्व भी होते हैं तथा उसकी कीमत भी अच्छी मिलती है।

कृत्रिम गर्भाधान द्वारा बकरियों में प्रजनन व नस्ल सुधार

एस एन शुक्ला एवं पीताम्बर इनवाती

पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, नानाजी देशमुख पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर - 482001 (मध्य प्रदेश)

कृत्रिम गर्भाधान एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा चयनित एवं अच्छे बकरों के वीर्य का उपयोग कर बकरी प्रजनन में अधिक से अधिक वृद्धि की जा सकती है। बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान का प्रयोग कुछ सरकारी एवं गैर सरकारी प्रक्षेत्रों तक ही सीमित है। परन्तु यह आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में विस्तृत पैमाने पर इसका उपयोग बकरी प्रजनन एवं नस्ल सुधार में किया जायेगा।

कृत्रिम गर्भाधान के लाभ

प्राकृतिक गर्भाधान विधि की तुलना में इस विधि में अनेकों लाभ हैं जैसेकि:

- अच्छी नस्ल के कम बकरों से प्राप्त वीर्य से अधिक से अधिक बकरियों का गर्भाधान कराया जा सकता है, जबकि प्राकृतिक गर्भाधान विधि से एक बकरा एक समय में केवल एक ही बकरी को गाभिन कर पाता है। वहीं इस विधि के द्वारा बकरे से एक बार में प्राप्त हुए वीर्य से 15-20 बकरियों को गाभिन कराया जा सकता है।
- बकरी की जननेन्द्रिय संबंधी उन रोगों की रोकथाम की जा सकती है जिसके कारण उसकी गर्भधारण शक्ति समाप्त हो जाती है अर्थात् बकरों में बीमारी की जांच उन्हें उपयोग में लाने से पूर्व ही कर ली जाती है जिसके परिणामस्वरूप हमेशा अच्छे किस्म के वीर्य का ही उपयोग किया जा सकता है जो कि प्राकृतिक गर्भाधान में संभव नहीं है।
- वीर्य संरक्षण तकनीक द्वारा हिमीकृत वीर्य को अधिक समय तक उपयोग के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है एवं उत्तम गुणवत्ता वाले जननद्रव्य का हिमीकृत वीर्य के रूप में एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तथा विश्व के एक देश से दूसरे देश में बहुत कम लागत में आसानी से आदान-प्रदान किया जा सकता है।

बकरियों में कृत्रिम गर्भाधान और वीर्य संरक्षण तकनीक में कुछ महत्वपूर्ण क्रमबद्ध चरण है जो कि इस प्रकार हैं:

- प्रजनक बकरों का चुनाव एवं प्रबंधन
- वीर्य परीक्षण, तनुकरण एवं संरक्षण
- ऋतुमयी अथवा गर्भवती बकरियों की सही पहचान एवं उचित समय पर गर्भाधान
- गर्भावस्था में बकरियों का सही तरीके से प्रबंधन

प्रजनक बकरों का चुनाव एवं प्रबंधन

नस्ल सुधार में मुख्य रूप से नरों की अहम भूमिका होती है। संतानों में से अच्छे नस्ल के नर का चयन 9-12 माह की उम्र पर उसकी शारीरिक क्षमता एवं उसकी अधिक दुग्ध उत्पादन क्षमता के आधार पर किया जाता है। प्रजनक बकरों को सदैव मादा बकरियों से पृथक रखा जाता है। सम्पूर्ण लैंगिक विकास के लिए प्रजनन ऋतु में नरों को विशिष्ट गुणवत्ता वाला आहार दिया जाना चाहिए। विभिन्न नस्लों में लैंगिक परिपक्वता एवं व्यस्कता विभिन्न आयु पर प्राप्त होती है।

वीर्य संग्रह

बकरों में वीर्य संग्रहण मुख्यतः कृत्रिम योनि द्वारा किया जाता है। विभिन्न बकरों में वीर्य प्रदान करने की क्षमता उसकी नस्ल, ऋतु एवं

बकरे से वीर्य संग्रह

आयु पर निर्भर करती है। सामान्यतः देशी नस्ल का बकरा एक घंटे में तीन बार वीर्य स्खलन कर सकता है। हिमीकरण और प्रजनन के लिए अच्छी गुणवत्ता का वीर्य प्राप्त करने के लिए वीर्य का संग्रह सप्ताह में 2-3 बार अर्थात् एक-दो दिन छोड़कर करना अच्छा रहता है।

वीर्य संग्रहण के पश्चात् उसका परीक्षण विभिन्न गुणों जैसे कि गाढ़ापन रंग, प्रारंभिक गतिशीलता, शुक्राणु सान्द्रता, जीवित शुक्राणुओं की संख्या एवं असामान्य आकृति वाले शुक्राणुओं की संख्या के आधार पर किया जाता है। इन गुणों का सीधा संबंध उसकी प्रजनन क्षमता से जुड़ा होता है।

एक अच्छे गुणों वाला वीर्य हमेशा क्रीम रंग के साथ सघनता या मध्यम गाढ़ापन और उत्तम गतिशीलता (4 या अधिक) एवं जीवित शुक्राणु का प्रतिशत 80 से अधिक होता है। विभिन्न आयु तथा नस्ल के बकरों के प्रत्येक स्खलन में वीर्य की मात्रा 0.2 से 1.5 मिली. तक पाई जाती है।

नस्ल, पोषण स्तर, उम्र और संग्रह बारम्बारता वीर्य के गुणों को प्रभावित करते हैं। वीर्य संग्रहण तथा भौतिक परीक्षण के तुरंत बाद वीर्य को तनुकारक में 1.4-7.5 में तनुकृत किया जाता है। जिससे प्रत्येक खुराक में (स्ट्रा 0.25 मिली.) 80 से 100 मिलियन जीवित शुक्राणु उपलब्ध हो सकें।

वीर्य संरक्षण

इसके दो तरीके हैं:

तरल संरक्षण तकनीक: ताजे तनुकृत वीर्य का उपयोग एक घंटे के भीतर ही कर लेना उचित होता है। बकरे के तनुकृत वीर्य को 4 से 6 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 24 घंटे तक एवं कमरे के तापमान (30-37 डिग्री सेल्सियस) पर अधिक से अधिक 2 घंटे तक संतोषजनक गुणवत्ता तथा उर्वरता के साथ रखा जा सकता है। इस वीर्य से कृत्रिम गर्भाधारण द्वारा 60-80 प्रतिशत गर्भाधारण दर प्राप्त की गई है।

हिमीकृत संरक्षण तकनीक: उच्च गुणवत्ता वाले वीर्य को इस तकनीक की सहायता से लम्बे समय तक संरक्षित रखा जा सकता है। वीर्य में 6 प्रतिशत ग्लिसरीन मिलाकर स्ट्रा में भरकर पॉलीविनायल (पी.वी.सी.) पाउडर से स्ट्रा का मुंह बंद कर दिया जाता है। उसके बाद तरल नाइट्रोजन में डुबोकर भण्डारण करते हैं। वीर्य से भरी हुई स्ट्रा हमेशा तरल नाइट्रोजन में डूबी रहनी चाहिए।

ऋतुमयी बकरियों की पहचान एवं गर्भाधान का सही समय

बकरियों में गर्मी के लक्षण का पता करने के लिए 50-60 बकरियों के समूह में एक डमी बकरे को 15 से 20 मिनट तक प्रतिदिन सुबह सूर्योदय के समय तथा सायं सूर्यास्त के समय छोड़ा जाता है। बकरियों में गर्मी की पहचान कुछ मुख्य बिंदुओं के आधार पर की जाती है; जैसेकि - पूंछ को बार-बार हिलाना, बेचैन होना, दाना-चारा कम खाना, बार-बार पेशाब करना, झुण्ड में दूसरी बकरियों पर चढ़ना तथा बकरे को सहवास के लिए स्वीकृति प्रदान करना, योनि मार्ग से पारदर्शी योनिद्रव्य का निकलना इत्यादि।

जो बकरी सुबह ऋतुकाल में आती है, उसे उसी दिन की शाम तथा जो शाम को ऋतुकाल में आये उसे अगली सुबह गर्भाधान कराना लाभदायक होता है। पहले गर्भाधान के 12 घंटे बाद पुनः गर्भाधान के अच्छे परिणाम प्राप्त हुए है।

गर्भाधान तकनीक

कृत्रिम गर्भाधान के लिए सही तकनीक का होना नितांत आवश्यक है। तरल (1-2 मिली.) वीर्य को बकरी की योनि के अंदरूनी मार्ग में प्लास्टिक नलिका के माध्यम से डाला जा सकता है। हिमीकृत वीर्य जो स्ट्रा में होता हैं के पिघलने के बाद इनसेमीनेशन गन में रखकर बकरी के पिछले भाग को थोड़ा (60°) ऊँचा उठाकर कृत्रिम रोशनी या सूर्य की रोशनी की उपस्थिति में गर्भाशय ग्रीवा में डाल दिया जाता है। विश्व के कुछ विकसित देशों में लैप्रोस्कोपिक तकनीक (दूरबीन विधि) के माध्यम से भी गर्भाधान गर्भाशय के सिरों में किया जाता है। इससे उर्वरता दर में अच्छी सफलता मिली हैं।

गर्भावस्था में बकरियों का सही प्रबंधन

गर्भाधान के बाद उर्वरता परिणामों में भिन्नता वीर्य की गुणवत्ता, ऋतु के प्रारंभ होने के समय, गर्भाधान का समय, प्रत्येक ऋतुकाल में गर्भाधानों की संख्या, वीर्य डालने की विधि और गर्भाधानकर्ता की निपुणता पर निर्भर करती है। गर्भधारण की निश्चितता के बाद प्रबंध और पोषण में बकरियों की उचित देखभाल की जरूरत होती है। गर्भावस्था के अंतिम 6 सप्ताह में उसे विशिष्ट आहार देना चाहिए ताकि बकरी अधिक से अधिक दूध दे सके और पैदा हुए बच्चे स्वस्थ हों।

भैंस के साँड़ों में संतति परीक्षण के बदलते आयाम

जय प्रकाश गुप्ता, शायमा के पी, अमित कुमार श्रीवास्तव एवं जगदीश चौधरी

पशुचिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, सरदार क्रुशीनगर दांतीवाडा कृषि विश्वविद्यालय, सरदारक्रुशीनगर - 384506 (गुजरात)

पशुधन क्षेत्र, भारतीय अर्थव्यवस्था की कृषि इकाई का एक महत्वपूर्ण उपक्षेत्र है। कृषि एवं पशुपालन अधिकांश भारतीय किसानों के लिए आजीविका का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। विकट परिस्थितियों में पशुपालन कृषि के पूरक के रूप में कृषकों का सहयोग करता है। पशु उत्पाद, किसानों के स्वयं के घरेलू स्वास्थ्य और पोषण में भी योगदान देता है, आय का वर्धन करता है, रोजगार के अवसर प्रदान करता है और साथ ही साथ जरुरत के समय एक भरोसेमंद "घर के आँगन में स्थित बैंक" की तरह काम करता है।

दुधारू पशुओं की उत्पादकता मुख्यतः उनके अनुवांशिक प्रारूप (जीनोटाइप) तथा उनके आसपास के वातावरण पर निर्भर करती है। उत्पादकता बढ़ाने के किसी भी प्रयास में इन दो कारकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विश्व के उन्नत डेयरी उत्पादक देशों में, उत्पादकता का उच्च स्तर मुख्य रूप से, संतति परीक्षण कार्यक्रम के माध्यम से विकसित, आनुवंशिक रूप से बेहतर नर पशुओं के निरंतर उपयोग के माध्यम से प्राप्त किया गया है। भारत जैसे देश में जहाँ बड़े स्तर पर व्यवस्थित पशु-फार्म की संख्या काफी कम है, क्षेत्र संतति परीक्षण (फील्ड प्रोजेनी टेस्टिंग) साँड़ों के मूल्यांकन का एक कारगर तरीका है। इस देश में बहुत कम ऐसी एजेंसियां हैं, जिन्होंने बड़े पैमाने पर साँड़ उत्पादन के लिए क्षेत्र संतति परीक्षण कार्यक्रम को क्रियान्वित किया है। केरल पशुधन विकास बोर्ड, इस क्षेत्र में अग्रणी है और पिछले कुछ दशकों से साँड़ उत्पादन के लिए कार्यक्रम का क्रियान्वयन कर रहा है। गुजरात राज्य की दो एजेंसियां नामतः साबरमती आश्रम गौशाला, बीडज और मेहसाणा जिला कोआपरेटिव दुग्ध उत्पादक संघ ने भी एच. एफ. गोवंश, मुर्राह और मेहसाणा भैंस के साँड़ों के लिए 15 वर्ष से अधिक समय से, राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड (एन.डी.डी.बी.) के मार्गदर्शन में, साँड़ मूल्यांकन कार्यक्रम को कार्यान्वित कर रही हैं। इन के अलावा, कुछ अन्य संस्थान भी हैं जो क्षेत्र संतति परीक्षण के द्वारा साँड़ों का मूल्यांकन कर रहे हैं, लेकिन ऐसा काफी छोटे स्तर पर हो रहा है।

बदलते परिवेश में, बदलती आवश्यकताओं के बीच साँड़ों के उत्पादन एवं मूल्यांकन के आयाम में भी काफी परिवर्तन आया है। भूतकाल में जहाँ सिर्फ़ दुग्ध उत्पादन के लिए साँड़ों का मूल्यांकन किया जाता था, वर्तमान में इसका दायरा बढ़कर दुग्ध-वसा, दुग्ध-उर्जा, पशुओं के स्वास्थ्य (किलनी प्रतिरोध इत्यादि) एवं पशु-कल्याण सम्बंधित लक्षणों तक के लिए हो गया है।

कृषि और संबंधित क्षेत्रों के कुल सकल घरेलू उत्पादन का 29 प्रतिशत भाग पशुपालन से प्राप्त होता है। भारत में पशुपालन में भैंस-पालन का प्रमुख स्थान है और यह माना जाता है की भैंसों को अपेक्षाकृत कम निविष्टियों (इनपुट) की आवश्यकता होती है। भैंसें कम-गुणवत्ता वाली फसल के चारे पर भी सफलता पूर्वक गुजारा करती हैं (रेसाली, 2000)। देश के कुल दूध उत्पादन का 49 प्रतिशत भैंसों से प्राप्त होता है। भैंसें भारतीय डेयरी उद्योग की रीढ़ हैं तथा इन्हें भारत की दुग्ध मशीन के रूप में जाना जाता है। भैंसों को चलता फिरता 'चेक' भी माना गया है, क्योंकि जब भी पशुपालकों को पैसों की जरुरत होती है वे भैंस का दूध बेचकर तुरंत पैसे कमा सकते हैं । भारत में करीब 108.7 मिलियन भैंस हैं जो विश्व के कुल भैसों का करीब 57.3% हैं। हमारा देश दुनिया में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। 1960 के दशक में यहाँ दूध का उत्पादन 17.22 लाख टन था, जो 2016-17 में बढ़कर 163.7 मिलियन टन हो गया। इसी प्रकार 2016-17 में दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 307 ग्रा. थी जो 2016-17 में बढ़कर 351 ग्रा. हो गई। 2021-22 तक दूध की मांग 200 मिलियन टन होने की सम्भावना है।

भारत विश्व भर में भैसों की उत्तम नस्लों जैसे मुर्राह, नीली-रावी, मेहसाणा, सुरती, जाफराबादी, भदावरी इत्यादि के लिए विख्यात है। गुजरात की मेहसाणा भैंस पूरे भारत में ही नहीं अपितु विश्व में अपनी प्रजनन क्षमता एवं उत्पादकता के लिए प्रसिद्ध है । यह माना जाता है कि इस नस्ल का विकास अतीत में मुर्राह एवं सुरती भैंसों के प्रजनन से हुआ है। मेहसाणा भैंसें, मुर्राह की तुलना में

अपेक्षाकृत छोटी आकार की होती हैं, परंतु इनकी पहचान निरंतर दुग्ध उत्पादक एवं नियमित प्रजनक के रूप में की जाती है । देश में दूध उत्पादन बढ़ाने के लिए शुरू किए गए 'ऑपरेशन फ्लड' अभियान में मेहसाणा भैसों का योगदान अविस्मरणीय रहा है।

दुग्ध-ऊर्जा के आधार पर साँड़ों का मूल्यांकन

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, प्रोटीन और ऊर्जा की आपूर्ति और मांग के बीच के असंतुलन को प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण (पीईएम) कहते हैं तथा यह शरीर के इष्टतम विकास को सुनिश्चित करने लिए अत्यंत आवश्यक होता है। अंतर्राष्ट्रीय संस्था, यूनीसेफ ने यह निर्धारित किया है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि व्यक्ति के पास पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध है या नहीं, यह जरूरी है कि उसके परिवार में खाद्य-सुरक्षा की भावना हो। भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक (2010), एक ऐसी ही दूरदर्शी योजना है जिसमें समाज में हाशिए पर रह रहे व्यक्ति के लिए सतत खाद्य उपलब्धता को सुनिश्चित करने का प्रावधान किया गया है।

खाद्य असुरक्षा के प्रमुख घटकों में खाद्य अनुपलब्धता, अपर्याप्त क्रय शक्ति अथवा घरेलू स्तर पर खाद्य पदार्थों के अनुचित उपयोग को रेखांकित किया गया है। हालांकि, पिछले दो दशकों में प्रति व्यक्ति भोजन उत्पादन में 75% की वृद्धि हुई है, परन्तु विडंबना यह है कि यह पोषण और खाद्य ऊर्जा-सुरक्षा के रूप में परिलक्षित नहीं हुआ है (चंद और जुमराणी, 2013)। इससे भी ज्यादा परेशान करने वाला तथ्य यह है कि आय का स्तर, गरीबी, तथा पोषण का अभाव, सभी एक ही दिशा में आगे नही बढ़ रहे हैं। इसका मतलब यह है कि आय का स्तर और पोषण का अभाव में कोई संबध नही है। यह भी आश्चर्यजनक है कि प्रति व्यक्ति भोजन उत्पादन में वृद्धि और गरीबी में गिरावट के बावजूद, भारत में कुपोषण की वृद्धि दर अनवरत बढ़ रही है (चाँद और जुमराणी, 2013)। भारत विश्व में एक ऐसा बड़ा देश है जहाँ मुख्यतः शाकाहारी भोजन का प्रचलन सबसे ज्यादा है। भारत में जनसँख्या का एक बड़ा हिस्सा (35%) शाकाहारी है (श्रीधर एवं सहयोगी, 2014), जबकि यदि गुजरात की बात करें तो यह आंकड़ा 61.20 प्रतिशत तक पहुँच जाता है (एसआरएस, 2014)। शाकाहारी लोगों के लिए दूध; आहार-ऊर्जा, प्रोटीन और वसा का एक प्रमुख स्रोत है, जो प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति औसतन 134 किलोकैलोरी ऊर्जा, 8 ग्रा. प्रोटीन और 7.3 ग्रा. वसा का योगदान करता है (त्यागी, 2017)।

किसी भी देश की तरक्की का आकलन वहां के मानव संसाधन के स्वाथ्य के मानकों के आधार पर किया जाता है। भारत में, हालांकि पिछले कुछ दशकों में दूध के उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई है, लेकिन, दूध और अन्य डेयरी उत्पादों का आहार-ऊर्जा में सापेक्षिक योगदान बहुत कम रहा है। ऊर्जा-असुरक्षा को कम करने में दूध के महत्व को देखते हुए, यह समयोचित होगा की हम भैंस के साँड़ों की अनुवांशिक क्षमता का मूल्यांकन उनके द्वारा दूध के रूप में उर्जा-उत्पादन क्षमता के आधार पर करें तथा साथ-साथ यह भी सुनिश्चित करें की संतति परिक्षित साँड़ न सिर्फ़ उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता वाला हो अपितु उच्च उर्जा उत्पादन क्षमता वाला भी हो। वर्तमान में दूध की पैदावार को बढ़ाने के लिए डेयरी पशुओं की उत्पादकता में वृद्धि पर काफी बल दिया गया है। हटमैन एवं सहयोगी (2009) ने ऊर्जा संतुलन को भविष्य के पशु-प्रजनन कार्यक्रमों में शामिल करने का विचार व्यक्त किया था।

उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए समय की यह माँग है कि संतति परीक्षण में उर्जा संशोधित दुग्ध उत्पादन (ई.सी.एम.वाय.) जो विशेषतः औसत परीक्षण दिवस वसा उत्पादन (ए.टी.डी.एफ. वाई.) पर आधारित हो, को शामिल किया जाए। ऐसा इसलिए क्योंकि ए.टी.डी.एफ.वाई. का वंशागतित्व मान (हेरिटिबिलिटी) अधिक है और ई.सी.एम.वाई. में मुख्यतः वसा का ही योगदान है। इस प्रक्रिया में प्रबल संभावना है कि ई.सी.एम.वाई. के द्वारा परिक्षित सांड़ों की यथार्थता सिर्फ़ दूध आधारित परीक्षण से ज्यादा कारगर तरीके से होगी। इसके अतिरिक्त, ई.सी.एम.वाई. के आधार पर साँड़ों के मूल्यांकन का महत्व और अधिक हो जाता है, जब दूध के मूल्य-निर्धारण का कारक वसा उत्पादन हो, न कि सिर्फ़ कुल दूध की मात्रा। इस लेख के कुछ लेखकों ने अपने पशु-प्रजनन प्रयोगशाला में मेहसाणा साँड़ों का परीक्षण, उर्जा उत्पादन के आधार पर किया एवं परिणाम को काफ़ी उत्साहवर्धक पाया।

मादा पशुओं की प्रजनन क्षमता के आधार पर साँड़ों का मूल्यांकन

किसी पशु-संवर्धन कार्यक्रम में मादा पशुओं के संवर्धन का विशेष आर्थिक महत्व है। मादा की निम्न स्तरीय प्रजनन क्षमता उन्हें अपने उच्चतम उत्पादन अवधि तक पहुँचने में विलम्ब करती है तथा उत्पादकता को कम करती है। इससे किसी भी उत्पादक गुण के आनुवंशिक-लाभ (जेनेटिक गेन) की दर में ह्रास होता

है, गर्भधारण के लिए होने वाले खर्च की लागत बढ़ जाती है तथा ऐसे पशुओं को फार्म से अनैच्छिक निकास की ओर अग्रसर करता है । हाल के वर्षों में दुग्ध-उत्पादन में वृद्धि के लिए किये गए अनुवांशिक चयन से पशुओं के प्रजनन क्षमता में काफी ह्रास अंकित किया गया है। वर्तमान समय में यह दुनिया के मुख्य दूध उत्पादक देशों में एक प्रमुख समस्या के तौर पर चिन्हित किया गया है। अतः पशु उत्पादन क्षमता के साथ समझौता किए बिना, मादा प्रजनन क्षमता में आनुवंशिक सुधार दुधारू पशुओं के संवर्धन में एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

पशुओं की प्रजनन क्षमता का आनुवंशिक मूल्यांकन काफी आवश्यक है। अतः यह आवश्यक है की इसके लिए हम दुधारू पशुओं की जनन क्षमता का त्रुटिरहित मापन करें। मादा पशु की जनन क्षमता को उसके जीवित बछड़ा उत्पन्न करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। मादा पशु की जनन क्षमता का मापन ब्यांत अंतराल, सर्विस पीरियड, संतान गर्भ दर (डॉटर प्रेग्नेंसी रेट) आदि जैसे विभिन्न संकेतकों का उपयोग करके किया जाता है। ये सभी संकेतक, पशु प्रजनन क्षमता तथा इससे संबंधित सभी गतिविधियों यानी गर्मी (हीट) की जाँच करना, गर्मी (इस्टरस) की अभिव्यक्ति, गर्भाधान दर, प्रथम कृत्रिम गर्भाधान का समय तथा स्वैच्छिक प्रतीक्षा अवधि (वॉलेन्ट्री वेटिंग पीरियड) की लंबाई इत्यादि से प्रभावित होते हैं।

स्वैच्छिक प्रतीक्षा अवधि पशु के दुग्ध उत्पादन का प्रारंभिक चरण है, जिसमें पशु को पुनः गर्भधारण के लिए पशुपालकों के द्वारा स्वेच्छा से गर्भाधान के लिए नहीं लाया जाता है, भले ही वे गर्मी के लक्षणों को प्रदर्शित कर रहे हों। यह साधारणतया-पशुओं के गर्भाशय को पुनः अपनी सामान्य अवस्था में आने के अवसर देने तथा प्रसव के समय के नकारात्मक ऊर्जा-संतुलन से उबरने के लिए किया जाता है। इसी सन्दर्भ में "संतान गर्भ दर" एक नई और नवीनतम विधि है जिससे दुधारू पशुओं में प्रजनन क्षमता की निगरानी पारंपरिक सर्विस पीरियड एवं गर्भाधान दर के मुकाबले अधिक कुशलता से किया जा सकता है। संतान गर्भ दर, गैर-गर्भवती जानवरों का वह प्रतिशत है जो प्रत्येक 21 दिनों की अवधि में गर्भ धारण करते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एक बछड़ा पैदा करने के बाद पशु फिर कितनी जल्दी गर्भ-धारण करते हैं, इसे संतान गर्भ दर कहते हैं।

संतान गर्भ दर की गणना में सर्विस पीरियड का काफी महत्व है, जोकि ब्यांत की तारीख और सफल गर्भाधान की तिथि के बीच की अवधि के रूप में परिभाषित है। सर्विस पीरियड मादा प्रजनन के आनुवंशिक मूल्यांकन के लिए सबसे ज्यादा प्रचलित लक्षण है, क्योंकि डेयरी फार्मों में इसे रिकॉर्ड करना काफी आसान है। इन दोनों लक्षणों का उपयोग करके संतान गर्भ दर के अभिकलन की व्यवस्था निम्नवत की जाती है-

संतान गर्भ दर = 21 / (प्रथम सर्विस पीरियड - स्वैच्छिक प्रतीक्षा अवधि + 11)

साँड़ों का मूल्यांकन का आधार मुख्यतः दुग्ध उत्पादन ही रहा है, परन्तु यह भी सर्वविदित है की प्रजनन एवं उत्पादन में व्युत्क्रमानुपाती आनुवंशिक सम्बन्ध है। अतः साँड़ों के मूल्यांकन का यह आधार भविष्य के संतानों में उनकी प्रजनन की क्षमता पर निर्याणक प्रभाव डालेगा। इसीलिए, यह आवश्यक है की साँड़ों का मूल्यांकन उनकी प्रजनन क्षमता के आधार पर भी किया जाए और ऐसे में संतान गर्भ दर इसके लिए सबसे उपयुक्त आधार हो सकता है।

बहु-गुण (मल्टी-ट्रेट) विश्लेषण के आधार पर साँड़ों का मूल्यांकन

पशु प्रजनकों का मूल उद्देश्य उत्पादकता और आनुवंशिक सुधार हेतु आनुवंशिक रूप से श्रेष्ठ आनुवंशिक साँड़ों का चयन करना है। यदि साँड़ों का चयन प्रभावी तरीके से किया जाए और कृत्रिम गर्भाधान के लिए उच्च आनुवंशिक योग्यता वाले साँड़ों का इस्तेमाल हो तो, यह प्रक्रिया अवश्य ही उच्च आनुवंशिक प्रगति लाएगी। दुधारू-पशुओं का चयन मूल रूप से उनकी मादा संतानों के उत्पादन के प्रदर्शन के आधार पर साँड़ों का रैखिक (लिनिअर) और गैर-रेखीय (नॉन-लीनियर) मॉडल का उपयोग करते हुए आनुवंशिक मूल्यांकन करके किया जाता है।

भारतवर्ष में साँड़ों का आनुवंशिक मूल्यांकन मुख्यतः एक ही लक्षण जैसेकि दुग्ध उत्पादन अथवा वसा उत्पादन इत्यादि के आधार पर किया जाता है। कुछ अन्य मामलों में, एक से अधिक लक्षणों के आधार पर भी साँड़ों का आनुवंशिक मूल्यांकन किया गया है। वर्तमान में इस लेख के लेखकगण भी एक से अधिक लक्षणों के

आधार पर मेहसाणा साँड़ों के मूल्यांकन का कार्य कर रहे हैं; जिसमें दुग्ध उत्पादन एवं प्रजनन गुणों का समावेश करके बहु-लक्षण मॉडल का उपयोग साँड़ों के मूल्यांकन के लिए किया जा रहा है। हेंडरसन और क्वास (1976) ने सबसे पहले बहु-गुण ब्लप प्रक्रिया का उपयोग किया था। पशुओं के आनुवंशिक मूल्यांकन के लिए बहु-गुण विश्लेषण एक वांछित पद्धति है, जो लक्षणों के बीच आकारकी (फेनोटाइपिक) और आनुवंशिक सहसंबंधों (को-रीलेशन) को ध्यान में रखकर नतीजे देता है।

एकल लक्षण मॉडल सरल सह-संबंध के आधार पर मूल्यांकन करता है, जबकि बहु-लक्षण मॉडल, लक्षणों के बीच सभी अंतर-संबंधों का इस्तेमाल करके सटीक मूल्यांकन करता है। इसी प्रकार, बहु-लक्षण मॉडल विश्लेषण में, निम्न अनुवांशिकता (हेरिटिबिलिटी) वाले लक्षणों को तब सबसे ज्यादा फायदा होता है, जब उनका उच्च अनुवांशिकता के गुणों के साथ विश्लेषण करते हैं। बहु-लक्षण मॉडल के द्वारा विश्लेषण की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह उन लक्षणों के लिए भी साँड़ों का मूल्यांकन कर सकता है जिनके फीनोटाइपिक मापन की उपलब्धता या तो नहीं है अथवा सीमित है।

किलनी (टिक्स) प्रतिरोध क्षमता के आधार पर साँड़ों का मूल्यांकन

इस परिपेक्ष्य में यदि हम साँड़ों का चयन उनके संतान के स्वास्थ्य के आधार पर नहीं करते हैं तो साँड़ों का मूल्यांकन अधूरा रह जाता है। दुनिया में लगभग 80% गोवंश को किलनी एवं उनसे जनित रोगों का जोखिम है। उष्णकटिबंधीय देशों में किलनियों का प्रभाव काफी व्यापक है एवं इनसे होने वाली हानि के कारण उत्पादन प्रणालियों पर भारी आर्थिक प्रभाव पड़ता है। पशुओं के किलनी प्रतिरोध क्षमता को स्थायी रूप से बढ़ाने के लिए इनका चयन किलनी के प्रतिरोध क्षमता को एक लक्षण मानकर करें तो किलनियों का नियंत्रण करके आर्थिक नुकसान को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। किलनी प्रतिरोध में सुधार के उद्देश्य से, पशुओं का आनुवंशिक सुधार कार्यक्रम में वैसे जानवरों का चयन एवं भविष्य में पशु-संवर्धन के लिए उपयोग करना चाहिए, जो उनके संतानों को प्रतिरोध क्षमता प्रदान कर सकें। इस प्रकार से किलनी प्रभावी क्षेत्रों में भारी तादात् में पशुओं की किलनी के प्रति संवेदनशीलता को कम किया जा सकता है। इससे उस क्षेत्र की किलनियों में काफी गिरावट आएगी जो कि किलनी नियंत्रण की रासायनिक विधियों की जरूरत को कम करने में योगदान करेगा। इस प्रक्रिया में सबसे बड़ी वास्तविक बाधा उन पशुओं की पहचान करना है जिनके पास किलनी के विरुद्ध उच्च आनुवंशिक प्रतिरोध है। यह प्राप्त करने के लिए सबसे सरल तरीकों में से एक यह है कि स्वाभाविक रूप से किलनी प्रतिरोधी पशुओं को भविष्य में प्रजनन के लिए उपयोग करना। साथ ही साथ यदि किलनी प्रतिरोधी गुण, उत्पादन और प्रजनन के गुणों के साथ जुड़ा हुआ है, तो किसी भी पशु संवर्धन कार्यक्रम के कई उद्देश्य बिना किसी अतिरिक्त निवेश के प्राप्त किए जा सकते हैं (शायमा एवं सहयोगी, 2015)।

किलनी एवं उससे प्रभावित पशुओं के बीच पारस्परिक सम्बन्ध काफी जटिल है, उसके बावजूद, यह देखा गया है कि पशुओं के किलनी-प्रतिरोध में प्रदर्शित विभिन्नता में आनुवंशिक घटक उपस्थित हैं। किलनियों का प्रतिरोध एक आनुवंशिक (हेरिटेबल) लक्षण है और कई वैज्ञानिकों ने इस प्रतिरोध की हेरिटिबिलिटी का मापन किया है (प्रयागा एवं सहयोगी, 2009)। मवेशियों को किलनी प्रतिरोध के लिए चुना गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जो पशु विकसित नस्ल के साथ किलनी प्रतिरोधी हैं, वे अच्छा उत्पादकन भी करते हैं।

किलनी प्रतिरोध की आनुवंशिकता (हेरिटिबिलिटी) विभिन्न शोधकर्ताओं के द्वारा निम्न से लेकर उच्च तक अंकित की गयी है। उत्कृष्ट साँड़ों का चयन सबसे प्रभावी तब होगा जब हम इन साँड़ों का मूल्यांकन बहु-लक्षण मॉडल में दूध उत्पादन और प्रतिरोध दोनों लक्षणों के लिए साथ-साथ करें तथा इसके आधार पर साँड़ों का आनुवंशिक मूल्य अर्थात ब्रीडिंग वैल्यू का निर्धारण करें।

पशु कल्याण से संबंधित लक्षणों के आधार पर साँड़ों का मूल्यांकन

पशुओं में, आनुवंशिक सुधार का मुख्य लक्ष्य उत्पादन के गुणों में सुधार लाना है। हालांकि, ऐसे कई उदाहरण हैं जहां उच्च उत्पादकता के लिए चयन से स्वास्थ्य और जीवन के लिए उपयुक्त लक्षणों पर प्रतिकूल परिणाम हुआ है जिसके कारण पशुओं के कल्याण सम्बन्धी लक्षणों में अवनति दर्ज की गई है। ये प्रभाव पशुओं के संवर्धन में नैतिक स्वीकार्यता के बारे में सवाल उठाते हैं। जब पशुओं का आनुवंशिक चयन केवल उच्च उत्पादन के

लिए किया जाता है तब उनका शारीरिक संतुलन बिगड़ता है। ऐसा पशुओं के पर्यावरणीय चुनौतियों और उनसे बचने के लिए उनके पास उपलब्ध संसाधनों के बीच सामंजस्य के आभाव के कारण होता है। इनमें सुधार, या तो पशु के आसपास के वातावरण को उनके अनुकूल बनाकर किया जा सकता है या फिर आनुवंशिक चयन के जरिए पशु को उनके उत्पादन परिवेश के अनुकूल होने की क्षमता प्रदान करके की जा सकती है।

पशु कल्याण से संबंधित गुणों के आंकड़ों को एकत्र करने तथा डेयरी गायों के लिए आगामी प्रजनन कार्यक्रमों में इस जानकारी का उपयोग करने के लिए हमें यह प्रयास करने की आवश्यकता है कि हम इन लक्षणों को पशु प्रक्षेत्र में ही किसी पैमाने पर मापने का कोई कारगर तरीका ढूंढ निकालें। यहां, दुग्ध-पार्लर में या उसके आसपास, इन कल्याणकारी लक्षणों का मापन यदि स्वचालित डेटा संग्रहण, पशुओं के व्यक्तिगत स्तर पर किया जा सके, तो काफी कारगर साबित होगा । जहां ये आंकड़े उपलब्ध हैं, वहाँ स्वास्थ्य और कल्याण के लक्षणों को पशु संवर्धन कार्यक्रम में शामिल करके प्रजनन के लक्ष्यों को विस्तारित किया गया है तथा इसके लाभकारी आर्थिक परिणाम देखे गए हैं (वॉल एवं सहयोगी, 2010)।

पशु संवर्धन कार्यक्रमों में पशुओं के व्यवहार और पशु कल्याण के लक्षणों की भूमिका हाल के दिनों में बढ़ी है। यह इस तथ्य पर भी आधारित है कि आजकल पालतू पशुओं को एकल आवास प्रणाली की जगह समूह आवास प्रणालियों में रखा जाता है, जहां हर पशु का व्यवहार पूरे समूह के उत्पादन-प्रदर्शन को प्रभावित करता है। ऐसी प्रणाली को सफल बनाने के लिए, पशुओं का आनुवंशिक चयन उनके सामूहिक प्रदर्शन के आधार पर होना चाहिए, न की एक या कुछ पशुओं के व्यक्तिगत प्रदर्शन के आधार पर (चेंग, 2010)।

निष्कर्ष

किसी विशिष्ट स्थान या उत्पादन प्रणाली के लिए पशु संवर्धन कार्यक्रम को चुनते समय दुग्ध-उत्पादकता के अतिरिक्त दुग्ध-ऊर्जा उत्पादन, रोग-प्रतिरोधक क्षमता एवं पशु-कल्याण संबंधी लक्षणों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक नस्ल विशेष के लिए ऐसे साँड़ों के चयन पर जोर दिया जाना चाहिए जिनकी ब्रीडिंग वैल्यू पशुओं के ऊपर वर्णित लक्षणों के लिए ज्यादा हो। इन साँड़ों को भविष्य में संतति परीक्षण में सफल होने के तदुपरांत इनका पशु संवर्धन कार्यक्रम में उपयोग करना चाहिए। इनमें संक्रामक और उत्पादन संबंधी रोगों, प्रसव में आसानी, प्रजनन क्षमता तथा पशुओं का नैसर्गिक स्वभाव आदि शामिल हैं। इसके लिये सबसे ज्यादा जरुरी है की इन लक्षणों के मापन की समुचित व्यवस्था की जाये।

सन्दर्भ

एनएफएसबी (2010) राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा बिल पर विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट।

एफ. ए. ओ. (2013), हंगर पोर्टल 2013।

एस.आर.एस. (2014). रजिस्ट्रार जनरल ऑफ़ इंडिया।

चाँद आर एवं जुमरानी जे. (2013). इंडियन जर्नल ऑफ़ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स 68, 39-53.

चेंग एच डब्ल्यू. (2010). पोल्ट्री सांइस 89, 805-813.

त्यागी एस, कुमार, वाय एवं पंवार डी, (2017). इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एप्लाइड एंड करंट रिसर्च 1, 1-10.

प्रयागा एवं सहयोगी (2009). एनिमल प्रोडक्शन सायंस 49: 413-425.

रेसाली (2000), एफएओ का अंतर-क्षेत्रीय सहकारी अनुसंधान नेटवर्क समीक्षा बुलेटिन, यूरोप 14, 6-10.

वॉल एवं सहयोगी (2010). एनिमल 4, 366-376.

शायमा एवं सहयोगी (2015). जर्नल ऑफ़ परासिटिक डिजीज, 39, 1-6.

श्रीधर एवं सहयोगी. (2014). पलोस वन 9, e110586.

हटमैन एवं सहयोगी (2009). एनिमल 3, 181-188.

हेंडरसन एवं क्रास (1976). जर्नल ऑफ़ एनिमल साइंस 43, 1188-119 7.

ए1/ए2 दूधः आनुवंशिक आधार तथा स्वास्थ्य संबंधी पहलू

अनुज चौहान, सुशील कुमार, अरविंद सोनवने, सुबोध कुमार एवं भारत भूषण

पशु आनुवंशिकी विभाग, भाकृअनुप-भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्ज़तनगर - 243122 (उत्तर प्रदेश)

यह एक राष्ट्रीय गौरव का विषय है कि भारत पिछले 15 वर्षों से दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में पहले पायदान पर विद्यमान है। कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के वित्तीय वर्ष 2017-18 के अंतरिम आंकड़ों के अनुसार देश में 6.6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर के साथ 176.35 मिलियन टन दूध का उत्पादन हुआ जो पिछले वित्तीय वर्ष से 11 मिलियन टन अधिक था। इस उपलब्धि का श्रेय मुख्य रूप से सीमांत, छोटे और मध्यम किसान परिवारों को जाता है जिनके पास गौवंश की बड़ी संख्या का स्वामित्व है। हालांकि प्रति किसान परिवार का औसत दो से तीन दुधारू पशुओं का ही है। इसके साथ-साथ इस दुग्ध क्रांति में दूध प्रसंस्करण और विपणन संगठनों तथा दूध उत्पादकों से सम्बंधित अन्य हितधारकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मूलतः भारत में दुग्ध व्यवसाय को कृषि के सहायक व्यवसाय के रूप में ही देखा जाता है और खेती किसानी से बचे कचरे, घास-फूस के इस्तेमाल और परिवार के लोगों के श्रम के जरिये ही इस व्यवसाय की साज-संभाल होती है। इसके बावजूद देश के कृषि सकल घरेलू उत्पाद में डेरी क्षेत्र सबसे बड़ा योगदानकर्ता है। देश के कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों (कृषि, पशुधन, वानिकी एवं मत्स्य पालन) के विभिन्न उत्पादों की श्रृंखला की मूल्य के हिसाब से तुलना की जाए तो दूध सबसे अग्रणी स्थान पर है। भारत में विश्व की सबसे बडी गौवंश संख्या (14 प्रतिशत) मौजूद है। वर्तमान में भारत में गायों की 41 पंजीकृत नस्लें हैं। देश में विविध जलवायु एवं पारिस्थितिकी क्षेत्र होने के कारण गौ प्रजाति की बड़ी संख्या में नस्लें विकसित हुई हैं। ये नस्लें देश की कठोर जलवायु स्थितियों में कई पीढ़ियों के प्राकृतिक और कृत्रिम चयन से विकसित हुई हैं। स्वदेशी नस्लों में रोग प्रतिरोध क्षमता, उष्णकटिबंधीय जलवायु परिवेश में और कम गुणवत्ता के खाद्य पदार्थ के साथ भी बेहतर प्रदर्शन की क्षमता इन्हे खास बनाती है। इन नस्लों की आर्थिक उपयोगिता के सम्बंध में जहाँ एक ओर कृषि कार्यों में बढ़ते मशीनीकरण तथा रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल के चलते खेत जोतने, भारवाहन, गोबर खाद इत्यादि कार्यों में गौवंश पशुओं की भूमिका कम हुई है वहीं दूसरी ओर, दूध तथा इसके गुणवत्ता वाले उत्पादों के स्रोत के रूप में उनका महत्व बढ़ गया है। आर्थिक विकास, तेजी से बढ़ती शहरी आबादी, बढ़ते हुए मध्यमवर्ती वर्ग, जीवन शैली में बदलाव, परिवहन और भंडारण व्यवस्थाओं में सुधार और विशेष रूप से शहरों और कस्बों में सुपरमार्केट की वृद्धि, पशु खाद्य उत्पाद खपत में बढ़ोतरी के कारक बने हैं। आज उपभोक्ता बेहतर उत्पाद के लिये ज्यादा दाम देने को भी तैयार है। ए1 और ए2 दूध को लेकर पूरी दुनिया में जागरूकता बढ़ी है। न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया में कम्पनी द्वारा ब्रांडेड ए2 दूध, साधारण दूध से अधिक मूल्य पर बेचा जाता है। वर्तमान में, ऑस्ट्रेलिया में बेचे जाने वाले कुल दूध में ए2 दूध की मात्रा 10 प्रतिशत है। भारत में भी यह बात बड़ी जोर-शोर से प्रचारित हो रही है कि देशी गाय ए2 दूध देती है जो विदेशी/संकर गाय की तुलना में लाभदायक है। गुजरात में दिसम्बर, 2016 में प्रधान मंत्री महोदय ने अमूल देशी ए2 गाय के दूध का शुभारंभ किया जो अहमदाबाद शहर के अमूल पार्लर के माध्यम से 500 मिली पेट बोतलों में 35 रुपये की दर से विशेष रूप से उपलब्ध है। दिल्ली, नोएडा और गुड़गांव में निजी फर्म गिर गाय के ए2 दूध की घरों में आपूर्ति कर रही है और प्रति लीटर ए2 दूध का दाम 160 रुपये तक भी है। ए1/ए2 दूध के लिये जनमानस में बढ़ती उत्सुकता को ध्यान में रखते हुए ए1/ए2 दूध के वैज्ञानिक आधार और स्वास्थ्य सम्बंधी पहलू का वर्णन इस लेख में किया गया है।

ए1/ए2 दूध क्या है ?

पौष्टिकता की दृष्टि से दूध एक मात्र सम्पूर्ण आहार है जो हमको प्रकृति की देन है। आमतौर पर दूघ में 83 से 87 प्रतिशत तक पानी, 3.5 से 6 प्रतिशत तक वसा, 4.8 से 5.2 प्रतिशत तक कार्बोहाइड्रेट और 3.1 से 3.9 प्रतिशत तक प्रोटीन होती है। इस

प्रकार कुल ठोस पदार्थ 12 से 15 प्रतिशत तक होता है। लैक्टोज 4.7 से 5.1 प्रतिशत तक और शेष तत्व अम्ल, एन्जाईम, विटामिन आदि 0.6 से 0.7 प्रतिशत तक होते हैं। दूध के अतिरिक्त कोई भी अकेला पेय या ठोस भोज्य पदार्थ प्रकृति में उपलब्ध नहीं है जिससे इन सब पोषक तत्वों को प्राप्त किया जा सके। जो लोग शुद्ध शाकाहारी हैं, उनके लिए प्रोटीन और सूक्ष्म-तत्व का दूध एक अच्छा स्रोत है। गाय के दूध में पाए जाने वाली प्रोटीन 2 प्रकार की होती हैं, केसीन और व्हे प्रोटीन जिनकी दूध के कुल प्रोटीन में मात्रा कृमशः 80 प्रतिशत तथा 14 प्रतिशत है। दूध में केसीन प्रोटीन 4 प्रकार की होती है जिसमें अल्फा एस1 (39 से 46 प्रतिशत), एल्फा एस2 (8 से 11 प्रतिशत), बीटा केसीन (25 से 35 प्रतिशत) और कापा केसीन (8 से 15 प्रतिशत) शामिल हैं। इनका उत्पादन गाय के गुणसूत्र क्रमांक छ: पर स्थित चार केसीन जीन के समूह द्वारा नियंत्रित होता है। बीटा-केसीन के 13 आनुवंशिक रूप हैं ए1, ए2, ए3, बी, सी, डी, ई, एफ, एच1, एच2, आई तथा जी, जिसमें ए1 और ए2 सबसे आम रूप हैं। गायों में अनुवांशिकता (जैनेटिक कोड) के आधार पर केसीन प्रोटीन अलग-अलग प्रकार की होती है जो दूध की सरंचना को प्रभावित करती है। जीनोमिक अध्ययनों के अनुमान के आधार पर ए2 बीटा- केसीन जीन को भारत की देशी जेबू गाय और विदेशी गाय में मूल बीटा केसीन जीन के रूप में तथा ए1 रुप के जनक के तौर पर माना जाता है। प्रत्येक गाय में बीटा-केसीन प्रोटीन का संश्लेषण करने वाली जीन की दो प्रतियां होती हैं जिससे गाय के ए1ए1 या ए1ए2 या ए2ए2 जीनोटाइप की संरचना होती है। ए1 और ए2 दोनो आनुवंशिक रुप में से कोई भी दूसरे पर प्रभावी प्रतीत नहीं होता जिसका अर्थ है कि ए1ए2 जीनोटाइप वाली गाय द्वारा उत्पादित दूध में ए1 और ए2 बीटा-केसीन प्रोटीन के बराबर अनुपात शामिल होंगे। जबकी ए1ए1 गाय स्पष्ट रूप से ए1 बीटा-केसीन का उत्पादन करती हैं और ए2ए2 गाय केवल ए2 बीटा-केसीन का उत्पादन करती हैं। शुरूआत में सभी देशी और विदेशी गाय ए2ए2 प्रकार की ही होती थी। ए2 बीटा-केसीन से ए1 में परिवर्तन कुछ हजार सालों पहले यूरोपीय मूल की बड़ी काली और सफेद गाय की नस्लों जैसे होल्स्टीन फ्रीजियन में प्राकृतिक उत्परिवर्तन के कारण हुआ जिससे कुछ गाय ए1 हो गयीं। इन यूरोपीय नस्लों के आकार, उच्च दुग्ध उत्पादन और व्यवहार के कारण, इन नस्लों का इस्तेमाल उत्तरी यूरोप और अमेरिका में दूध के उत्पादन के लिए बड़े स्तर पर किया जाता रहा। ऐसे बैलों के वीर्य का बड़ी संख्या में गायों में कृत्रिम गर्भाधान के लिये प्रयोग ने समय के साथ ए1 जीन की आवृत्ति बढ़ाई।

ए1 और ए2 के बीच का बड़ा अंतर 209 एमिनो एसिड की बीटा-केसीन प्रोटीन श्रृंखला में 67वें स्थान पर स्थित एक एमिनो एसिड है। ए1 रुप में बीटा- केसीन श्रृंखला के 67वें स्थान पर एमिनो एसिड हिस्टिडीन होता है, जबकि ए2 बीटा-केसीन में प्रोलीन अमीनो एसिड होता है। आनुवांशिक स्तर पर प्राकृतिक उत्परिवर्तन होने के कारण मूल ए2 में स्थित प्रोलीन का ए1 में हिस्टिडीन द्वारा प्रतिस्थापन हुआ है। ए2 बीटा-केसीन में प्रोलीन और उसके दोनों तरफ मौजूद अमीनो एसिड के मध्य मजबूत रासायनिक जोड़ है जबकी ए1 बीटा-केसीन में हिस्टिडीन के सम्बंध में यह जोड़ कमजोर है। ए1 बीटा-केसीन वाले दूध के साथ चिंता का कारण यह है कि 67वें स्थान पर एमिनो एसिड प्रोलीन से हिस्टीडीन के बदलाव के कारण मानव शरीर में दूध की पाचन प्रक्रिया के दौरान पाचक एंजाइम हिस्टिडीन के निकट प्रोटीन के 7 अमीनो एसिड खण्ड को तत्काल काट देती है। जब उस स्थान पर प्रोलीन मौजूद होती है (जैसा कि यह ए2 बीटा- केसीन में है), यह खंड या तो पाचन प्रक्रिया में बिल्कुल अलग नहीं हो पाता या अलगाव बहुत कम दर पर होता है। ए1 बीटा केसीन से अलग होने वाले 7 अमीनो एसिड सेगमेंट को बीटा-कैमोमोर्फिन -7 (बीसीएम -7) के रूप में जाना जाता है। इस बारे में भी स्पष्ट सबूत हैं कि बीसीएम -7 केवल दूध से नहीं बल्कि दही और पनीर तथा किसी भी दूध उत्पाद से उत्पन्न होता है।

ए1/ए2 दूध का सेहत सम्बंधी पहलू

बीसीएम -7 कई कारणों से ए1 दूध में असली दोषी तत्व है। यह एक बहिर्जात (मानव शरीर के भीतर स्वाभाविक रूप से नहीं मिलने वाला) ऑपियोइड है जो मानव पाचन तंत्र, आंतरिक अंगों और मस्तिष्क के साथ संपर्क करता है। शोधों से संकेत मिलता है कि बीसीएम-7 कई शारिरीक क्रियाओं जैसे जठरांत्रिय गतिशीलता तथा उदर-संबंधी व अग्नाशय-संबंधी स्राव पर प्रभाव डालता है। यूरोपीय खाद्य सुरक्षा प्राधिकरण (2009) ने बीसीएम

-7 के संभावित स्वास्थ्य प्रभावों को रिपोर्ट किया। इस रिपोर्ट में वर्णन मिलता है कि बीसीएम -7 शरीर में जैविक गतिविधियों का उपयोग कर जठरांत्र गतिशीलता और गैस्ट्रिक और अग्राशयी स्राव पर नियामक प्रभाव करता है। हालांकि, इस रिपोर्ट में कहा गया कि बीसीएम -7 के आहार सेवन और उक्त लक्षणों के बीच एक कारण और प्रभाव का संबंध स्थापित नहीं किया जा सका है। ए1 बीटा-केसीन के प्रभाव की ओर इशारा करने वाले मूल साक्ष्य जानपदिक रोग विज्ञान आधारित अध्ययनों से मिलते हैं। सन 1999 में ऑकलैंड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बॉब इलियट ने देखा कि समोआ में पले-बढ़े समोअन बच्चों में टाइप1 डायबिटीज का न्यूनतम स्तर था, जबकि न्यूजीलैंड में समोअन जातीयता के बच्चों में इस रोग के प्रति संवेदनशीलता थी। उन्होंने जीवन शैली में अंतर को परखा और एक संभावना के रूप में गाय के दूध की पहचान की। इसके बाद डॉ मुरे लॉगेसेन के साथ काम करते हुए, उन्होंने सन 2003 में दिखाया कि विकसित देशों में टाइप 1 डायबिटीज प्रचलन के बीच के 80 प्रतिशत से अधिक अंतर को ए1 बीटा-केसीन के प्रति व्यक्ति के सेवन द्वारा समझा जा सकता है। कोरेन मेक्लचलन ने ए1 बीटा-केसीन के सेवन और हृदय रोग के बीच सहसंबंध दिखाया। यह संबंध सांख्यिकीय रूप से सार्थक है और इन देशों के मध्य अंतर के लिए कोई वैकल्पिक स्पष्टीकरण समय की कसौटी पर खड़ा नहीं हुआ है। प्रयोगशाला में कृत्रिम परिवेशीय तथा चूहों में परीक्षण से पता चलता है कि ए1 बीटा-केसीन विविध प्रकार की जठरांत्र संबंधी विकार तथा अन्य रोग-विषयक स्थितियों में योगदान दे सकता है। ऑस्ट्रेलिया में कर्टिन यूनिवर्सिटी से यूरोपीय क्लिनिकल न्यूट्रिशन जर्नल में प्रकाशित मानव नैदानिक परीक्षण में पाया गया कि ए1 और ए2 बीटा-केसीन युक्त दूध के बीच पाचन लक्षणों में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर हैं। अभी तक कि उपलब्ध जानकारी से संकेत मिलते हैं कि दूध में मौजूद बीटा केसीन का ए1 रूप मनुष्यों में कई रोगों जैसे कोरोनरी हृदय रोग, टाइप 1 मधुमेह के लिये एक संभावित जोखिम कारक हो सकता है। वर्तमान में ए1/ए2 दूध के मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव को लेकर भारत में शोध जारी है और इस विषय पर अंतिम निर्णय आना अभी शेष है।

पालतू पशुओं में ए1/ए2 जीन की वस्तु-स्थिति

गाय के अतिरिक्त अन्य पालतू पशु जैसे भैंस, बकरी, भेड़ और ऊंट में केवल ए2 जीन होता है इसलिए इन जानवरों का दूध केवल ए2ए2 प्रकार का ही होता है। गाय की देशी और संकर नस्लों में राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल, पशु आनुवंशिकी विभाग, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर व देश के अन्य संस्थानों में भी ए1/ए2 की वस्तु-स्थिति पर व्यापक शोध जारी है। इन शोधों में विभिन्न देशी नस्लों में 80 से 100 प्रतिशत तक की ए2 जीन आवृत्ति मिली। भारत में विकसित संकर गायों में विभिन्न शोधों में 54 से 71 प्रतिशत तक की ए2 जीन आवृत्ति मिली। विदेशी गायों की नस्लों में ए1/ए2 की वस्तु-स्थिति पर नजर डालें तो उत्तरी यूरोपीय काली और सफेद नस्ल जैसे होलस्टीन फ्रिजियन में आम तौर पर बराबर अनुपात में ए1 और ए2 एलील होते हैं। जर्सी गायों और अन्य दक्षिणी यूरोपीय नस्लों के बारे में सम्भवतः 1/3 ए1 और 2/3 ए2 आनुवंशिकी का अनुमान है जबकि ग्वेर्नसी गायों में आमतौर पर लगभग 10 प्रतिशत ए1 और 90 प्रतिशत ए2 पाया जाता है।

फायदे का सौदा है ए2 दूध व्यवसाय

देशी नस्लों के महत्व को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने इनके संरक्षण और उत्पादकता में विकास के उद्देश्य से महत्वाकांक्षी योजनाएं जैसे राष्ट्रीय गोकुल मिशन और गौवंशीय उत्पादकता पर राष्ट्रीय मिशन की शुरुआत की है। डीएडीएफ ने 2023-24 तक 300 मिलियन टन दूध उत्पादन का राष्ट्रीय लक्ष्य रखा है। साथ ही इस अवधि के दौरान 40.77 मिलियन प्रजननशील गैर-नस्लीय गायों की दूध उत्पादकता में प्रतिदिन 2.15 किग्रा. से प्रतिदिन 5.00 किग्रा. की वृद्धि का लक्ष्य भी रखा गया है। विश्व में उच्चतम दूध उत्पादन को प्राप्त करने के बावजूद, हमारे देश में डेरी किसानों की आय बहुत कम है। ए2 दूध देने वाली गाय विश्व में सबसे अधिक भारतवर्ष में पायी जाती हैं। आज यदि भारतवर्ष का डेरी उद्योग हमारी देशी गाय के ए2 दूध का महत्व समझ ले तो यह संभव है कि एक दिन भारत सम्पूर्ण विश्व में ए2 दूध का सबसे बड़ा निर्यातक देश बन जायेगा।

बकरी का दूध: एक पौष्टिक एवं औषधीय अमृत

मोहित अंतिल[1], भुवनेश्वर राय[2], चेतना गंगवार[2], रविन्दर कुमार[2] एवं बुरहानुद्दीन शफ़ी[1]

[1]भाकृअनुप-भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली - 243122 (उत्तर प्रदेश)

[2]भाकृअनुप-केंद्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, फरह, मथुरा - 281122 (उत्तर प्रदेश)

बकरी पालन प्रारम्भिक पौराणिक समय से ही पशुपालन का एक अभिन्न अंग रहा है। कृषक समाज मुख्यतः भूमिहीन कृषि श्रमिक, छोटे सीमांत किसान तथा सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों में बकरी पालन की लोकप्रियता अत्यधिक है। बहुउद्देशीय उपयोगिता एवं सरल प्रबंधन कृषक वर्ग के बकरी पालन की ओर बढ़ते रुझान के प्रमुख कारण हैं। भारत में बकरियों की संख्या 1351.7 लाख है, जिसमें से अधिकांश आबादी (95.5%) ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है और केवल अल्प भाग (4.5%) ही शहरी क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत वर्ष में होने वाले कुल दुग्ध और मांस उत्पादन में बकरी का उत्कृष्ट योगदान है। बकरी का दूध और मांस भारत में उत्पादित कुल दुग्ध और मांस का क्रमशः 4% (46.7 लाख टन) और 13% (9.4 लाख टन) है। ये आंकड़े स्पष्ट रूप से भारतीय समाज में बकरी पालन के व्यवसाय के महत्व को प्रमाणित करते हैं।

भारत में बकरी का दूध मुख्य रूप से घरेलू उपभोग के लिए एक चिर-परिचित घटक है। मानव जनसंख्या में वृद्धि एवं बकरी के दूध के सेवन से होने वाले लाभों के फलस्वरूप इसकी मांग के स्तर में निरंतर वृद्धि आई है। एक ओर जहाँ बकरी के दूध का प्रयोग परंपरागत चिकित्सा पद्धति में औषधि के रूप में होता है, वहीं दूसरी ओर आज के युग में मनुष्य शरीर में बढ़ते जठरान्त्र रोग और गाय के दूध से प्रत्यूर्जता भी बकरी के दूध की आवश्यकता में परस्पर रूप से विस्तार के प्रमुख कारक हैं। बकरी का दूध मनुष्य तथा गाय के दूध की तुलना में अधिक सुपाच्य, क्षारीय, प्रतिरोधक क्षमता और औषधीय गुण युक्त होता है।

बकरी के दूध की संरचना

बकरी का दूध, गाय और मनुष्य के दूध से संरचनात्मक रूप से भिन्न होता है (तालिका-1)। आहार, नस्ल, प्रबंधन, पर्यावरण की स्थिति, ब्यांत, ऋतु, दुग्ध उत्पादन का चरण एवं स्वास्थ्य अवस्था दुग्ध संरचना में परिवर्तन के कुछ प्रमुख स्रोत हैं। बकरी के दूध में गाय के दूध की तुलना में कुछ विशेष गुण, जैसेकि वसा गोलकों का न्यून आकार एवं अल्फा1-केसीन की कम मात्रा होने के कारण इसके उत्पादों की सरंचना में अतिरिक्त जल प्रतिबंधन क्षमता, मुलायम, नरम एवं कम गाढ़ापन होता है। स्वाद में गाय के दूध से अधिक तीक्ष्णता उपभोक्ताओं में बकरी के दूध की स्वीकृति को घटाने का कारक है। बकरी के दूध में केसीन माइसल्स की आधारभूत बनावट, संरचना एवं आकार, गैर प्रोटीन नाइट्रोजन, खनिज यौगिकों की अधिक मात्राओं तथा प्रोटीन के अंशों के अनुपात में मौलिक भिन्नताएँ पाई गई हैं। बकरी के दूध की बुनियादी पोषक संरचना गाय के दूध से मेल खाती है क्योंकि दोनों में प्रोटीन और भस्म अधिक मात्रा में मिलती है, वहीं दोनों में ही लेक्टोज़ की मात्रा मनुष्य के दूध की अपेक्षाकृत कम है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली बकरियों के दूध में उनके समकक्ष पाई जाने वाली गायों की तुलना में अधिक वसा एवं भस्म की मात्रा पायी जाती है।

बकरी के दूध की रासायनिक संरचना पर ऋतुओं का भी गहन प्रभाव है। प्रारम्भिक दुग्ध स्रवण की अवस्था के दौरान बकरी के दूध में सभी मुख्य घटक अधिक मात्रा में मिलते हैं, जिनमें समय बढ़ने के साथ तीव्रता से गिरावट आती है और अंतिम चरण में पुनः वृद्धि होती है। हालांकि लैक्टोज़ की मात्रा दुग्ध स्रवण की अवस्था के प्रभाव से मुक्त होती है।

गाय के दूध की भांति बकरी के दूध में भी अल्फा एस1, अल्फा एस2, बीटा एवं कप्पा केसीन पाए जाते हैं परंतु इनका अनुपात दोनों में भिन्न होता है (तालिका-2)। शोधानुसार बकरी के दूध के केसीन में मुख्यतः बीटा केसीन की मात्रा सर्वाधिक होती है, वहीं गाय के दूध में अल्फा एस1 अधिक होता है। इन भिन्नताओं के फलस्वरूप ही बकरी का दूध नरम दही उत्पादन के लिए उपयुक्त,

अधिक पाच्य एवं न्यूनतम प्रत्यूर्जक है। वसा एवं लिपिड बकरी के दुग्ध का सबसे उपेक्षित भाग है। बकरी दुग्ध वसा एवं गाय के दुग्ध की वसा में उल्लेखनीय अंतर है क्योंकि इसमें जहां एक ओर ब्यूटायरिक (सी 4:0), केप्रोइक(सी 6:0), केप्रिलिक (सी 8:0), केपरिक (सी 10:0), लोरिक (सी 12:0), माईरिसटिक (सी 14:0), पाल्मिटिक (सी 16:0) एवं लिनोलीक(सी 18:2) अम्ल की विपुल मात्रा होती है, वहीं दूसरी ओर स्टियरिक एवं ओलीक अम्ल अल्पतर मात्रा में होते हैं।

तालिका 1: विभिन्न प्रजाति के दूध की मूल संरचना (प्रति 100 ग्रा.)

घटक	बकरी	गाय	मनुष्य
कुल ठोस तत्व (ग्रा.)	12.2	12.3	12.3
वसा (%)	4.0-4.5	3.8	4.1
प्रोटीन (%)	3.2	3.3	1.3
लेक्टोज़ (%)	4.6	4.7	7.2
भस्म (%)	0.8	0.7	0.2
पानी (%)	87.5	87.7	86.7
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	70	69	68
सोडियम (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	34	50	14
पोटैसियम (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	180	150	58
केल्सियम (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	129	120	34
मैगनीसियम (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	20	12	3
फॉसफोरस (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	106	95	14
आयरन (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.04-0.1	0.05	0.07
क्लोरीन (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	130	95	42
विटामिन ए (आइ यू /100 ग्रा.)	185	126	241
थायमीन (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.05	0.04	0.014
राइबोफ्लेविन (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.14	0.16	0.04
पैंटोथीनिक अम्ल (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.31	0.314	-
नियासिन (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.28	0.08	0.18
विटामिन बी (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.05	0.04	0.01
फॉलिक अम्ल (मि.ग्रा./लीटर)	6	50	56
विटामिन बी12 (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.05	0.14	0.14
बायोटिन (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	2	2	0.70
विटामिन सी (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	1.5	1.5	1
विटामिन डी (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	0.06	0.03	0.025

तालिका 2: बकरी और गाय के दूध के प्रोटीन की तुलना

प्रोटीन	सघनता (%)	
	बकरी का दूध	गाय का दूध
कुल केसीन	2.33-4.63	2.4-2.8
अल्फा एस1 केसीन	0-28	50-53.6
अल्फा एस2 केसीन	10-25	12.5-14.3
बीटा केसीन	6-64	37.5-39.3
काप्पा केसीन	15-29	8.3-14.3
व्हे प्रोटीन	0.37-0.70	0.5-0.7
बीटा-लेक्टोग्लोबुलिन	39.2-72.1	40-57.1
अल्फा-लेक्टअलबुमीन	17.8-33.3	12-24.3
सीरम लेक्टोफेर्रिन अलबुमीन/	5.1-21.5	4-5.71
इम्मुनोग्लोबुलिन	4.6-21.4	10-25.7

बकरी के दूध के पौष्टिक एवं औषधीय गुण

सुपाचकता: बकरी के दूध की सुपाच्यता का गुण मुख्यतः केसीन में छिपा है। वसा गोलकों का लघु आकार, बेहतर फैलाव एवं बहुल सतही क्षेत्र भी पाच्यता में वृद्धि का कारण है। इस कारणवश मनुष्य के पाचनतंत्र के लिए बकरी का दूध गाय के दूध की तुलना में अधिक उपयोगी है। लघु एवं मध्यम वसायुक्त अम्लों की उच्च अनुपात में उपस्थिति भी बकरी के दूध के पाचन की सरलता तथा तीव्रता को बढ़ाने में सहायक है। बकरी के दूध मे पाए जाने वाले लघु एवं मध्यम वसायुक्त अम्लों से निर्मित ट्राइअसाइल्गिलसेरोल कणों को माइसल्स गठन के बिना ही पोर्टल शिरा में अवशोषित कर लिया जाता है। अल्फा एस1 केसीन और एग्लुटिनिन की निम्नतर मात्रा भी बकरी के दूध की पाच्यता की वृद्धि में सहायता करती है क्योंकि अल्फा एस1 केसीन और एग्लुटिनिन दूध के पाचन में विलंब उत्पन्न करने के लिए जाने जाते हैं।

बकरी से दूध निकालना

बरबरी बकरियाँ

रोगाणुरोधी गुण: बकरी के दूध में व्यापक रूप से पाया जाने वाला लेक्टोपरऑक्सिडेज़ प्रोटीन अनेक घातक व्याधियों जैसे हैज़ा (विब्रिओ कॉलेरी), आंत्र ज्वर (सलमोनेला टाइफी), निमोनिया (क्लेबसिएला नुमोनी), पेचिश (शिगेला डाइसेंटेरी) इत्यादि रोगाणुओं से लड़ने की क्षमता बढ़ाता है।

कुअवशोषण विकार अवरोधी गुण: कुअवशोषण विकार वह असामान्य स्थिति है जिसमें जठरान्त्र भोजन में पाए जाने वाले पोषक तत्वों को अवशोषित करने मे असमर्थ हो जाता है। इस विकार के फलस्वरूप मानव शरीर में पोषक तत्वों की कमी रक्ताल्पता जैसी व्याधियों को जन्म देती है। बकरी के दूध में मिलने वाले पोषक तत्वों जैसे कैल्सियम, आयरन, मैग्नीसियम, फॉसफोरस, जिंक एवं सेलीनियम का अवशोषण गाय के दूध के पोषक तत्वों की तुलना में अधिक है। इसका मुख्य कारण बकरी के दूध में पाए जाने वाले प्रोटीन, विटामिन ए और विटामिन डी की अधिक मात्रा को बताया गया है।

हृदय एवं रक्तवाहिकाओं संबंधी रोग-अवरोधी गुण: भारत में हृदय संबंधी रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या बढ़ोत्तरी की ओर अग्रसर है। इन व्याधियों का मुख्य कारण रक्त वाहिकाओं में अथेरोस्क्लेरोटिक पट्टिका का जमना है। आजकल प्रचलित जीवन शैली जैसे धूम्रपान, असंतुलित आहार एवं व्यायाम की कमी अथेरोस्क्लेरोसिस के खतरे को बढ़ाने का काम करती है। बकरी के दूध में पाए जाने वाले केप्रोइक, केप्रिलिक तथा केपरिक वसायुक्त अम्लों से निर्मित मध्यम श्रंखला ट्राइग्लिसेराइड, कम घनत्व वाले लाइपोप्रोटीन के ऑक्सीकरण को अवरोधित करते हैं। इससे रक्त में कोलेस्टेरोल के स्तर में गिरावट और हृदय के स्वास्थ्य में सुधार होता है।

दूध से प्रत्यूर्जता का निवारण: अल्फा एस1 केसीन एवं बीटा लेक्टोग्लोब्यूलिन गाय के दूध में पाए जाने वाले मुख्य प्रत्यूर्जक तत्व हैं। बकरी के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा इन तत्वों का स्तर कम पाया जाता है जिससे इसकी प्रत्यूर्जता में भारी गिरावट आती है।

लेक्टोज़ असहिष्णुता का उपशमन: मनुष्य, गाय एवं बकरी सभी के दूध में लेक्टोज़ उपस्थित होता है परंतु फिर भी लेक्टोज़ असहिष्णु व्यक्ति भी बकरी के दूध का सेवन कर सकता है। इसका संभव कारण बकरी के दूध की पाच्य श्रेष्ठता में छिपा है। बकरी के दूध के पोषक तत्व पूर्णतः अवशोषित हो जाते हैं जिससे अपाच्य अवशेष बृहदांत्र तक पहुँचने तथा किण्वन क्रिया में भाग लेने में अक्षम हो जाते हैं।

प्रतिरक्षा न्यूनाधिक गुण: बकरी का दूध प्रतिरक्षा बढ़ाने में सहायक है। बकरी के दूध के सेवन से रक्त कोशिकाओं से नाईट्रिक ऑक्साइड तथा साइटोकाइन जैसे IL-10, TNF-अल्फा एवं IL-6 का स्त्राव बढ़ जाता है। उपरोक्त कारक मानव शरीर में रोग प्रतिरक्षण क्षमता बढ़ाने का कार्य करते हैं। इन्हीं कारणों से कई असाध्य रोगों जैसे डेंगू में बकरी के दूध के सेवन की सलाह दी जाती है।

कर्क रोग प्रतिरोधी गुण: बकरी के दूध में संयुग्मित लिनोलीक अम्ल उच्च मात्रा में पाया जाता है। शोधकर्ताओं ने पाया है कि इस अम्ल में कर्क रोग प्रतिरोधी क्षमताएँ होती हैं। मनुष्यों में स्तन, बृहदांत्र कैंसर जैसी व्याधिओं से बचाव के लिए बकरी के दूध के सेवन की अनुशंसा की गई है।

बकरियों में प्रजनन सम्बन्धी देख-रेख

अनुज कुमार सिंह सिकरवार

भाकृअनुप-केन्द्रीय बकरी अनुसन्धान संस्थान, फरह, मथुरा - 281122 (उत्तर प्रदेश)

हमारे देश में सदियों से ग्रामीणों के लिए कृषि के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के पशुओं का पालन जीविका का साधन रहा है, पर वर्तमान में लगातार घटती कृषि-योग्य भूमि और बढ़ती आबादी के कारण गाँवों में केवल कृषि के माध्यम से जीवनयापन संभव नहीं रहा है। गाँवों में किसानों की न सिर्फ जोतो का आकार कम हो रहा है, बल्कि पारिवारिक बँटवारे के चलते आवास और पशुओं के रहने की जगह भी पहले जैसी नहीं रही। इसके साथ ही अब गाँवों में पहले जैसे चरागाह और दूसरी जगहें भी नहीं बची है। ऐसे में कृषकों के लिए बड़े पशुओं को पालना असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य हो गया है। इन परिस्थितियों के चलते यह अधिक लाभदायक व्यवसाय भी नहीं बचा है। लेकिन हमारे देश के विभिन्न भागों की पृथक-पृथक जलवायु में बकरी जैसा छोटे आकार का पशु आसानी से पाला जा सकता है, जिसके पालन में न तो किसी विशेष प्रकार के भोजन (कई तरह की चारे की फसलों, झाड़ियों और वृक्षों की पत्तियाँ, कई तरह की घासें, दाना) आदि की आवश्यकता होती है और न ही किसी खास किस्म के बड़े आवास की। यहाँ तक कि न ही किसी विशेष जलवायु की आवश्यकता होती है। बकरी पालन महिलाओं और बच्चों की सहायता से आसानी से किया जा सकता है। इसलिए बकरी पालन की लोकप्रियता और इसका व्यावसायीकरण देशभर में निरन्तर बढ़ रहा है। यही कारण है कि दुग्ध व्यावसायियों के साथ-साथ औद्योगिक घराने के लोग भी बकरी पालन का प्रशिक्षण लेने में रुचि ले रहे हैं। कुछ लोग बड़े स्तर पर बकरी फार्मों का संचालन सफलतापूर्वक कर भी रहे हैं।

वैसे कृषि के साथ सहायक व्यवसाय के रूप में पशुपालन यथा- गाय, भैंस, बकरी, भेड़, मत्स्य, मुर्गी, मधुमक्खी, आदि पाले जा सकते हैं, किन्तु बकरी पालन एक ऐसा व्यवसाय है जिसे बहुत कम पूँजी और कम जगह में भी आसानी से किया जा सकता है। बकरी पालन का कार्य देश में सीमान्त और भूमिहीन कृषकों द्वारा दूध तथा मांस के लिए किया जाता है। इसके अलावा बकरी की खाल, बाल, रेशे, मेंगनी एवं मूत्र जो बिछावन पर इकट्ठे किये

जाते हैं उसका खेती में खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। वर्तमान में बकरी पालन करने में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा 25 से 33.3 प्रतिशत तक का अनुदान दिये जाने का प्रावधान किया गया है। बकरी पालन को सही प्रशिक्षण और दिशा-निर्देश द्वारा फायदेमन्द व्यवसाय बनाया जा सकता है। इस समय देश की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में बकरी जैसा लघु आकार का पशु बहुत अधिक योगदान कर रहा है। पिछले 2-3 दशकों से बकरियों की मांस के लिए काटे जाने (वध) की ऊँची सालाना दर के रहते हुए भी विकासशील देशों में बकरियों की संख्या लगातार बढ़ रही है। यह बकरियों के सामाजिक-आर्थिक महत्व को दिखाता है। बकरियों के विकास में प्राकृतिक रूप से अधोलिखित कारक सहायक सिद्ध हो रहे हैं जो इस प्रकार हैं:

बकरी पालन की विशेषताएँ

- बकरी आकार में छोटी और स्वभाव में शान्त प्रकृति की होती है।
- इनको रखने के लिए कम जगह की आवश्यकता होती है।
- ये हर प्रकार के जलवायु में रह सकती है।
- किसी भी अन्य पशु की तुलना में दाना-पानी कम खाती है।
- बकरी हर प्रकार के पेड़-पौधे और झाड़ियों को खा सकती है।
- बकरी मेमनें जनने के लिए जल्दी तैयार हो जाती है।
- बकरी पालने में कोई भी सामाजिक या धार्मिक बाधा नहीं है।
- बाजार में बकरी के मांस की माँग लगातार बढ़ रही है।
- इस व्यवसाय को करने में जोखिम काफी कम है।
- विपणन(मार्केटिंग)में कोई कठिनाई नहीं आती।
- बकरी पालन व्यवसाय शुरू करने के लिए कम पूँजी की आवश्यकता होती है।
- कोई भी बेरोजगार युवक या किसान इस व्यवसाय को शुरू कर सकता है।
- बैंकों से ऋण भी आसानी से मिल जाता है।

बकरी में तरह-तरह की जलवायु में सामंजस्य बैठाने (ढ़लने) की विशेष क्षमता है। इस कारण बकरियाँ अपने देश के अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में आसानी से पाली जा रही हैं। बकरी की कई नस्लों में एक से ज्यादा मेमने पैदा करने की क्षमता है। बकरी ब्याने (बच्चा जनने) के पश्चात् दूसरे पशु प्रजातियों की अपेक्षा पुनः प्रजनन के लिए शीघ्र तैयार हो जाती है। गाय या सूअर मांस के विपरीत बकरी का मांस सर्वग्राही है यानी इसे सभी धर्मों के अनुयायी खाते हैं। इसका प्रमाण बकरी के दूध और मांस से बने उत्पादों की बढ़ती माँग और शीघ्र विपणन है। बकरियों की सबसे बड़ी विशेषता मनुष्यों और पशुओं के लिए गैर उपयोगी/कम/गौण पदार्थों को बहुत उपयोगी पदार्थ (दूध और मांस) और दूसरे उत्पाद/उपउत्पाद (रेशा, बाल, खाल, खाद) में बदलने का सामर्थ्य एवं क्षमता है। इसके दूध में औषधीय गुण होते हैं, क्योंकि ये विभिन्न प्रकार की घास, झाड़ियाँ (बेरी, झरबेरी, करील, बबूल, हींस), वृक्षों की पत्तियाँ (बरगद, पीपल, पाकर, गूलर, शहतूत, कटहल, जामुन, नीम, कचनार, अरूसा, महुआ आदि) और पेड़ों की पकी सूखी फलियाँ (देसी बबूल, सुबबूल, सिरस) खाती हैं, जिनमें कुछ झाड़ियाँ और वृक्ष औषधीय भी होते हैं। बकरी पालन को आर्थिक रूप से फायदेमन्द यानी स्वालम्बी इकाई बनाने हेतु 95 बकरी तथा 5 बकरे पालना फायदेमंद रहता है। औसत रूप से एक बकरी के लिए एक वर्ग मीटर ढ़का हुआ क्षेत्र चाहिए एवं 1.5 वर्गमीटर खुले क्षेत्र की आवश्यकता होती है।

बकरियों में प्रजनन

किसी भी प्रकार के पशुपालन व्यवसाय की सफलता में उसके प्रजनन (जननचक्र) का विशेष महत्व होता है, जो जनन चक्र की नियमितता और निरन्तरता पर निर्भर करता है। जनन चक्र को अपनाकर पशु की जनन क्षमता में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। सही जनन चक्र के माध्यम से उस पशु के बच्चों की संख्या तथा कुल दूध की मात्रा निर्धारित होती है।

बकरी लगभग डेढ़ वर्ष की अवस्था में मेमने उत्पन्न करने योग्य हो जाती है तथा पांच महीने में मेमने पैदा करती है। इनके प्रजनन का सर्वाधिक उपयुक्त काल मई के दूसरे सप्ताह से लेकर जुलाई तक होता है। ये बकरियाँ अक्टूबर के दूसरे सप्ताह से लेकर दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक मेमने पैदा करती हैं। इसी प्रकार नवम्बर और दिसम्बर का मौसम प्रजनन हेतु अनुकूल/उपयुक्त है। इस मौसम

में गर्भ धारण करने वाली बकरियाँ, मार्च-अप्रैल तक मेमनों को जन्म देती हैं।

बकरी पालन की सफलता उत्तम प्रजनन पर निर्भर करती है, इसे सफलता की कूँजी कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। हर नस्ल की बकरी एक निश्चित आयु और शारीरिक वजन (लैंगिग परिपक्वता) प्राप्त करने के पश्चात् ही गर्भाधान के योग्य होती है। दूसरी पशु प्रजातियों की तरह ही बकरियों की प्रजनन क्षमता आयु बढ़ने के साथ बढ़ती है। यहाँ 2 से 5 वर्ष की आयु अधिकतम होती है। बकरियों में प्रजनन क्षमता सात वर्ष की आयु तक बनी रहती है। तदोपरान्त धीरे- धीरे यह कम होने लगती है। बकरी 10 वर्ष की आयु तक मेमने पैदा करने में सक्षम होती है, किन्तु अधिकांश बकरीपालक इन्हें 7 से 8 वर्ष की आयु के बाद अपने रेवड़ से बाहर कर देते हैं। नर बकरे 2 से 6 वर्ष की अवस्था तक गर्भाधान करने योग्य बने रहते हैं। दूध देने वाली बकरी की प्रजातियों में प्रति ब्यांत मेमने देने की दर मांस के लिए पाली जाने वाली बकरियों की अपेक्षा कम होती है।

मदकाल

भारतीय प्रजाति की बकरियाँ करीब पूरे साल ही ऋतु (गर्मी) में आती रहती हैं। यद्यपि इसकी आवृत्ति घटती-बढ़ती रहती है, तथापि रेवड़ की स्वस्थ बकरियाँ गर्भ न ठहरने पर 17 से 21 दिन के अन्तराल पर नियमित ऋतुचक्र (मदचक्र) में आती रहती हैं। इसके कारण प्रजनन प्रक्रिया सालभर चलती रहती है। यह प्रभावी पशु प्रबन्धन एवं आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक नहीं है। बकरी पालन में प्रजनन को इस प्रकार समायोजित करें कि नवजात मेमनों के स्वास्थ्य के लिए मौसम अनुकूल रहे। इसके साथ ही चारा संसाधनों की प्रचुर उपलब्धता बनी रहे, जिससे आगे चलकर विक्रय के लिए बाजार माँग की पूर्ति होती रहे। बकरियाँ 24 से 28 घण्टे तक मदकाल (गर्मी) में रहती हैं। इसी सीमित अवधि में बकरे को समागम का अवसर देती हैं। इस दौरान गर्भाधान नैसर्गिक या कृत्रिम ढंग से कराने पर वह गर्भित हो जाती हैं। मदकाल में आई बकरियों का पता करने के लिए बकरी पालक 50 से 60 बकरियों के समूह में एक टीजर बकरा सुबह और शाम आधा-आधा घण्टा उनके आसपास घुमाते हैं। मदकाल में आईं बकरियों में अधोलिखित लक्षण दिखायी देते हैं: अधिक उत्तेजना, दाना-पानी कम खाना और मिमयाना, थोड़े-थोड़े अन्तराल से बार-बार पेशाब करना या तेजी से पूंछ हिलाना, झुण्ड की दूसरी बकरियों पर चढ़ना और अन्य बकरियों को अपने ऊपर चढ़ने देना, योनि में सूजन और योनि मार्ग से थोड़ी माला में पारदर्शी द्रव का गिरना, जो कभी-कभी पूंछ पर लगा भी देखा जा सकता है। प्रजनन के 15 से 20 दिन पहले से यदि बकरियों को दाने की माला 250 से 500 ग्रा. प्रतिदिन के हिसाब से बढ़ा दी जाए, तो इसके प्रजनन और गर्भधारण की दर पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामतः प्रति ब्यांत अधिक मेमनें पैदा होते हैं। ऋतु में आई हर बकरी को ऋतु (गर्मी) के लक्षण प्रकट करने के लिए 10 से 12 घण्टे पश्चात् उत्तम प्रजाति के बीजू बकरे से या कृत्रिम गर्भाधान विधि से गर्भित कराएँ। यदि बकरी 24 घण्टे बाद भी गर्मी में रहती है तो उसे फिर से 10 से 12 घण्टे के अन्तराल से उसी बकरे से गाभिन कराएँ। इस तरह से एक वर्ष में दो-चार बकरियों को गाभिन कराने पर लगभग 60 से 70 प्रतिशत बकरियाँ मेमने देती हैं।

बकरियों में प्रसव

प्रसव पीड़ा शुरू में हल्की और बाद में तीव्र होने लगती है। यह सभी लक्षण इस बात का संकेत हैं कि बकरी शीघ्र ब्याने वाली है। सामान्यतः प्रसव वेदना प्रारम्भ होने के 3 से 4 घंटे में बकरी मेमने को जन्म दे देती है। पहली बार ब्याने पर कुछ अधिक समय लेती है। मेमना निकलने से पहले एक झिल्लीनुमा चमकीला गुब्बारा निकलता है। अधिकतर बकरियाँ लेट कर मेमना देती हैं।

सामयिक गर्भ निदान

गाभिन बकरियों के गर्भ की जाँच जनन चक्र का दूसरा चरण है। इसकी उचित समय पर पुष्टि प्रभावी प्रक्षेल प्रबन्ध तथा लाभकारी बकरी पालन की दृष्टि से आवश्यक है। बकरी के गर्भाधान के 18-21 दिन के बाद गर्मी में न आने के दूसरे कारण भी हो सकते हैं। गर्भ निदान के बिना बकरियों को गर्भावस्था में उचित तथा पौष्टिक आहार नहीं मिल पाता है जो गर्भपात की आशंका को बढ़ा देता है तथा कमजोर मेमनें उत्पन्न होते हैं। इसके साथ ही साथ खाली (गैर

गर्भित) बकरियों के रखरखाव पर अनावश्यक खर्चा करना पड़ता है तथा समय रहते फिर से गर्भाधान न कराने से बकरी पालन से अपेक्षित लाभ नहीं मिलता है। एक स्वस्थ रेवड़ में गर्भधारण की दर 75 से 78 प्रतिशत होती है। बकरियों में गर्भनिदान के अनेक तरीके है, परन्तु उसमें कुछ ही व्यावहारिक तथा उपयुक्त है जिन्हें बकरी पालक आसानी से अपना सकते हैं। बकरी का गर्भाधान के बाद तीन सप्ताह बाद फिर मद (गर्मी) के लक्षण प्रकट न करना, गर्भधारण पता करने का एक तरीका है जिसे अधिकतर बकरी पालक अपनाते हैं। इसके साथ-साथ गर्भ की सही जाँच गर्भाधान के 80 से 90 दिन बाद पेट का उभार देखकर (उदर विधि) पशु चिकित्सक द्वारा करा लेनी चाहिए।

गर्भकाल में प्रसव क्रिया

गर्भावस्था और उसके बाद प्रसव जनन का तीसरा चरण है। गर्भावस्था में की गई देखभाल और पोषण आगे आने वाली संतति के भविष्य का निर्धारण करते हैं। गर्भकाल का समय ऐसा होता है जब बकरी को अपने शरीर के साथ-साथ गर्भ में पल रहे मेमनों का भी पोषण करना पड़ता है। गाभिन बकरी को गर्भावस्था के अन्तिम 45 दिनों में उचित आहार देना आवश्यक है। इस अवधि में बकरी का दूध नहीं दुहना चाहिए, जिससे गर्भ में पल रहे बच्चे को उचित पोषण मिलता रहे। प्रत्येक गाभिन बकरी को प्रतिदिन 150-250 ग्रा. दाना मिश्रण देना आवश्यक है। पर्याप्त हरा चारा न मिलने पर विटामिन ए भी देना चाहिए, क्योंकि ऊर्जा और विटामिन ए की कमी से गर्भपात की संभावना बढ़ जाती है। बकरियों में प्रसव का समय अन्य पशु प्रजातियों के समान महत्त्वपूर्ण है। रेवड़ में जहाँ बकरियों को नैसर्गिक विधि से गर्भाधान कराया जाता है उनमें प्रसव क्रिया का ज्ञान और भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि इससे प्रसव की तिथि की निश्चित गणना संभव नहीं है। बकरियों से सन्निकट प्रसव के लक्षण स्पष्ट न होने के कारण गर्भावस्था के अन्तिम पखवाड़े में ज्यादा स्थान की आवश्यकता होती है। इस समय उन्हें हल्का सुपाच्य दाना-चारा दिया जाए। उनके शरीर के पिछले भाग विशेषकर बाह्य जननांगों के आसपास के अनावश्यक बालों को काट दें। ब्याने से एक सप्ताह पूर्व उन्हें ऊँचे-नीचे स्थानों पर न चराएँ। ब्याने की संभावित तिथि से एक पखवाड़े पूर्व अग्रलिखित तैयारियां कर लेनी चाहिए। ब्याने के लिए काम में आने वाले बाड़े (4' x 4') को अच्छी तरह से साफ करके सूखने दें। इसमें एक सप्ताह बाद चूना डालकर सूखी घास या पुआल का बिछौना दें।

ब्याने वाली प्रत्येक बकरी को रखने के लिए 21" x 21" x 21" आकार का लकड़ी का बक्सा रखें। इसमें भी सूखी घास या जूट के बोरे का बिछौना बनाएं। बकरी पालकों को चाहिए कि वह ब्याने वाली बकरियों को सुबह-शाम अवश्य देखें, जिससे ब्याने के समय का आसानी से पूर्वानुमान हो सके। बकरी के जैसे-जैसे ब्याने का समय निकट आता जाता है, उसमें अनेक परिवर्तन दिखायी देने लगते हैं। यथा-ब्याने वाली बकरी की बेचैनी बढ़ जाती है, बकरी के अयन के आकार में बढ़ोत्तरी हो जाती है, थनों में चमक तथा फूलापन दृष्टिगोचर होने लगता है, पहली बार ब्याने वाली अधिकांश बकरियों के थनों में दूध आता है, बकरी के योनि मार्ग से पीले रंग का लसलसा और गाढ़ा स्त्राव निकलना आरम्भ हो जाता है, बकरी रेवड़ में एकान्त स्थान पर उठती-बैठती है तथा बकरी ब्याने के कुछ घण्टे पूर्व बार-बार उठती-बैठती तथा अनमनी हो जाती है।

बकरियों की उत्पादन क्षमता बनाए रखने के लिए जनन चक्र की निरन्तरता आवश्यक है, जिससे प्रसव के बाद बकरियों को शीघ्र ऋतुमयी होने से उन्हें पुनः प्रजनित किया जा सके। इस प्रक्रिया को अपनाने से दो ब्यांतों के मध्य अन्तराल (ब्यांत अन्तराल) में कमी आती है और क्षमता में वृद्धि होती है।

प्रसव का समय निकट आने पर बकरी के उदर वाले भाग में प्रसव वेदना शुरू हो जाती है। प्रसव पीड़ा आरम्भ में हल्की और बाद में तीव्र होने लगती है। ये सभी लक्षण इस बात का संकेत हैं कि बकरी के ब्याने का समय आ गया है। सामान्यतः प्रसव वेदना आरम्भ होने के 3 से 4 घण्टे में बकरी बच्चे को जन्म दे देती है। पहली बार ब्याने वाली बकरी कुछ अधिक समय लेती है। प्रसव के दौरान बकरी से छेड़-छाड़ नहीं करनी चाहिए। बकरी को स्वाभाविक रूप से मेमना जनने दिया जाए। सामान्य प्रसव में मेमने के दोनों पैर और सिर योनि मार्ग से पहले बाहर आते हैं। इसके बाद शरीर का शेष भाग बाहर आ जाता है। सामान्यतः बकरी का जेर ब्याने के 3 से 6 घण्टे के अन्दर निकल आता है। प्रसव क्रिया यदि सामान्य न हो तो पशुचिकित्सक की सहायता लें।

प्रसवोपरान्त प्रजनन

सफल एक जनन चक्र प्रजनन से प्रारम्भ होकर सामान्य प्रसव के साथ पूर्ण हो जाता है। बकरियों की उत्पादन क्षमता बनाए रखने के लिए जनन चक्र में निरन्तरता आवश्यक है, जिससे प्रसव पश्चात् बकरियों को जल्दी ऋतुमयी होने से उन्हें पुनः प्रजनित किया जा सके। इस प्रक्रिया को अपनाने से दो ब्याँतों के बीच अन्तराल (ब्याँत अन्तराल) में कमी आती है तथा क्षमता में वृद्धि होती है। जनन चक्र की पुनरावृति के लिए बकरी पालक अपने रेवड़ में नस्ल के अनुसार पुनः गर्भाधान करा कर बकरी की उत्पादन क्षमता का दोहन कर सकते हैं। बकरी 10 वर्ष की आयु तक बच्चे देने में सक्षम है, परन्तु उम्र बढ़ने के साथ इनकी जनन क्षमता में कमी आने से अधिकांश बकरी पालक इन्हें 7 से 8 वर्ष की उम्र में रेवड़ से अलग कर देते हैं।

बकरी पालन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वे स्वस्थ तथा निरोगी रहें। यदि वे अस्वस्थ या बीमार हो जाएं, तो रोग को पहचान कर तत्काल उपचार किया जाए। इससे बकरियों को मृत्यु से बचाकर आर्थिक हानि से बचा जा सकता है। रोगों के लक्षण देखते ही यथाशीघ्र उपचार के उपाय करने चाहिए। इन रोगों का देसी इलाज भी प्रभावी होता है, अन्यथा पशुचिकित्सक को दिखाकर उपचार कराना चाहिए। बकरियों की रक्षा के लिए दूसरी जरूरी सावधानियाँ भी बरतनी चाहिए। बकरियों को जंगली एवं हिंसक पशुओं से रक्षा के लिए सुरक्षा के पर्याप्त उपाय करने चाहिए। बकरी के मेमनों को कुत्तों से दूर रखना चाहिए। बकरियों को खेती से दूर रखना चाहिए, क्योंकि हरे-भरे खेतों में चरने को दौड़ पड़ती है, जो अक्सर विवाद का कारण बनता है।

ब्याँत के उपरान्त जेर रूकना : एक गम्भीर समस्या

चेतना गंगवार, अखिल पटेल, एस पी सिंह एवं जितेन्द्र कुमार अग्रवाल

पशुचिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, प. दीनदयाल उपाध्याय पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गौ-अनुसंधान संस्थान, मथुरा - 281001 (उत्तर प्रदेश)

दुधारू पशुओं में जेर का रूकना एक गंभीर समस्या है, जिसकी वजह से पशुपालकों को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। सामान्यतः ब्याने के पश्चात जेर 3-8 घण्टों में गिर जाती है, परन्तु पशुओं में ब्याने के 8-12 घण्टे बाद भी जेर न गिरना असामान्य स्थिति मानी जाती है और इसे ही अनिर्गत अपरा या जेर रूकना कहते हैं। प्रस्तुत लेख में जेर रूकने के कारण, लक्षण एवं उपचार पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है, ताकि पशुपालक इस प्रकार की स्थिति का सामना सही समय पर उचित ढंग से कर सकें।

ब्याने के बाद पशुओं में होने वाली प्रमुख व्याधियों में जेर का रूकना एक महत्वपूर्ण व्याधि है जिसमें मादा पशु ब्याने के 8-12 घण्टे बाद भी जेर नहीं गिराती। प्रसव में कठिनाई, गर्भपात, हारमोन असंतुलन, खनिज तत्वों का असंतुलन इत्यादि इसके प्रमुख कारण हैं। उचित व समय पर इलाज न होने की स्थिति में पशु का उत्पादन एकदम कम हो सकता है और पशु बांझ भी हो सकता है। अतः समय पर इसका उचित इलाज आवश्यक है।

जेर रूकने के कारण

- प्रसव में कठिनाई होना
- गर्भपात या समय से पूर्व बच्चे का पैदा होना
- बच्चेदानी की जड़ता
- जुड़वा बच्चों का होना
- हार्मोन का असंतुलन
- विटामिन एवं सेलेनियम की कमी
- कैल्शियम की कमी
- कीटोसिस
- गर्भाशय संक्रमण जैसे ब्रूसेला एबोर्टस, माइकोबैक्टीरियम, विब्रियो फीट्स इत्यादि का संक्रमण
- भ्रूणमहाकायिता

रुकी हुई जेर

जेर को बाहर निकालने का प्रयास

लक्षण

पीड़ित पशु में गर्भपात अथवा कठिन प्रसव के 12 घण्टे बाद भी जेर का काफी भाग बाहर लटकता देखा जा सकता है। कभी-कभी जेर बाहर दिखाई न देकर योनि के अन्दर ही उपस्थित रहती है। अधिकतर पशुओं में बीमारी के लक्षण दिखाई नहीं पड़ते। परन्तु कभी-कभी चारा कम खाना, दूध कम देना, तापमान बढ़ना इत्यादि लक्षण महसूस किये जा सकते हैं। कई दिन हो जाने पर योनि से बदबूदार गंदा स्त्राव अथवा मवाद आना, अन्तः-गर्भाशय शोथ, दूध कम देना तथा वजन घटने जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

उपचार एवं रोकथाम

- ब्याँत के तुरन्त बाद नवजात बच्चे को थन से दूध पिलाना शुरू कर देना चाहिए। यह प्रक्रिया जेर को प्राकृतिक रूप से बाहर आने में मदद करती है।
- जेर को शुरुआती घण्टों में निकालना ही उचित है क्योंकि इससे जेर निकालने के समय गर्भाशय में होने वाली क्षति से बचा जा सकता है। जेर धीरे-धीरे गलकर निकल जाती है।
- कुछ आयुर्वेदिक दवाएं जैसे इन्वोलॉन, यू-टोन, यूट्रासेफ, हिमरोप इत्यादि को 100-200 मिली. पिलाने से भी जेर को बाहर आने में मदद मिलती है। पशु को कैल्शियम भी पिलाना चाहिए।
- पशु के द्वारा चारा कम खाना, बुखार होना, दूध में कमी आने की परिस्थितियों में जेर को निकालना ही सबसे उपयुक्त है।
- हाथ के द्वारा योनि मार्ग से जेर को ऐंठ कर धीरे-धीरे खींचकर निकालना चाहिए। यह विधि सामान्यतः ब्याने के 24-36 घण्टे बाद अपनानी चाहिए।
- हाथ से जेर निकालने के बाद स्ट्रीकलीन 500 मिलीग्राम की चार, फ्यूरिया की दो, अथवा सी-फ्लोक्स टी जेड, अथवा पोवीडोन आयोडिन अथवा लिनोवो आई यू 3-5 दिन तक बच्चेदानी में डालनी चाहिए।
- आवश्यकतानुसार स्ट्रेप्टोपेनिसिलीन, ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन प्रतिजैविक दवाएं 3-5 दिन तक लगाना चाहिए।
- ऑक्सीटोसिन ब्याँत के तुरन्त बाद और उसका दोबारा प्रयोग 2-4 घण्टे बाद करने से जेर रूकने की सम्भवना कम हो जाती है।
- प्रॉस्टाग्लैंडिन का इन्जेक्शन ब्याँत के 24 घण्टे के अन्दर देने पर जेर रूकने की सम्भावना कम हो जाती।

मादा पशुओं में बांझपन और उसका निदान

अतुल शंकर अरोड़ा, ए पी सिंह एवं संदीप धौलपुरिया

प्रसार शिक्षा निदेशालय, राजस्थान पशुचिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर - 334001 (राजस्थान)

पशुधन हमारे राष्ट्र की सुख, समृद्धि एवं सम्पन्नता के प्रतीक हैं। पशुधन का विकास सदैव ही मानव जीवन के विकास से जुड़ा है। वर्तमान में हमारे देश में पशुओं में प्रजनन की समस्याएं, देश के पशुधन विकास में सबसे बड़ी बाधा हैं जिसके कारण प्रति पशु उत्पादन क्षमता कम हो गई है। गाय में एक प्रसव प्रतिवर्ष तथा भैंस में 13-15 माह के अतरांल में होना चाहिए जिससे डेयरी व्यवसाय से लाभ अर्जित किया जा सके। विभिन्न कारणों में दो प्रसव के बीच का समय तय समय से अधिक हो जाता है तो डेयरी व्यवसाय नुकसान में जाने लगता है। मादा पशुओं में बांझपन का अर्थ है-गर्भ धारण न करना। रोगग्रसित मादा प्राकृतिक अथवा कृत्रिम गर्भाधान से भी गर्भधारण नहीं करती। मादा पशुओं में प्रजनन शक्ति का ह्रास होना बांझपन कहलाता है।

बांझपन के कारण

कुपोषण, पशु प्रबंधन एवं बांझपन: डेयरी पशुओं को संतुलित पशु आहार देने से मादा पशुओं को कुपोषण व बांझपन से बचाया जा सकता है। कुपोषण से ग्रसित गाय-भैंस का मद (गर्मी) में न आना, सुसुप्त मद, प्रारम्भिक अवस्था में गर्भपात होना, प्रसव के बाद गर्मी में न आना, बांझपन के प्रारम्भिक लक्षण हैं। गाय-भैंस को हरा चारा, दलिया, खनिज लवण व विटामिन्स युक्त मिश्रण व नमक देना चाहिए। गर्भावस्था वाले व दूधारू पशुओं को अतिरिक्त पोषक आहार देना चाहिए। हमारे देश में प्रायः संतुलित आहार न मिलने के कारण लगभग 20-40 प्रतिशत पशु बांझपन से ग्रसित हैं। पशु आहार में प्रोटीन, खनिज लवण एवं विटामिन की कमी से मादा पशु के जननांग पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाते हैं। कैल्शियम, फास्फोरस, कॉपर, आयोडीन अथवा जिंक इत्यादि खनिज लवण, पशु आहार में विटामिन 'ए' तथा 'ई' की कमी होने से मादा पशु के अण्डाशय समय पर विकसित नहीं हो पाते हैं तथा उनमें क्रियाशील अण्डाणुओं का निर्माण भी नहीं हो पाता है। अतः पशुओं को दिये गये चारे में इनकी कमी, उनको धीरे-धीरे बांझ बना देती है। प्रायः अपर्याप्त तापमान, सूर्य रोशनी की कमी तथा अन्य कुप्रबन्ध पशु प्रजनन पर बहुत गहरा प्रभाव डालते हैं। उनके स्वास्थ्य पर भी कुप्रभाव डालकर उनमें अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं जिससे मादा पशुओं की प्रजनन शक्ति का ह्रास होता है। उचित पशु प्रबंधन करने से मादा पशुओं में बांझपन की समस्या दूर की जा सकती है। इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- गर्मी (मद) में आए पशु की पहचान के लिए सुबह-शाम मादा पशु पर निगरानी रखनी चाहिए।
- सामान्य प्रसव के बाद गायों में 60 दिन व भैंसों में लगभग 90 दिन का यौन विश्राम देना आवश्यक है। असामान्य प्रसव के बाद लगभग 120 दिन का यौन विश्राम देना चाहिए।
- देशी गायों व भैंसों के गर्मी के आने के लगभग 12 घण्टे बाद व संकर नस्ल की गायों को लगभग 18-24 घण्टे बाद गाभिन करवाना चाहिए।

असामान्य प्रसव

संक्रामक बीमारियां: मादा पशुओं के जननांगों में जीवाणुओं एवं विषाणुओं का संक्रमण होने की स्थिति में पशुओं में गर्भाधारण नहीं हो पाता या गाभिन पशुओं में गर्भपात हो जाता है। ऐसी स्थिति में पशुचिकित्सक से जांच कराना आवश्यक है तथा पशुओं

को इन बीमारियों से बचाने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- कृत्रिम गर्भाधान अपनाना चाहिए।
- नर पशु की समयानुसार जांच करनी चाहिए व संक्रमित नर पशु को अलग करना चाहिए।
- संक्रमित व स्वस्थ मादा पशुओं को अलग-अलग रखना चाहिए।
- गर्भपात की स्थिति में जेर व अन्य स्त्रावों को जमीन में दबा देना चाहिए।
- संक्रमण से मृत हुए पशु को जमीन में दफन करना चाहिए।

हारमोन्स का असंतुलन: मादा पशुओं में प्रजनन सम्बन्धी हारमोन्स की कमी या अधिकता होने पर भी बांझपन की समस्या हो सकती है। पशुओं में हारमोन्स की कमी कुपोषण, वंशानुगत तथा तनाव से भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ हारमोन्स भी मादा पशुओं की जननेन्द्रिय एवं उनके कार्य क्षमता के लिए उत्तरदायी होते हैं, अतः शरीर में इनका असंतुलन होना प्रायः बांझपन का सूचक होता है। पशुओं में कुछ व्यवधान जैसे कि समय पर अंडे का अवतरण नहीं होना, या फिर अपरिपक्व कार्पस ल्यूटियम का बनना, इस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्ट्रॉन की कमी अथवा असंतुलन इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं। परिणामस्वरूप, पशु गर्भधारण नहीं करते और एक समस्या बन जाते हैं।

पशु का गर्मी में न आना: देशी नस्ल की गाय-भैसों की बछिया-पाड़ी, लगभग ढाई से तीन साल की उम्र में गर्मी में आ जानी चाहिए तथा संकर नस्ल की गायों की बछिया 15-18 माह की उम्र में गर्मी में आ जानी चाहिए। उम्र के साथ-साथ शारीरिक वजन भी महत्वपूर्ण होता है। बछिया एवं पाड़ी को उनकी नस्ल के अनुसार उचित शारीरिक वजन होने के उपरान्त ही गाभिन करवाना चाहिए।

पशु का बार-बार अनियमित रूप से हीट में आना: गाय व भैसें लगभग 21 दिन के अन्तराल पर गर्मी (मद) में आती है तथा लगभग एक दिन मद में रहती हैं लेकिन इसके विपरीत यदि पशु कम समय या एक दिन से ज्यादा समय तक गर्मी में रहता है तो ऐसे पशु में बच्चे नहीं ठहरते। ऐसे पशु की जांच कुशल पशुचिकित्सक से करवानी चाहिए।

पशुओं में रिपीट ब्रीडिंग - यदि पशु नियमित समय या बार-बार मद (गर्मी) में आते हैं परन्तु गर्भ नहीं ठहरता तो ऐसे पशु रिपीट ब्रीडर (कुराव) कहलाते हैं। ऐसे पशुओं की जांच कुशल पशुचिकित्सक से करवानी चाहिए।

जन्मजात बीमारियां एवं बांझपन: कभी-कभी मादा पशुओं के जननांगों में कुछ ऐसे दोष होते हैं जो बांझपन का कारण बनते हैं। ये दोष जन्म से ही मादा पशुओं में होते हैं तथा वंशानुगत भी होते हैं। इस तरह का बांझपन बछियों में कभी-कभी पाया जाता है।

जननांगों की विकृति: इस तरह के रोग कठिन प्रसव के बाद होते हैं। जेर का समय पर न गिरना भी इस तरह के रोग का कारण है। इस तरह के रोग के उपरान्त गाय, भैसों में रिपीट ब्रीडिंग हो जाती है, मादा पशुओं के विभिन्न जननांग जैसे अन्डाशय, अण्ड वाहिनी, गर्भाशय, योनि आदि के विकार हो सकते हैं। रोग अधिक तीव्र होने पर रक्त मिश्रित स्त्राव भी निकलता है। ऐसी स्थिति में मादा पशुओं को यौन विश्राम देकर पशुचिकित्सक से उपचार करवाना आवश्यक है।

बांझपन का निदान

बांझपन का निदान करने से पहले रोग की पहचान, पशु का इतिहास तथा लक्षणों व कारणों की संक्षिप्त जानकारी कर लेना अति आवश्यक है। साथ ही साथ पशुओं के शरीर का सामान्य परीक्षण तथा विशेष

रूप से जननांगों की पशु चिकित्सक से जांच करवाना अनिवार्य है। पशु के पिछले ब्यांत का ब्यौरा जैसे-असाधारण प्रसव, जेर का न गिराना या देर से गिरना, गर्भपात हो जाने के बारे में जानकारी जरूरी है। सामान्य परीक्षण के अन्तर्गत पशु का योनि स्राव, जननांगों में विकार व उसका स्वास्थ्य इत्यादि देखा जाता है। विशेष परीक्षण के लिए पशुचिकित्सक द्वारा मलद्वार तथा योनि में जीवाणु रहित साफ हाथ डालकर जननांगों की भलीभांति जांच करवाकर उनमें विकार का पता लगाकर रोग का उपचार कर निदान किया जा सकता है।

चूंकि बांझपन कई कारणों से होने वाली बीमारी है, अतः चिकित्सा में विशेष ध्यान रखना चाहिए जैसे कि यदि रोग पोषाहार की कमी से है, तो पशु को संतुलित आहार दिया जाए। यदि रोग का कारण हॉरमोन्स का असंतुलन या कमी है तो इसका निदान किसी भी योग्य पशुचिकित्सक से सलाह लेकर कराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त बांझपन यदि जननेन्द्री रोगों के कारण से है, तो भी समीपस्थ पशुचिकित्सक द्वारा उपचार कराया जा सकता है।

उपरोक्त सभी बातों का सारांश यह है कि पशुओं को संतुलित एवं नियमित आहार जिनमें प्रोटीन, खनिज लवण व विटामिन्स को खिलाकर, अच्छे प्रजनन तरीकों एवं सुप्रबन्धन द्वारा बांझपन को नियंत्रित किया जा सकता है तथा उनकी उत्पादन क्षमता को सार्थक रूप से बढ़ाया जा सकता है।

दुधारू पशुओं में ऊष्मागत तनाव (हीट स्ट्रैस) व बचाव

साक्षी चौहान[1] एवं विपुल ठाकुर[2]

[1]राजकीय पशुचिकित्सालय, कलीना, मेरठ - 250002 (उत्तर प्रदेश)

लुवास - रैफरल वैटनरी डायग्नॉस्टिक व एक्सटैंशन सेन्टर, उचानी, करनाल - 132001 (हरियाणा)

ग्रीष्म ऋतु में अधिक तापमान के कारण पशुओं के शरीर में होने वाले बदलाव, ''हीट स्ट्रैस'' या ''ऊष्मागत तनाव को प्रदर्शित करते हैं । यदि वातावरण का तापमान विदेशी एवं संकर नस्ल के लिए 24-26^{0}c, देशी गाय के लिए 33^{0}c तथा भैसों के लिए 36^{0}c से अधिक हो, तो उनके शरीर द्वारा पसीने एवं हांफने द्वारा गर्मी कम करने की क्षमता अत्याधिक कम हो जाती है। जिस कारण शरीर का तापमान अत्याधिक बढ़ जाता है । निम्नलिखित लक्षणों द्वारा हीट स्ट्रेस की पहचान की जा सकती है:

- शरीर का तापमान 39.22 या 102.6^o सेंटीग्रेड से अधिक हो जाता है।
- पशु के हांफने की दर 30 श्वास प्रति मिनट से अधिक हो जाता है।
- पशु की कार्य क्षमता में कमी तथा पशु सुस्त हो जाता है।
- खान-पान में लगभग 10-15 प्रतिशत की कमी आ जाती है ।
- दुग्ध उत्पादन भी 10-20 प्रतिशत या अधिक कम हो जाता है।

हीट स्ट्रैस के कारण पशुओं में गर्मी अभिव्यक्ति तथा कृत्रिम गर्भाधान द्वारा गर्भधारण की दर अत्याधिक कम हो जाती है।

हीट स्ट्रैस से बचाव के उपाय

तापमान एवं आर्द्रता नियत्रंण द्वारा:

- पशुओं पर पानी का छिड़काव
- बाड़े में पंखों का प्रयोग
- पशुओं को छाया में रखना
- पशुओं को हवादार बाड़े में रखना
- भूमि तथा छत पर पानी का छिड़काव

खान-पान के प्रबन्धन द्वारा:

- पशुओं को सुबह एवं शाम के समय ही चारा देना चाहिए
- अच्छी गुणवत्ता का रेशे वाला भोजन रूमेन एवं पशु के स्वास्थ्य को ठीक रखता है
- गर्मी के दिनों में अधिक सान्द्र मिश्रण देना चाहिए तथा दिन में 5-6 बार ठण्डा पानी देना चाहिए
- खाद्य प्रदार्थ में उर्जा बढ़ाने के लिए दानों एवं वसा युक्त पदार्थों का प्रयोग किया जाना चाहिए
- मिनरल मिश्रण एवं विटामिन मिश्रण के प्रयोग द्वारा भी हीट-स्ट्रेस के प्रभाव को कम किया जा सकता है
- ग्रीष्माघात होने की अवस्था में पशु को पशुचिकित्सक द्वारा उचित द्रव्य चिकित्सा उपलब्ध करानी चाहिये

गर्मी प्रतिरोधी नस्लों द्वारा: बोस इंडिकस् के चयन द्वारा भी हीट स्ट्रैस से होने वाली हानि से बचा जा सकता है।

हारमोनल थेरेपी के प्रयोग द्वारा: इससे भी हीट स्ट्रेस से प्रजनन क्षमता में होने वाली कमी के कारण होने वाले आर्थिक नुकसान को कम किया जा सकता है । जिन पशुओं में गर्मी की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती उनमें ओव्यूलेशन सिंक्रोनाइजेशन एवं कृत्रिम गर्भाधान प्रोटोकाल का प्रयोग किया जाता है ।

इसमें पशु को गोनेडोट्रापिन रिलीजिंग हारमोन: जी. एन. आर. एच. के समकक्ष रिसेप्टाल या फरटीजिल एवं प्रोस्टाग्लैंडिन समकक्ष इस्टूमैंट इंजेक्शन का प्रयोग वैज्ञानिकों द्वारा बताई गई विधि अनुसार किया जाता है। इस प्रकार ओव्यूलेशन सिंक्रनाइजेशन द्वारा पशु के गर्मी की अभिव्यक्ति न किये जाने के उपरान्त भी एक निश्चित समय पर कृत्रिम गर्भाधान कर दिया जाता है।

उपरोक्त बातों का ध्यान रखकर पशु को हीट स्ट्रेस से बचाकर उत्पादन क्षमता एवं प्रजनन क्षमता में होने वाली कमी को नियंत्रित किया जा सकता है ।

पशुओं में थनैला रोग

दिग्विजय सिंह, अखिलेश कुमार सिंह, मनोज कुमार एवं मानवेन्द्र सिंह
तिलकधारी सिंह पोस्ट ग्रेजुएट महाविद्यालय जौनपुर - 222001 (उत्तर प्रदेश)

थनैला रोग मादा पशुओं में बैक्टीरिया के द्वारा फैलता है। यदि प्रारम्भ में इस बिमारी की देख-भाल उचित रूप से नहीं की जाती है, तो यह पशु के थन को बेकार करके सुखा देती है। इस बिमारी से पशु मरते कम है, परन्तु थन सूख कर पूर्ण रूप से बेकार हो जाते हैं। इस रोग द्वारा मुख्यतः उत्तर प्रदेश के अधिकतर जिलों के पशु प्रभावित हैं, जिसमें जौनपुर मुख्य रूप से प्रभावित है।

कारण

इस बीमारी का मुख्य कारण बैक्टीरिया होता है तथा पशुओं पर 70 प्रतिशत जीवाणु का प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त 2 प्रतिशत यीस्ट एवं मोल्ड तथा 28 प्रतिशत शारीरिक चोट एवं खराब मौसम जैसे कुछ अज्ञात कारक भी इसके लिए उत्तरदायी होते हैं। इस रोग में 19 प्रकार के जीवाणु कारक होते हैं तथा इसके अतिरिक्त अनुवांशिकता भी कुछ हद तक उत्तरदायी होती है।

थनैला रोग से सम्बन्धित जीवाणु निम्नलिखित हैं:

- स्ट्रेप्टोकोकाई
- स्टेफिलोकोकाई
- कोरिनेबैक्ट्रियम पायोजिनस
- माइकोबैक्ट्रिरियम ट्यूबरकुलोसिस
- ई. कोलाई
- फूजीफार्मिस नेक्रोफोरस

लक्षण

यह बिमारी तीन प्रकार की होती है: तीव्र, कुछ तीव्र तथा दीर्घकालीन।

तीव्र थनैला: इस अवस्था में सर्वप्रथम तापक्रम का बढ़ना, बेचैनी, भूख में कमी, गर्म लाल तथा दर्द युक्त अयन, तापक्रम का कम होना, अयन ठण्डा तथा कड़ा हो जाना, थनों से एकाएक दूध का बहाव बन्द हो जाना इत्यादि इस अवस्था के मुख्य लक्षण है।

कुछ तीव्र थनैला: इस अवस्था में सर्वप्रथम तापक्रम का बढ़ना, बेचैनी, भूख में कमी, गर्म लाल तथा दर्द युक्त अयन, तापक्रम का कम होना, अयन ठण्डा तथा कड़ा हो जाना, थनों से एकाएक दूध का बहाव बन्द हो जाना इत्यादि इस अवस्था के मुख्य लक्षण है। यह तीव्र थनैला रोग की अपेक्षा कम हानि पहुँचाता है। अयन से निकले हुए दूध में छिक्षणें तथा एपीथीलियल कोशिकाएँ मिलती हैं।

दीर्घकालीन थनैला: यह अवस्था स्ट्रेप्टोकोकस एगैलेक्शिये के द्वारा छूत लगने से होती है। इसमें मुख्य रूप से अयन बढ़कर सख्त हो जाता है, और इसमें दर्द नहीं होता है तथा थनों से निकला हुआ दूध पतला एवं छिक्षणे युक्त होता है। रोग का वेग अधिक होने पर मादा पशु सम्पूर्ण रूप से दूध देना बन्द कर देती है।

रोग परीक्षण

इस विधि में उपरोक्त बताये गये रोग के मुख्य लक्षण देखकर बीमारी की पहचान की जाती है।

थनैला रोग से ग्रसित गाय

बाह्य जाँच

अयन एवं थन परीक्षण: यह परीक्षण केवल उन्हीं पशुओं में होता है जो पहले से रोग ग्रसित हैं। थन से सम्पूर्ण दूध निकालने के बाद अयन को हाथ से थपथपाने पर रोग के कारण किसी भी प्रकार की असाधरणता जैसे अयन का कड़ा तथा फूला होना थनों का छोटा-बड़ा होना इत्यादि को महसूस किया जा सकता है।

स्ट्रिप कप जाँच: यह टिन का बना हुआ 500 मिली. का ढ़क्कनदार कप होता है। इसका ढ़क्कन लगभग 3 से.मी. गहरा होता है। इसका आधा भाग महीन तार की जाली का बना होता है, शेष आधा भाग टिन का बना होता है। दुहने के समय प्रत्येक थन से प्रथम दो-चार दूध की धाराएँ इसी छलनी पर दुही जाने से रोगी के दूध में थक्का जम जाता है।

चखकर जाँच: साधारण तौर पर दूध में 0.12 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड होता है, लेकिन थनैला रोग से पीड़ित पशु के दूध में इसकी मात्रा 1.4 प्रतिशत या अधिक हो जाती है।

अम्लीयता परीक्षण: दूध का पी. एच. 6.0 से 6.8 तथा थनैला दूध का पी.एच. 7.4 हो जाता है।

माइक्रोस्कोपिक परीक्षण

बीजाणु परीक्षण: इस परीक्षण में छोटी-छोटी कार्कदार शीशियों में थनों से दूध निकालकर भर लेते हैं, इन शीशियों को 37 डिग्री सेन्टीग्रेट पर 12 से 24 घण्टे के लिए उद्भ्ववित करते हैं, इसके बाद काँच की स्लाइड पर पतला लेप बनाकर माइक्रोस्कोप में जीवाणु को देखा जा सकता है।

लेप परीक्षण: इस विधि के अन्तर्गत अपकेन्द्रीय नली में दूध को लेकर उसे अपकेन्द्रण के लिए रख देते है, इससे उसमें रेतीला भाग नीचे की तह में बैठ जाता है। इसके बाद पदार्थ को काँच की स्लाइड पर पतला लेप बनाकर देखा जा सकता है ।

रासायनिक परीक्षण: रासायनिक परीक्षण करने के लिए मैस्टाइटिस रियजेन्ट द्वारा जाँच करने के लिए सफेद प्यालीदार बर्तन में 2 मिली. दूध लेते हैं। इसमें नपने भर उक्त अभिकर्मक मिलाकर परिधि आकार में धीरे-धीरे घुमाते हैं। यदि दूध तरल रूप में बना रहे तो यह परीक्षण ऋणात्मक समझा जाता है, इसके विपरीत यदि धनात्मक है, तो पशु को थनैला रोग से ग्रसित समझा जा सकता है। दूध में अम्लीयता का प्रतिशत अधिक होने पर वह पीला पड़ जाता है, क्षारीय होने पर उसका रंग नीलोहित हो जाता है।

थनैला दूध का माइक्रोबायोलाजिकल परीक्षण

मैस्टेड घोल: मैस्टेड घोल द्वारा जाँच करने के लिए प्लास्टिक की प्याली में रोग ग्रसित थन से लभगभ 3 मिली. दूध लेकर उतनी ही मात्रा में मैस्टेड घोल मिलाकर परिधि आकार में हिलाने पर मिश्रण में जैली का निर्माण हो तो पशु को थनैला से ग्रसित समझना चाहिए।

थनैला रोग की चिकित्सा

रोग निदान शीघ्र हो जाने पर पशु का इलाज संभव है, परन्तु यदि जीवाणु अयन के अन्दर पहुँचकर अपना समुचित विकास कर चुके हैं, तो इसकी सफल चिकित्सा नहीं हो पाती है।

बाह्य उपचार: रोग ग्रसित फूले हूए अयन पर आयोडिन मलहम, सुमेग, बेलाडोना ग्लिसिरिन पेस्ट लगाकर सेक करने से काफी लाभ होता है। गर्म पानी में मैगसल्फ बोरिक एसिड अथवा नीम की पत्तियॉ डालकर भी अयन को सेका जा सकता है। पशु का दूध निकालने के बाद उसके अयन एवं थन पर नेचुरल रेमेडिज द्वारा निर्मित व्हीस्पर स्प्रे का छिड़काव करने पर सूजन कम हो जाती है।

एण्टिसेप्टिक तथा सल्फा औषधियाँ: डैप्सोन के जलीय घोल अथवा 1:1000 ऐक्रोफ्लोविन घोल का थन के अन्दर इन्जेक्शन देने से लाभ होता है। सल्फा औषधियॉ जैसे सल्फाडिमिडीन खिलाने से भी लाभ होता है।

प्रतिजीवाणु पदार्थ: थनैला रोग में सल्फामिन, गाइरोफ्लाक्स, एम्पीसीलीन, पैनिसिलीन, स्ट्रेप्टेमाइसिन, वोलिसाइक्लीन, डाइक्रिस्टीसिन तथा टेरामाइसीन का प्रयोग काफी लाभदायक है।

पेटेण्ट औषधियाँ: मेस्टालॉन, पेनीक्योर-डी, टेरामाइसिन, ऑरोमाइसिन, यूडोलैक, पेनिसिलीन, पेण्डिस्ट्रिन, नेफ्यूरॉन, टिलोह तथा मैस्टीसिलिन थनैला रोग को ठीक करने के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। लेकिन कोई भी दवा या एंटीबायोटिक खिलाने से पहले पशुचिकित्सक से सलाह अवश्य लें।

रोकथाम

थनैला रोग के प्रति वैक्सीन अथवा सीरम का प्रयोग नहीं होता है। यह रोग अत्यधिक कुप्रबन्धन से फैलता है, अतः ग्वालो के हाथों, कपड़ों, दूध दूहने वाली मशीनों, बर्तनों, पशुशाला तथा अयन की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देकर बचाव किया जा सकता है। रोग यदि फैल रहा हो तो रोगी अथवा स्वस्थ पशुओं में अलगाव की विधि अपनानी चाहिये। थन अथवा अयन पर लगी हुई चोटों का शीघ्र-अतिशीघ्र उपचार करना चाहिए एवं एक भी पशु की आशंका होने पर सभी दुधारू पशुओं के दूध का परीक्षण करना चाहिए।

थनैला की आशंका होते ही तत्काल उसका इलाज करना जरूरी है अन्यथा यह बीमारी चारों थनों को पकड़ कर पशु को हमेशा के लिए खराब कर देती है। कभी-कभी थनैला के साथ अयन में क्षय रोग के जीवाणु प्रविष्ट होकर इसे और भी जटिल बना देते हैं। पोटाश के घोल से थन तथा हाथ धोकर दूध निकालने से पशु को यह रोग लगने की संभावना कम होती है। पशु को विटामिन ई के साथ सेलेनियम लवण खिलाने से थनैला के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

पशुओं में होने वाले खुरपका-मुहंपका रोग का उपचार एवं रोकथाम

राजेश अग्रवाल एवं निशि पांडे

पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय, शेर-ए-कश्मीर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, आर एस पुरा, जम्मू - 181102 (जम्मू एवं कश्मीर)

खुरपका-मुंहपका रोग तीव्र गति से फैलने वाला एक विषाणु जनित रोग है, जो प्राय: जुगाली करने वाले पशुओं में पाया जाता है । इस रोग में पशु को तीव्र ज्वर होता है तथा मुंह, खुर, स्तनग्रंथियों (थनों) पर छाले पड़ जाते हैं । इस रोग से ठीक हो जाने के पश्चात् भी वयस्क पशुओं की उत्पादन एवं कार्य क्षमता सामान्य पशु की तुलना में काफी कम रह जाती है। आर्थिक दृष्टि से इस रोग का बहुत महत्व है। एक अनुमान के अनुसार, इस रोग के कारण पशुपालन क्षेत्र मे परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से लगभग 5000 करोड़ रूपये की हानि प्रतिवर्ष होती है।

रोग के कारण

खुरपका-मुंहपका रोग एक अत्यन्त सूक्ष्म विषाणु जिसके अनेक प्रकार तथा उप-प्रकार हैं, से होता है। इनकी प्रमुख किस्मों में ओ, ए, सी, एशिया-1, एशिया-2, एशिया-3, सैट-1, सैट-3 तथा 14 उप-किस्में भी शामिल हैं। हमारे देश मे यह रोग मुख्यत: ओ, ए, सी तथा एशिया-1 प्रकार के विषाणुओं द्वारा होता है। नम-वातावरण, पशु की आन्तरिक कमजोरी, पशुओं तथा लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन तथा नजदीकी क्षेत्र में रोग का प्रकोप इस बीमारी को फैलाने में सहायक कारक हैं।

पालतू पशुओं में यह रोग गाय, भैंस, भेड़, बकरी, याक, सूअर एवं ऊंट में पाया जाता है। जंगली पशुओं में यह रोग प्रायः हिरण, नीलगाय, बारहसिंगा, जिराफ, मिथुन एवं जंगली शूकर में देखा गया है।

यह रोग बीमार पशु के सीधे सम्पर्क में आने, पानी, घास, दाना, बर्तन, दूध निकलने वाले व्यक्ति के हाथों से, हवा से तथा लोगों के आवागमन से फैलता है। रोग के विषाणु बीमार पशु की लार, मुंह, खुर व थनों में पड़े फफोलों में बहुत अधिक संख्या में पाए जाते हैं। ये खुले में घास, चारा, तथा फर्श पर चार महीनों तक जीवित रह सकते हैं लेकिन गर्मी के मौसम में यह बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। विषाणु जीभ, मुंह, आंत, खुरों के बीच की जगह, थनों तथा घाव आदि के द्वारा स्वस्थ पशु के रक्त में पहुंचते हैं तथा लगभग 5 दिनों के अंदर उसमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं।

रोग के लक्षण

रोग ग्रस्त पशु को 104-106^{0} फारनेहाइट तक बुखार हो जाता है। वह खाना-पीना व जुगाली करना बन्द कर देता है। दूध का उत्पादन गिर जाता है। मुंह से लार बहने लगती है तथा मुंह हिलाने पर चप-चप की आवाज़ आती है, इसी कारण इसे 'चपका रोग' भी कहते हैं। तेज़ बुखार के बाद पशु के मुंह के अंदर, गालों, जीभ, होंठ, तालू व मसूड़ों के अंदर, खुरों के बीच तथा कभी-कभी थनों व अयन पर छाले पड़ जाते हैं। ये छाले फटने के बाद घाव का रूप ले लेते हैं जिससे पशु को बहुत दर्द होने लगता है। मुंह में घाव व दर्द के कारण पशु खाना-पीना बन्द कर देते हैं जिससे वह बहुत कमज़ोर हो जाता है। खुरों में दर्द के कारण पशु लंगड़ा कर चलने लगता है। गर्भवती मादा में कई बार गर्भपात भी हो जाता है। ज्यादातर नवजात बच्छे/बच्छियां बिना किसी लक्षण दिखाए मर जाते हैं। लापरवाही होने पर पशु के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं तथा कई बार खुरों के कवच भी निकल जाते हैं। हालांकि व्यस्क पशु में मृत्यु दर कम (लगभग 10%) है लेकिन इस रोग से पशु पालक को आर्थिक हानि बहुत ज्यादा उठानी पड़ती है। दूध देने वाले पशुओं में दूध के उत्पादन में कमी आ जाती है। ठीक हुए पशुओं का शरीर खुरदरा तथा उनमें कभी-कभी हांफना रोग हो जाता है। बैलों में भारी काम करने की क्षमता खत्म हो जाती है।

उपचार

खुरपका-मुंहपका रोग एक विषाणु (वायरस) जनित रोग है, अत: इसका कोई विशिष्ट उपचार नहीं होता । इस रोग के लक्षणों की तीव्रता एवं विनाशक क्षमता को कम करने तथा अवसरवादी जीवाणुओं (बैक्टीरिया) के संक्रमण को रोकने के लिए जीवाणुरोधी (एंटीबायोटिक्स) औषधियां दी जाती हैं। मुख, खुर एवं थनों के

छालों को फिटकरी (1 ग्रा. फिटकरी 100 मिली. पानी में घोले) या 1% पोटेशियम परमैंगनेट के पानी से अथवा नीम एवं पीपल की छालों का काढ़ा बना कर दिन में दो से तीन बार धोना चहिए । धोने के बाद छालों या अल्सर पर 2% बोरो ग्लिसरीन के लेप का प्रयोग किया जाता है। ज्वर की तीव्रता कम करने के लिए तापस तापमानरोधी औषधियों (एंटीपाय़ेरेटिक) का प्रयोग भी किया जाता है। इस अवधि में पशु को मुलायम आहार (दलिया, हरा चारा आदि) ही देना चहिए।

टीकाकारण

इस रोग से बचाव के लिए पशुओं का टीकाकारण वर्ष में दो बार किया जाना चाहिए। समान्यतः पहला टीका मई–जून माह में एवं दूसरा टीका नवंबर-दिसंबर माह में लगवाना चाहिए। बच्छे/बच्छियों में पहला टीका 4 माह और उससे अधिक की आयु में, अनुवर्धकः टीका पहले टीके के 3-4 सप्ताह के बाद एवं पुनः टीकाकारण प्रत्येक 6 माह बाद किया जाना चाहिए।

तालिका 1: टीकाकरण सारिणी

क्र.स.	बीमारी का नाम	टीकाकरण की उम्र	अनुवर्धकः टीकाकरण	पुन: टीकाकरण	टीके की मात्रा एवं विधि	उत्पाद का नाम
1.	खुरपका-मुंहपका रोग	प्रथम टीका 4 माह की आयु पर	पहले टीके के 3-4 सप्ताह के बाद	प्रति 6 माह पर	5-10 मिली. त्वचा के नीचे 3 मिली. त्वचा के नीचे 2 मिली. त्वचा के नीचे	खुरपका-मुंहपका टेट्रावैलेंट टीका (इन्टरवेट), खुरपका-मुंहपका ट्राइवैलेंट टीका (इन्टरवेट), रक्षा - खुरपका-मुंहपका टीका (इडिंयन इम्यूनोलाजिकल) रक्षा ओवेक
2.	खुरपका-मुंहपका + गलघोंटू + लंगड़ी रोग/बुखार	4 माह की आयु पर	प्रथम टीके के 9 माह पश्चात्	प्रति 12 माह बाद	3 मिली. मांसपेशियाँ के अंदर	रक्षा-ट्राईओवेक टीका (इडिंयन इम्यूनोलाजिकल)
3.	खुरपका-मुंहपका + गलघोंटू	4 माह की आयु पर	प्रथम टीके के 9 माह पश्चात्	प्रति 12 माह बाद	3 मिली. मांसपेशियाँ के अंदर	रक्षा-वायोओवेक टीका (इडिंयन इम्यूनोलाजिकल)

नोट: अधिक जानकारी के लिए अपने निकटतम पशु चिकित्सालय पर संपर्क करें ।

स्थानिक क्षेत्र जहां रोग फैलने की सभंवाना है वहां निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

- नियमों के माध्यम से पशु आवागमन को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए।
- रोग प्रभावित क्षेत्र से पशु खरीदारी एवं रोग मुक्त गांव में प्रवेश करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।
- व्यापार वाले पशुओं को व्यापार के रास्ते में आने वाले गांव के मवेशियों के साथ संपर्क में नहीं आने देना चाहिए।
- बिना टीका लगे पशुओं को मवेशियों के मेलों में ले जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि मेले में लाए गए संक्रमित जानवरों से संक्रमण फैल सकता है।
- गाय, भैंस, भेड़, बकरियों को टीका लगाया जाना चाहिए और उन्हें चिह्नित करना चाहिए।
- किसी भी क्षेत्र के सभी जानवरों का टीकाकरण एक समय पर किया जाना चाहिए। अलग-अलग तारीखों पर गांव के केवल कुछ जानवरों का टीकाकरण करना तर्कसंगत नहीं है।
- टीकाकरण के 15-21 दिनों के बाद ही टीका लगाए गये जानवरों को बाहर के स्रोतों से गांव में लाया जाना चाहिए ।
- गांव के प्रवेश द्वार पर पाद-स्नान या ट्रक स्नान किया जाना चाहिए ताकि बीमारी के प्रसार को रोका जा सके।
- हमेशा चारा उस जगह से खरीदें जहां बीमारी 6 महीने की अवधि और उससे अधिक समय से दर्ज न की गई हो।

क्षेत्र में बीमारी के प्रकोप के बाद निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

- रोग की पहचान के तुरंत बाद प्रभावित जानवरों को अलग करने और सीमित करने का प्रयास करें।
- जानवरों को चराई के लिए आम चराई वाले स्थान पर चरने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि इससे स्वस्थ जानवरों में बीमारी फैलाने की सभांवना बढ़ जाती है।
- जानवरों को तालाब/नहर/नदियों आदि से पानी पीने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। संक्रमित जानवर उन स्रोतों को दूषित कर सकते हैं।
- रोगग्रस्त जानवरों को गांव के अन्य जानवरों के साथ घूमने नहीं देना चाहिए।
- प्रभावित जानवरों के निकट संपर्क में रहने वाले जानवरों को टीकाकरण कार्यक्रम के तहत टीका नहीं लगाना चाहिए।
- गांव के चारों ओर घूमने वाले व्यक्तियों द्वारा बीमारी फैल सकती है, अतः उनकी गतिविधियों को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। अगर यह व्यावहारिक नहीं है, तो उन लोगों को साबुन और कास्टिक सोडा के साथ स्वयं और अपने सामान को साफ़ करना चाहिए।
- नए जानवरों को प्रकोप के 6 महीने बाद तक खरीदा नहीं जाना चाहिए।
- गांव की परिधि में स्वस्थ रोग मुक्त जानवरों का टीकाकरण किया जाना चाहिए। बीमारी के टीकाकरण के 21 दिनों के भीतर टीका लगाए जानवरों में भी बीमारी को नोट किया जा सकता है। 3 महीने से अधिक उम्र के सभी जानवरों को पहली बार टीका लगाया जा सकता है, फिर दूसरी खुराक 21 से 30 दिन पर लगनी चाहिए और फिर 6 महीने के अंतराल पर टीका पुनः लगाना चाहिए।
- प्रकोप के दौरान, स्वस्थ जानवरों को पहले, फिर प्रभावित जानवरों को संभालना चाहिए। बीमार जानवरों की सभांल करने वाले व्यक्तियों को स्वयं को और अपने कपड़ो को 4% सोडियम कार्बोनेट के घोल से धोना चाहिए। दूध इकट्ठा करने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले बर्तन को 4% सोडियम कार्बोनेट के घोल से साफ किया जाना चाहिए।
- बछड़ों को प्रभावित माताओं का दूध नहीं पिलाना चाहिए।
- प्रभावित जानवरों का मुंह एंटीसेप्टिक माउथ वाश के साथ धोना चाहिए। 1% पोटेशियम परमैगनेट के घोल को दिन में 3-4 बार लगाना चाहिए । 2-5% पोवीडॉन आयोडीन के घोल का उपयोग भी किया जा सकता है।
- प्रभावित जानवरों के खुरों को 2% कॉपर सल्फेट के घोल से धोना चाहिए। एंटीसेप्टिक लोशन और फ्लाई रिप्लेंट का इस्तेमाल संक्रमण और घाव में मैगेट पड़ने से रोकने के लिए किया जाना चाहिए।
- पशु घरों के आसपास चूने का पाउडर छिड़का जाना चाहिए।
- रोगी पशु के मुँह से गिरने वाली लार एवं पैर के घाव के संसर्ग में आने वाली वस्तुओं जैसे पुआल, भूसा, घास आदि को जला देना चाहिए या जमीन में गड्ढा खोदकर चूने के साथ गाड़ देना चाहिए।
- इस रोग से मरे पशु के शव को खुला न छोड़कर जमीन में दफन करना चाहिए।

भेड़-बकरियों के मुख्य रोग एवं उनके निदान

शालू कुमार[1], हरेन्द्र सिंह चौहान[2], अभिजित जोशी[1], जवाहर लाल कुलदीप[1], मुकुंद लोंढे[3]
प्रज्ञा शिगवण[1], पल्लवी पानकर[1] एवं बालासाहेब सोनवलकर[1]
[1]डॉ. बी.एस. कोंकण कृषि विद्यापीठ दापोली, जिला – रत्नागिरी - 415712 (महाराष्ट्र)
[2]सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रोधोगिक विश्वविधालय, मेरठ - 250110 (उत्तर प्रदेश)
[3]पशुचिकित्सालय दापोली, रत्नागिरी - 415712 (महाराष्ट्र)

लघु रोमन्थियों भेड़-बकरियों में विभिन्न प्रकार के रोग होते हैं, जो बैक्टीरिया, वायरस, परजीवी और अन्य गैर-संक्रामक कारकों के कारण से फैलते हैं। इन रोगों का उपचार लक्षणों के आधार पर कर पाना सबसे मुश्किल है, क्योंकि बहुत से रोगों के लक्षण एक दूसरे के समान हैं। इस लेख में आम बीमारियों के महत्वपूर्ण लक्षण दिए गए हैं। बीमारी के समय जानवरों की स्थिति में अधिक गिरावट को रोकने के लिए भेड़-बकरी पालक, कुछ विशेष कदम उठा सकते हैं। समय पर पशुचिकित्सक से सम्पर्क करके उचित समय पर पशु का उपचार कराना जरूरी है।

मुंह-खुर रोग (एफ़.एम.डी.)

यह बीमारी एक विषाणु जनित छूत का रोग है तथा बहुत जल्दी यह रोग एक पीड़ित जानवर से दूसरे जानवरों में फैल जाता है। गद्दी भेड़ पालक इस बीमारी को रिकणु नामक बीमारी से जानते हैं।

रोग के लक्षण: इस रोग से ग्रस्त भेड़-बकरियों के मुंह, जीभ, होंठ व खुरों के बीच की खाल में फफोले पड़ जाते हैं। जिसके कारण से भेड़-बकरियां घास नहीं खा पाती एवं उनके मुंह से लार टपकती रहती है और खुरों में फफोले होने के कारण भेड़-बकरियां लंगडाकर चलती हैं। जानवर को तेज़ बुखार आना भी इसका एक मुख्य लक्षण है। कभी-कभी इस बीमारी से गर्भित भेड़-बकरियों में गर्भपात भी हो जाता है। भेड़-बकरियों के बच्चों की मृत्यु दर अधिक होती है।

रोग से बचाव व उपचार: इस बीमारी से बचने के लिए सबसे पहले भेड़-बकरी पालक को बीमारी से पीड़ित जानवरों को स्वस्थ जानवरों से अलग कर देना चाहिए और उसके बाद बीमारी से प्रभावित भेड़-बकरियों के ईलाज जैसे मुंह के छालों के लिये बोरोग्लिसरिन मलहम, खुरों की सफाई लाल दवाई या नीले थोथे के घोल या फोरमेलिन के घोल से करनी चाहिए एवं पशुपालक को पशुचिकित्सक से परामर्श कर एन्टीबायोटिक इंजेक्शन भी लगाने चाहिए। प्रत्येक भेड़ पालक को छ: महीने के अन्तराल पर रोग से रोकथाम हेतु टीकाकरण करवाना चाहिए।

कन्टेजियस एकथाईमा

यह बीमारी भी एक प्रकार के विषाणु द्वारा होती है, इसमें भेड़-बकरी के मुंह, नाक व होठों के बाहरी तरफ फोड़े हो जाते हैं और कभी-कभी ये फोड़े इतने बढ़ जाते हैं कि जानवर का मुंह फूल जाता है, जिसके कारण जानवर को घास खाने या चरने में बहुत तकलीफ होती है। मुंह, नाक व होठों पर फोड़े होने के साथ-साथ पशु को हल्का बुखार भी रहता है।

रोग से बचाव व उपचार: सर्वप्रथम पशुपालक को बीमार भेड़-बकरियों को स्वस्थ पशु के झुण्ड से अलग कर देना चाहिए और उसके पश्चात उपचार हेतु फोड़ो को लाल दवाई के घोल से धोकर उन पर एन्टीसेप्टिक मलहम लगाना चाहिए। ज्यादा बीमार भेड़-बकरी को इस बीमारी से बचाने के लिए पांच दिन तक एन्टीबायोटिक इन्जेक्शन पशुचिकित्सक के परामर्श के अनुसार लगवाना चाहिए।

एन्थ्रेक्स रोग (तील्ला रोग)

इस बीमारी को भेड़ पालक रक्तांजली रोग से जानते हैं। यह रोग भी जीवाणु द्वारा ही पशुओ में फैलता है। यह बीमारी भेड़ों की तुलना में बकरियों को अधिक प्रभावित करती है, जिसके कारण गद्दी भेड़ पालक इस बीमारी को "गंणडयाली नामक" रोग से भी जानते हैं। इस बीमारी के कारण भेड़-बकरियों को

बहुत तेज़ बुखार आता है। मृतक भेड़-बकरी के नाक, कान, मुंह व गुदा से खून का रिसाव होना इस बीमारी का मुख्य लक्षण है।

रोग से बचाव व उपचार: इस रोग से मरने वाली भेड़-बकरियों की कभी भी खाल नहीं निकालनी चाहिए तथा मरने वाले जानवरों को गहरे गड्ढे में दबा देना चाहिए और पशुपालक को कुछ समय के लिए चरागाह को बदल देना चाहिए। इस बीमारी से पीड़ित भेड़-बकरियों को एन्टीबायोटिक इन्जेक्शन चार-पांच दिन तक पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार देना चाहिए।

ब्रूसीलोसिस

यह बीमारी भी एक जीवाणु द्वारा एक पशु से दूसरे पशु में फैलती है। इस बीमारी के कारण गाभिन भेड़-बकरियों में चार से साढ़े चार महीने के दौरान गर्भपात हो जाता है। गर्भपात होने वाली भेड़-बकरियों की जेर अटक जाती है या समयानुसार नहीं गिरती जिसके कारण बीमार भेड़-बकरी की बच्चेदानी (गर्भाशय) में सड़न होने लगती है। कभी-कभी यह बीमारी नर पशुओं (मेंढों व बकरों) में भी देखी जाती है जिसके कारण नर पशुओं के अण्डकोष पक जाते हैं तथा अण्डकोष में सड़न होने के कारण पशु के घुटनों में भी सूजन आ जाती है, इस कारण मेढ़े/बकरे अपनी प्रजनन क्षमता खो देते हैं।

रोग से बचाव व उपचार: इस रोग के लक्षण पाऐ जाने पर पशुपालक को अपने सारे के सारे पशु के झुंड खत्म कर नये जानवर पालने चाहिए। कुछ पशुपालक गर्भपात हुए मृत मेमनें को और बीमारी से पीड़ित पशु की जेर को खुले में फेंक देते हैं जिसके कारण इस बीमारी के जीवाणु अन्य झुंड में भी फैल जाते हैं। अत: भेड़ पालकों को ऐसा नहीं करना चाहिए बल्कि पशुपालक को ऐसे मृत जानवरों व जेर को गहरा गढ्ढा खोदकर उसमें दबा देना चाहिए। कभी-कभी यह रोग भेड़-बकरियों से मनुष्य में भी आ जाता है, जिसके कारण मनुष्य को हल्का बुखार, बदन व सिर दर्द के साथ-साथ अधिक पसीना आता है। परस्थिति ज्यादा ख़राब होने पर पशुपालक के अण्डकोष में भी सूजन आ जाती है। इसलिए भेड़ पालकों को इस रोग से बचाव हेतु समय-समय पर अपने खून की जांच भी करवा लेनी चाहिए।

फुट रोट

इस बीमारी को भेड़-बकरी पशुपालक चिकड़ नामक रोग से जानते हैं, यह बीमारी भी ब्रूसीलोसिस की तरह जीवाणुओं द्वारा ही पशुओं में होती है। इस रोग में भेड़-बकरियों के खुरों की बीच की चमड़ी (त्वचा) पक जाती है और पशु लंगड़ा हो जाता है। भेड़ों को बुखार हो जाता है तथा इस रोग के जीवाणु मिट्टी द्वारा एक जानवर से दूसरे जानवर में चले जाते हैं। यह भी एक छूत का रोग है जोकि एक जानवर से पूरे झुंड में फैल जाता है।

रोग से बचाव व उपचार: इस रोग से पीड़ित भेड़-बकरी को झुंड से अलग कर देना चाहिए तथा बीमार भेड़-बकरियों के खुरों की सफाई नीले थोथे (कापर सल्फेट) के घोल से करनी चाहिए। एन्टीबायोटिक मलहम तथा एन्टीबायोटिक इन्जेक्शन चिकित्सक की सलाह अनुसार प्रयोग करना चाहिए।

गलघोंटू

भेड़ पालक इस रोग को हगलू नाम से जानते हैं। यह बीमारी भी भेड़-बकरियों में जीवाणुओं द्वारा फैलती है। मुख्यत: जब भेड़पालक अपने झुंड को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है, उस समय इस रोग के अधिक फैलने की संम्भावना होती है। इस बीमारी से भेड़-बकरियों के गले में सूजन हो जाती है जिससे उसे सांस लेने में कठिनाई होती है। इस बीमारी में भेड़-बकरी को तेज़ बुखार, नाक से लार निकलना तथा निमोनिया हो जाता है।

एन्टीरोटोक्सीमिया

यह भेड़ का असंक्रामक रोग है, यह मुख्यतः जीवाणुओं द्वारा फैलता है। यह जीवाणु प्राय: भेड़-बकरियों के पेट के अन्दर होता है तथा यह रोग अधिकतर छोटे बच्चों में ज्यादा होता है। इस बीमारी में भेड़-बकरियों में तेज़ पेट दर्द होता है तथा जानवर धीरे-धीरे कमज़ोर हो जाता है। जानवर को चक्कर आना, मुंह से झाग निकलना और दस्त के साथ खून आना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण होते हैं।

रोग से बचाव व उपचार: इस बीमारी से बचाव हेतु भेड़पालक को प्राथमिक उपचार हेतु नमक व चीनी का घोल पिलाना चाहिए,

क्योंकि यह घोल दस्त के कारण जानवर के शरीर में हुई पानी की कमी को पूरा करता है। इसके साथ-साथ पेट के कीड़ों की दवाई भी भेड़-बकरियों को पिलानी चाहिए। घास चरने की जगह समय-समय पर बदलनी चाहिए। दस्त तथा बुखार को कम करने के लिए पशुचिकित्सक की सलाह अनुसार दवाई व उपचार करवाना चाहिए। बीमारी से बचाव हेतु भेड़ पालक को वर्ष में एक बार टीकाकरण करवाना चाहिए।

गोल कीड़े

इस प्रकार के कीड़े मुख्यत: भेड़-बकरियों की आंतों में धागे की तरह लम्बे व सफेद रंग के पाये जाते हैं जोकि भेड़-बकरियों की आंतों से खून चूसते हैं। कई बार भेड़-बकरियों में इन कीड़ों के कारण दस्त लगना शुरु हो जाता है, जिससे जानवर कमज़ोर हो जाता है।

उपचार: भेड़ पालक अपनी भेड़ों को वर्ष में कम से कम तीन बार पेट के कीड़ों को मारने की दवाई पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार अवश्य पिलाएं।

टेप वर्म

इस प्रकार के कीड़े भी भेड़-बकरियों की आंतों में ही पाए जाते हैं तथा यह कई मीटर लम्बे एवं देखने में फीते की तरह होते हैं। यह कीड़े भी भेड़-बकरियों का खून चूसते हैं तथा उन्हें कमज़ोर कर देते हैं।

उपचार: इस प्रकार के कीड़ों का भी उपचार गोल कीड़े की तरह से भेड़-बकरियों को वर्ष में कम से कम तीन बार पेट के कीड़ों को मारने की दवाई पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार देने से किया जा सकता है।

फेफड़ों व साँस नली के गोल कीड़े (लंग वर्म)

यह कीड़े भेड़-बकरियों के फेंफडों व श्वांस नली में पाये जाते हैं तथा इसके कारण भेड़-बकरियों में वरमिनस न्यूमोनिया हो जाता है। भेड़-बकरियों को खांसी आना, बीमार पशु की नाक से गाढ़ा पानी निकलना शुरु हो जाता है जिसके कारण भेड़-बकरियों को सांस लेने में तकलीफ होने लगती है। फेफड़े खराब हो जाने के कारण जानवर की मौत हो जाती है।

उपचार व बचाव: पशुपालक को इस बीमारी से पीड़ित भेड़ों के मेगनियों की जांच और मृत भेड़ों का शव परीक्षण करवाने से इस रोग का पता लगाया जा सकता है। बीमारी से भेड़-बकरियों को बचाने के लिए जानवरों को ज्यादा समय तक एक चरागाह में नहीं चराना चाहिए, क्योंकि चरागाह में बीमारी एक जानवर से दूसरे जानवर में फैलने का खतरा रहता है। पशुपालक को अपने बीमार भेड़-बकरी का उपचार पशुचिकित्सक की सलाह अनुसार करना चाहिए।

चर्म रोग

अन्य पशुओं की भांति भेड़-बकरियों में भी जूएं, पिस्सू, चिचड़ इत्यादि परजीवी होते हैं, यह भेड़-बकरियों की चमड़ी में अनेक प्रकार के रोग पैदा करते हैं जिससे जानवर के शरीर में खुजली हो जाती है तथा जानवर अपने शरीर को बार-बार दूसरे जानवरों के शरीर व पत्थर या पेड़ से खुजलाता है। इस कारण उस जगह पर जख्म हो जाते हैं तथा उस जगह की चमड़ी सख्त हो जाती है व बाल झड़ जाते हैं। धीरे-धीरे यह भेड़-बकरियों के पूरे शरीर में फैल जाती है तथा एक बीमार जानवर से पूरे झुंड में फैल जाती है, जिससे भेड़ों से ऊन बहुत कम व घटिया प्राप्त होती है।

उपचार एवं रोकथाम: इस बीमारी से पीड़ित भेड़ को स्वस्थ भेड़-बकरियों से अलग कर देना चाहिए। पीड़ित भेड़-बकरियों के जख्मों को लाल दवाई से धोएं व हिमैक्स मलहम को जख्मों पर लगाएं। चिकित्सक की सलाह अनुसार आईवर मैक्टिन इन्जेक्शन लगवाने से इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। पशुपालक को कभी भी इस बीमारी पीड़ित जानवरों को अधिक नमी वाली जगह पर नहीं रखना चाहिए।

हल्क बीमारी (रेबीज रोग)

यह बीमारी भेड़-बकरियों को पागल कुत्तों/लोमड़ी व नेवले के काटने से होती है। यह बीमारी विषाणु द्वारा होती है। इस बीमारी के हो जाने के बाद इसका ईलाज हो पाना सम्भव नहीं है। इसलिए पशुपालकों को सुझाव दिया जाता है कि जब भी भेड़-बकरियों को कोई पागल कुत्ता या लोमड़ी काटती है तो तुरन्त नज़दीक के पशुचिकित्सालय/औषधालय में जाकर इसकी सूचना दें तथा समय रहते इसका टीकाकरण करवाना सुनिश्चित करें।

उपरोक्त विधियों को अपनाकर भेड़-बकरी पालन करने वाले किसान अपने पशुओ का उचित इलाज या प्रबन्धन करके मृत्युदर को कम कर सकते हैं। साथ ही वे बीमारियों पर होने वाले खर्च को कम कर सकते हैं।

पशु स्वास्थ्य के लिए उपयोगी औषधीय बीज व पौधे

सूर्यपाल सिंह एवं हर्षिता सिंह

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार - 125001 (हरियाणा)

भारत वर्ष की पहचान आयुर्वेद और योग गुरु के रूप में प्राचीन काल से ही रही है। प्राकृतिक विवधता के कारण यहाँ अनेकों प्रकार के पेड़ पौधे पाये जाते हैं जिनकी औषधीय गुणों की पहचान चिरकाल से है। आज हम उन पौधों के बीजों की चर्चा करेंगे जो कई बीमारियों का उपचार करने में उपयोगी हैं। प्रतिदिन निम्नलिखित औषधीय पौधों के बीजो का उपयोग कर हम आसानी से अपने पालतू पशुओं को बीमारियों से निजात दिला सकते हैं।

चन्द्रशूर

चन्द्रशूर एक औषधीय फसल है। सम्पूर्ण भारत और तिब्बत में इसकी खेती की जाती है। इसके क्षुप को पशुओं के आहार के काम में लाया जाता है। इसकी पत्तियों को सलाद आदि में भी काम लिया जाता है। इसके क्षुप की लम्बाई 1/2से 1.5 फीट तक होती है। इसके पत्र लम्बे वृंत पर लगे हुए भालाकृति में होते है। पौधे के पुष्प छोटे सफेद रंग की लम्बी मंजरियों में होते है। इस पर लगने वाली फली चक्राकार तथा कोष्ठयुक्त होती है। प्रत्येक कोष्ठ में एक बीज होता है जो लाल रंग के कुछ लम्बे नोंककृति में होते है। अगर इनको जल में भिगो दिया जाए तो इन पर लुआब पैदा हो जाता है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल, बैन्जिल आइसो थायोसाईनेट होता है। इसके बीज में एक विशेष प्रकार का स्थिर तेल, प्रोटीन, वसा, फास्फोरस, कैल्शियम तथा गंधक रहता है। इसका रस कटु और तीखा होता है। अपने इन्हीं औषधीय गुणों के कारण यह कफ एवं वात शामक होता है। आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में इसका प्रयोग कटीशूल, संधिवात, वातरक्त एवं शुक्र दोष आदि में किया जाता है। औषधि रूप में इसके बीजों का इस्तेमाल किया जाता है। आयुर्वेद में इससे चतुर्बीज चूर्ण नामक विशिष्ट योग तैयार किया जाता है।

अश्वगंधा (असगंध)

भारत में अश्वगंधा अथवा असगंध जिसका वानस्पतिक नाम वीथानीयां सोमनीफेरा है। यह एक महत्वपूर्ण औषधीय फसल के साथ-साथ नकदी फसल भी है। अश्वगंधा आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में प्रयोग किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण पौधा है। इसके साथ-साथ इसे नकदी फसल के रूप में भी उगाया जाता है। सभी ग्रथों में अश्वगंधा की महत्ता का वर्णन किया गया है। इसकी ताजी पत्तियों तथा जड़ों में घोंड़े की मूत्र की गंध आने के कारण ही इसका नाम अश्वगंधा पड़ा। विदानिया कुल की विश्व में 10 तथा भारत में 2 प्रजातियाँ ही पायी जाती हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में अश्वगंधा की माँग इसके अधिक गुणकारी होने के कारण बढ़ती जा रही है। यह पौधा ठंडे प्रदेशों को छोड़कर अन्य सभी भागों में पाया जाता है। अश्वगंधा की जड़ों का उपयोग पाउडर बनाकर कमजोरी, दमा, कफ संबंधी बीमारी, अनिद्रा, हृदय रोग एवं दुर्घटना में बने घाव के उपचार में किया जाता है। जड़ों के पाउडर को मधु एवं घी में मिलाकर कमजोरी के लिये प्रांरभिक उपचार के तौर पर किया जाता है। अश्वगंधा जड़ के चूर्ण का सेवन करने से शरीर में ओज तथा स्फूर्ती आती है। यह रक्त में कोलस्ट्राल की मात्रा को कम करने के लिये भी उपयोग किया जाता है। कमर एवं घुटना दर्द में भी उपचार के लिये अश्वगंधा के पाउडर को शक्कर की केण्डी एवं घी के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए।

सर्पगंधा

सर्पगंधा के औषधीय गुण मुख्यतः पौधे की जड़ों में पाये जाते हैं। सर्पगंधा की जड़ में 55 से भी ज्यादा क्षार पाये जाते हैं। लगभग 80 प्रतिशत क्षार जड़ों की छाल में केन्द्रित होते हैं। पौधे की जड़ों में सम्पूर्ण क्षार की मात्रा 0.8-1.3 प्रतिशत तक रहती है। सर्पगंधा के क्षारों को दो समूहों में बाँटा गया है- (i) एजमेलीन समूह तथा (ii) सर्पेन्टीन समूह। एजमेलीन समूह के अन्तर्गत एजमेलीन, एजमेलेलिनीन तथा एजमेलीसीन आते हैं। जबकि सर्पेन्टीन समूह के अन्तर्गत सर्पेन्टीन तथा सर्पेन्टीनीन आते हैं। अन्य में रेसर्पीन रेसीनामीन, योहीमबीन, सर्पाजीन तथा रुकाफ्रीसीन जैसे क्षार आते हैं जिसमें सबसे महत्वपूर्ण रेसर्पीन होता है। अतः अब सर्पगंधा के क्षारों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है-(i) गहरे-पीत वर्ण

के चतुर्थक एनहाइड्रोनियम समाक्षार (ii) मध्य प्रबल इण्डोलीन क्षार तथा (iii) कमजोर समाक्षारीय इण्डोल क्षार। अंत की दो श्रेणियां वर्णहीन होती हैं। सर्पगंधा के पौधे की जड़ों में उपस्थित अजमेलीन, सर्पेन्टीन तथा सर्पेन्टीनीन क्षार केन्द्रीय वात नाड़ी संस्थान को उत्तेजित करते हैं। इसमें सर्पेन्टीन अधिक प्रभावशाली होता है। उक्त तीन क्षारों सहित अन्य सभी क्षार तथा मद्यसारीय सत्व में शामक तथा निद्राकर गुण होते हैं। कुछ क्षार हृदय, रक्तवाहिनी तथा रक्तवाहिनी नियंत्रक केन्द्र के लिए अवसादक होते हैं।रेसर्पीन क्षार औरों की अपेक्षा अधिक कार्यकारी होता है। यह नाड़ी कन्दों में अवरोध उत्पन्न नहीं करता वरन् ऐसा आभास होता है कि रक्तचाप को कम करने का इसका प्रभाव कुछ अंश में स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान के केन्द्रीय निरोध के कारण होता है। सर्पगंधा की जड़ों में क्षारों के अतिरिक्त ओलियोरेसिन, स्टेराल (सर्पोस्टेराल), असंतृप्त एलकोहल्स, ओलिक एसिड, फ्यूमेरिक एसिड, ग्लूकोज, सुकरोज, आक्सीमीथाइलएन्थ्राक्यूनोन एवं खनिज लवण भी पाये जाते हैं। इन सब में ओलियोरेसिन कार्यिकी रूप से सक्रिय होता है तथा औषधि के शामक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी होता है। सर्पगंधा की जड़ें तिक्त पौष्टिक, ज्वरहर, निद्राकर, शामक, गर्भाशय उत्तेजक तथा विषहर होती हैं। भारत में प्राचीन काल में सर्पगंधा की जड़ों का उपयोग प्रभावी विषनाशक के रूप में सर्पदंश तथा कीटदंश के उपचार में होता था। मलेशिया तथा इण्डोनेशिया के उष्ण-कटिबंधीय घने वनों में निवास करने वाली जनजातियां आज भी सर्पगंधा का उपयोग कीटदंश, सर्पदंश तथा बिच्छूदंश के उपचार में करती हैं।

इसके जड़ों के अर्क का उपयोग फोड़े-फुन्सियों के उपचार में भी होता है। जड़ों का अर्क प्रसव पीड़ा के दौरान बच्चे के जन्म को सुलभ बनाने हेतु (बच्चेदानी के संकुचन को बढ़ाने के लिए) दिया जाता है। सर्पगंधा का प्रयोग त्वचा की बीमारियों जैसे सोरेसिस तथा खुजली के उपचार में भी किया जाता है।

पत्थर-चूर

बालों वाली नीली फूल वाली यूरोपीय वार्षिक जड़ी बूटी लंबे समय तक हर्बल दवा में इस्तेमाल होती है और कच्ची खाई जाती है। इसे सलाद के साग के रूप में या पालक की तरह पकाया जाता है। अंग्रेज़ी में पत्थर-चूर शब्द के उदाहरण हैं: कोलियस फोर्सकोली जिसे पाषाणभेद अथवा पत्थर-चूर भी कहा जाता है, उन कुछ औषधीय पौधों में से है, वैज्ञानिक आधारों पर जिनकी औषधीय उपयोगिता हाल ही में स्थापित हुई है। यह औषधि रूप में बहुत ही गुणकारी है। यह औषधि सदियों से भारतवर्ष में ऋषि मुनियों द्वारा हृदय संबंधी रोग, वजन कम करने एवं पाचन शक्ति बढ़ाने में प्रयोग की जाती रही है। इसके अतिरिक्त यह अस्थमा, एग्जिमा, एलर्जी, उच्च रक्तचाप, चर्मरोगों में भी प्रभावी है।

कालमेघ

कालमेघ जंगलों में मिलने वाला औषधीय पौधा है। यह पौधा वर्षा ऋतु में काफी मात्रा में पाया जाता है। यह पौधा एक से दो फुट ऊंचा होता है और उसके फूल छोटे और हल्के नीले रंग के होते हैं। इसके पत्तों में सुंगधित तेल होता है जो मलेरिया, विभिन्न प्रकार के चर्म रोग, जॉन्डिस और अन्य लीवर के रोगों को दूर करने में किया जाता है।

गिलोय

गिलोय मैनीस्पमैसी कुल की बहुवर्षीय बेल के रूप में बढ़ने वाली वनौषधि है। गिलोय में 'ग्लूकोसाइन' गिलोईन नामक तत्व पाया जाता है। पत्तियों में प्रोटीन बहुतायत से पाया जाता है। यह यकृत विकार, कब्ज, ज्वर, जननेन्द्रिय एवं मूत्रेन्द्रिय के रोगों तथा खांसी, दमा, आदि बीमारियों के लिए उपयुक्त औषधि है।

बच

एक बारह-मासी पौधा है जिसकी शाखायें बहुत विस्तृत होती हैं। पत्तियाँ रेखाकार, लंबी, मोटी व मध्य शिरा युक्त होती हैं और 0.7 से 1.7 से.मी. चौड़ी होती हैं। इसके प्रकंद सुगंधित होते हैं। फूल 3 से 8 से.मी. लंबे आकार में बेलनाकार हरे-भूरे रंग के और चारों ओर से वाली से ढ़के हुये होते है। फल छोटे और बेर की तरह गोल आकार के होते हैं। यह पौधा 45 से 60 से.मी. उँचाई का होता है। इसका स्वाद कड़वा होता है।बच की उत्पत्ति भारत एवं मध्यएशिया में है परन्तु अब यह दुनिया भर में पाया जाता है। यह भारत में कश्मीर, मणिपुर, कर्नाटक और उत्तर–पूर्व हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है। मध्यप्रदेश में यह दलदली जगहों में पाया जाता है।बच एक लोकप्रिय औषधीय पौधा है जिसका उपयोग भारत में अनेक आयुर्वेदिक औषधियों में किया जाता है। इसकी पत्तियों से

नींबू की तरह सुगंध आती है और जड़ों से मधुर मीठी गंध आती है। वर्तमान में यह लुप्त प्रजातियों की सूची में है।

लाजवंती

लाजवंती का पौधा एक पौष्टिक पौधे की तरह गुणकारी है। लाजवंती का वानस्पतिक नाम नेप्तुनिया ओलेरसा और मिमोसा पुदिका है। लाजवंती शब्द को अंग्रेजी में मिमोसा पुड़ीका कहा जाता है, जिसका उद्गम लैटिन से हुआ है। इसको छुई मुई, सोने वाला पौधा, सवेंदनशील पौधा भी बोलते है। यह एक ऐसा पौधा होता है, जिसको अगर कोई व्यक्ति छू दे तो यह अपने आप को सिकोड़ कर बंद कर लेता है, फिर थोड़ी देर बाद अपने आप ही खुल जाता है।

कुदरत के दिये गये वरदानों में पेड़-पौधों का महत्वपूर्ण स्थान है। पेड़-पौधे मानवीय जीवन चक्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसमें न केवल भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है बल्कि जीव जगत से नाजुक संतुलन बनाने में भी ये आगे रहते हैं। कार्बन चक्र हो या भोजन श्रृंखला के पिरामिड में भी ये सर्वोच्च स्थान ही हासिल करते हैं। औषधीय पौधे न केवल अपना औषधीय महत्व रखते हैं बल्कि आय का भी एक जरिया होते हैं। शरीर को निरोगी बनाये रखने में औषधीय पौधों का अत्यधिक महत्व होता है। यही वजह है कि भारतीय पुराणों, उपनिषदों, रामायण एवं महाभारत जैसे प्रमाणिक ग्रंथों में इसके उपयोग के अनेक साक्ष्य मिलते हैं। इससे प्राप्त होने वाली जड़ी-बूटियों के माध्यम से न केवल हनुमान ने भगवान लक्ष्मण की जान बचायी थी बल्कि आज की तारीख में भी चिकित्सकों द्वारा मानव एवं पशु रोगोपचार हेतु अमल में लाया जाता है। यही नहीं, जंगलों में खुद-ब-खुद उगने वाले अधिकांश औषधीय पौधों के अद्भुत गुणों के कारण लोगों द्वारा इसकी पूजा-अर्चना तक की जाती है; जैसे तुलसी, पीपल, आक, बरगद तथा नीम इत्यादि। प्रसिद्ध विद्वान चरक ने तो हरेक प्रकार के औषधीय पौधों का विश्लेषण करके बीमारियों में उपचार हेतु कई अनमोल किताबों की रचना तक कर डाली है, जिसका प्रयोग आजकल मानव एवं पशु कल्याण करने के लिए किया जा रहा है।

ऊष्मा तनाव के दौरान देशी, विदेशी व् संकर नस्लों की गायों में हीट शॉक प्रोटीन्स के स्तर व् कोशिका प्रसार दर का तुलनात्मक आंकलन

प्रीति वर्मा, मोनिका सोढ़ी, अंकिता शर्मा, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल - 132001 (हरियाणा)

प्रस्तावना

भारतीय पशुधन में गोवंश का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय गोवंश न केवल सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक बल्कि कृषि क्षेत्र में भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। हमारे देश भारत में कुल 41 देशी गायों की नस्लें हैं जो न केवल प्राकृतिक रूप से विभिन्न कठोर जलवायु व् तनावपूर्ण परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए पूर्णतयः सक्षम हैं बल्कि उत्पादन, प्रजनन और भारवाही शक्ति की क्षमता भी रखती हैं। उदाहरण के लिए भारतीय मूल की गायें जैसे थारपाकर, हरियाणा, साहीवाल, राठी, गिर, कांकरेज और नागोरी इत्यादि उच्च तापमान में भी अपनी अनुकूलता, उत्पादन क्षमता और शक्तिशाली भारवाही क्षमता के लिए प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार भारत में भैंसों की कुल 13 नस्लें हैं, जो अपने अनुकूलन लक्षणों, वसा समृद्ध दूध उत्पादन के लिए जानी जाती हैं। भारतीय भैंसों की भारवाहन शक्ति और मांस स्रोत के साथ ही डेयरी उद्योग में एक विशेष महत्व है और यह कुल दूध उत्पादन का 50 प्रतिशत से अधिक दूध का उत्पादन करती है। हालांकि भैंसें गर्म और आर्द्र जलवायु के जीवन जीने के लिए अनुकूल है, परन्तु फिर भी गर्मी के मौसम के दौरान तेज़ धूप में वे तनाव और संकट के लक्षण प्रदर्शित करती हैं। यह देखा गया है कि उच्च परिवेश तापमान की अवधि के दौरान भैंसों के दूध का उत्पादन, वृद्धि दर और प्रजनन क्षमता कम हो जाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि भैंसों की काली त्वचा और मोटी चमड़ी सौर ऊर्जा को अधिक मात्रा में सोखती है। इसके अलावा, भैंसों में गायों की पसीने की ग्रंथियों के घनत्व का केवल छठा हिस्सा होता है जिस कारण वे अपने शरीर से अधिक मात्रा में गर्मी नहीं निकाल पाती और वो अधिक ऊष्मा तनाव में रहती हैं।

ऊष्मा तनाव डेयरी क्षेत्र के लिए अत्यंत चिंता का विषय है क्योंकि यह डेयरी पशुओं के स्वास्थ्य को काफी प्रभावित करता है। ऊष्मा तनाव के कारण डेयरी पशुओं में नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं जिनके मुख्य लक्षण कुछ इस प्रकार हैं-पानी का अधिक ग्रहण, चारा ग्रहण करने की मात्रा में कमी, हृदय गति व् श्वसन दर में बढ़ोतरी, परिधीय रक्त प्रवाह, शरीर के तापमान का बढ़ना, लार उत्पादन में बढ़ोतरी, दुग्ध उत्पादन में कमी, प्रजनन तथा गर्भाधान क्षमता में कमी (फुक्काय 1981) इत्यादि। सामूहिक रूप से ये सारे परिवर्तन पशुओं में तनाव तथा उनके ख़राब स्वास्थ्य को दर्शाते हैं; जिसके परिणामस्वरूप पशुओं में स्वास्थ्य संबंधी बीमारियां जैसेकि मैस्टाइटिस, रूमेन एसिडोसिस और किटोसिस की आवृत्ति बढ़ जाती है (लिटल व् केम्पबेल, 2002)। ऊष्मागत तनाव के कारण बीमार गायों की लंबे समय तक देखभाल करनी पड़ सकती है। ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन भविष्य में पशुधन उत्पादन प्रणालियों की स्थिरता के लिए प्रमुख खतरा बन सकता है। वर्तमान में बढ़ते तापमान के क्रम को देखते हुए यह उम्मीद है कि इस प्रकार के कुप्रभाव अभी और बढ़ेंगे।

पशुओ में गर्मी सहन करने की एक सीमा होती हैं। पशुधन, थर्मोन्यूट्रल क्षेत्र अर्थात् परिवेश पर्यावरणीय तापमान में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करते हैं। इस सीमा से ऊपर व् नीचे बढ़ता व् घटता तापमान पशुओं में तनाव की स्थिति को उत्पन्न करता है (रोएनफेल्ड, 1998)। अधिक तापमान, उच्च आद्रता व् दीप्तीमान ऊर्जा, ऊष्मा तनाव को बढ़ाने के लिए तीन महत्वूर्ण पर्यावरणीय कारक हैं। तापमान-आर्द्रता सूचकांक (टी एच आई), तापमान और आर्द्रता का ऐसा संयोजन हैं जिसके द्वारा गर्मी के मौसम के दौरान पशुओं में तनाव के स्तर का मूल्यांकन किया जा सकता है।

ऊष्मा तनाव को हम विभिन्न शारीरिक मापदंडों जैसे कि शारीरिक तापमान, रेक्टल तापमान, श्वसन दर और नाड़ी दर को माप कर मात्राबद्ध कर सकते हैं। इसके अलावा, ऊष्मा तनाव के दौरान पशु आण्विक व् कोशिकीय स्तर पर भी प्रतिक्रिया देते

हैं। ऊष्मा तनाव की स्थिति में जीवित व् अनुकूलित रहने के लिए सभी कोशिकाओं में "कोशिका तनाव प्रतिक्रिया" नामक आणविक रक्षा तंत्र सक्रिय होता है। उदाहरण के लिए हीट शॉक प्रोटीन्स (एचएसपी) नामक मॉलीक्यूलर चेपेरोन्स की उच्च तापमान में ऐसी प्रमुख प्रोटीन्स के रूप में पहचान की गई है जिनकी अभिव्यक्ति ऊष्मा तनाव के दौरान बढ़ जाती है। हीट शॉक प्रोटीन्स को उनके आणविक वजन के हिसाब से वर्गीकृत किया गया हैं जैसेकि एचएसपी 100, एचएसपी 90, एचएसपी 70, एचएसपी 60, एचएसपी 40, व् एचएसपी 27। हीट शॉक प्रोटीन्स को पहली बार उच्च तापमान में ड्रोसोफिला की लार ग्रंथियों में जांचा गया था (रिटॉस, 1964)। यह प्रोटीन्स तनावपूर्ण स्थितियों में कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न होकर क्षतिग्रस्त कोशिकाओं की रक्षा करते हैं और प्रोटीन फोल्डिंग व् नव संश्लेषित पॉलीपेप्टाइड के स्थानान्तरण में सहायता करते हैं (गेथिंग व् सैम्ब्रुक 1992; पार्सेल व् लिंडक्विस्ट 1993)।

हैंनसेन (2004) ने अपने शोध कार्य से यह जानकारी दी थी कि ज़ेबू पशुओं में यूरोपीयन मूल की टौरीन गायों की तुलना में गर्मी के तनाव को सहन करने की बेहतर क्षमता होती है। हालांकि,अब तक ऐसा कोई भी शोध कार्य नहीं किया गया है जिसमें भारतीय देशी गायों (बॉस इंडिकस), विदेशी गायों (बॉस टॉरस) और भैंस (बुबैलस बुबैलिस) में उच्च तापमान आद्रता सूचकांक पर सेल्युलर सहिष्णुता की तुलना की गई हो। इसलिए, वर्तमान अध्ययन का मुख्य उद्देश्य, उच्च तापमान आद्रता सूचकांक 85 पर देशी, विदेशी व् संकर नस्लों की गायों में एचएसपी 27, एचएसपी 70 और एचएसपी 90, इंटरल्युकिन-6 (आईएल 6) और कोर्टिसोल की अभिव्यक्ति को एलाइसा विधि व् क्यू पीसीआर द्वारा जांचना था, साथ ही सभी पशुओं की कोशिका प्रसार दर की प्रतिलेखन स्थिरता का मूल्यांकन कर उनकी गर्मी को सहन करने की क्षमता की तुलना करना था।

गर्मी तनाव के दौरान, पशु आमतौर पर न्यूट्रोफिल संख्या (न्यूट्रोफिलिया) में वृद्धि और लिम्फोसाइट संख्या में कमी दर्शाते हैं। चूंकि न्यूट्रोफिल और लिम्फोसाइट्स तनाव में विपरीत तरीके से प्रभावित होती हैं, अतः शोधकर्ताओं ने पशुओं में ऊष्मा तनाव प्रतिक्रिया का आकलन करने के लिए न्यूट्रोफिल लिम्फोसाइट्स अनुपात (एन:एल अनुपात) का उपयोग किया है (स्वान और हिकमैन, 2014)। यह एक स्थापित तथ्य है कि तनावग्रस्त पशुओं में प्लाज्मा कोर्टिसोल स्तर में वृद्धि न्यूट्रोफिल जैविक गतिविधि को प्रभावित करती है। यह न्यूट्रोफिल के सतह (बर्टन और रोनाल्ड, 2003) पर एल-सिलेक्टिन की अभिव्यक्ति को कम करता है जो संक्रमण की साइट पर न्यूट्रोफिल के प्रवास को प्रभावित करता है (कान्सास, 1996)। इसलिए वर्तमान अध्ययन में, गर्मी और आर्द्र मौसम के दौरान पशुओं में एन: एल अनुपात का विश्लेषण भी किया गया है।

सामग्री एवं परीक्षण विधि

इस अध्ययन के लिए देशी गाय (साहीवाल), विदेशी गाय (होल्स्टीन फ्रीज़ियन), संकर गाय (करण फ्रीज़) और मुर्रा भैंस के कुल 48 स्वस्थ जानवर लिए गए थे। साहीवाल गाय, करण फ्रीज़ गाय व् मुर्रा भैंसों के रक्त के नमूने (6 मिली.) राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल से लिए गए थे और होल्स्टीन गाय के रक्त के नमूने पास के गांव के एक व्यावसायिक डेयरी फार्म से लिए गए थे। रक्त के नमूने जुलाई माह के अत्यधिक गर्मी वाले मौसम में लिए गए थे जब अधिकतम तापमान 41 ± 1° सेंटीग्रेड व् तापमान आद्रता सूचकांक ≥ 85 था। तापमान आद्रता सूचकांक मूल्य 65 से लेकर 72 तक आरामदायक एवं स्थिर माना जाता है। जब यह सूचकांक 75 -78 तक होता है तो पशु हल्के तनाव की स्थिति में होता है, और जब ये सूचकांक 80 या इससे अधिक होता है तो पशु अत्यधिक गर्मी व् तनाव की स्थिति में होता है। वर्तमान अध्ययन का योजनाबद्ध चित्रांकन चित्र 1 में प्रस्तुत किया गया है।

हीट शॉक प्रोटीन्स का एलाइसा टेस्ट

सीरम के अलगाव के लिए, रक्त के नमूनों को 3,000 आरपीएम पर 15 मिनट के लिए सेंट्रीफ्यूज किया गया। प्रत्येक जानवर के सीरम नमूनों में एचएसपी 70, 90, 27, इंटरल्यूकिन-6 (आईएल 6) और कोर्टिसोल की एकाग्रता का निर्धारण करने के लिए एक व्यावसायिक एलाइसा किट (लाइफ साइंसेज एलिसा किट) का इस्तेमाल निर्माता के निर्देशों अनुसार किया गया।

परिधीय रक्त मोनोन्यूक्लियर कोशिकाओं (पीबीएमसी) का अलगाव

घनत्व सेंट्रिफ्यूगेशन का उपयोग कर एकत्र किये गए रक्त नमूनों से परिधीय रक्त मोनोन्यूक्लियर कोशिकाओं को अलग किया गया (किशोर व् अन्य, 2016)।

- रक्त नमूनों को 1X पीबीएस (कैल्शियम$^{+2}$, मैग्नीशियम$^{+2}$ मुक्त) (हाईक्लोन) से 1:1 के अनुपात में पतला किया गया। भैंसों के रक्त को 1:1 व् गायों के रक्त को 1:3 के अनुपात में धीरे-धीरे हिस्टोपैक-1077 (सिग्मा- एल्ड्रिच) पर डाला गया और 30 मिनट के लिए 400 गुरुत्व पर सेंट्रीफ्यूज किया गया।
- इसके बाद प्लाज्मा को निकाल कर मोनोन्यूक्लियर कोशिकाओं की सफेद रिंग को एक नई 15 मिली. की ट्यूब में अलग किया गया।
- अलग किये गए कोशिकाओं में से लाल रक्त कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए उन्हें 2.0 मिली. आरबीसी लाइसिस बफर में मिलाकर 5 मिनट के लिए रखा गया और फिर लाइसिस के तुरंत बाद 8.0 मिली. 1X पीबीएस मिलाकर 10 मिनट के लिए 260 गुरुत्व पर सेंट्रीफ्यूज किया गया। इसके बाद सुपरनेटेन्ट को निकाल कर पीबीएमसी की पेलेट को 2 बार 1X पीबीएस के साथ साफ़ किया गया।

कोशिका प्रसार परख

कोशिकाओं की गिनती के लिए शुद्ध पीबीएमसी (9.0 माईक्रोलीटर) के एक छोटे से एलिकोट को 1.0 माईक्रोलीटर ट्राइफन ब्लू के साथ मिलाया गया तथा हीमोसाइटोमीटर नामक उपकरण द्वारा कोशिकाओं की गिनती की गई। पीबीएमसी के कोशिका प्रसार दर की जांच साइकवांट कोशिका प्रसार परख (इनविट्रोजेन) की मदद से की गई। साइकवांट कोशिका प्रसार परख इस सिद्धांत पर आधारित है कि किसी भी प्रकार की कोशिका में डीएनए की मात्रा स्थिर होती है। इसलिए डीएनए की मात्रा पर आधारित ऐसी विधि हमें कोशिकाओं कि सटीक संख्या प्रदान करने में मदद करती है। पूरी प्रक्रिया के दौरान हमने निर्माता के निर्देशों का पालन किया। संक्षेप में, पहले शुद्ध पीबीएमसी की पेलेट्स को 1X एचबीएसएस बफर के साथ मिश्रित किया। तत्पश्चात्, 50 माइक्रोलीटर कोशिका एलीकोट को माइक्रोप्लेट के तीन वेल्स में डाला। प्रत्येक माइक्रोप्लेट वेल में, 50 माइक्रोलीटर 2X साइक्कांट डाई डालकर प्लेट को 37 सेल्सियस ताप पर 45 मिनट के लिए रख दिया। इस ऊष्मायन के दौरान डाई डीएनए के साथ एक संतुलित रूप से जुड़ जाती है और हमें एक स्थिर फ्लोरोसेंस एंडपॉइंट प्राप्त होती है। अंत में प्रत्येक नमूने की फ्लोरोसेंस तीव्रता को फ्लोरोसेंस प्लेट रीडर में 530 नैनोमीटर की तरंग दैर्ध्य पर मापा गया।

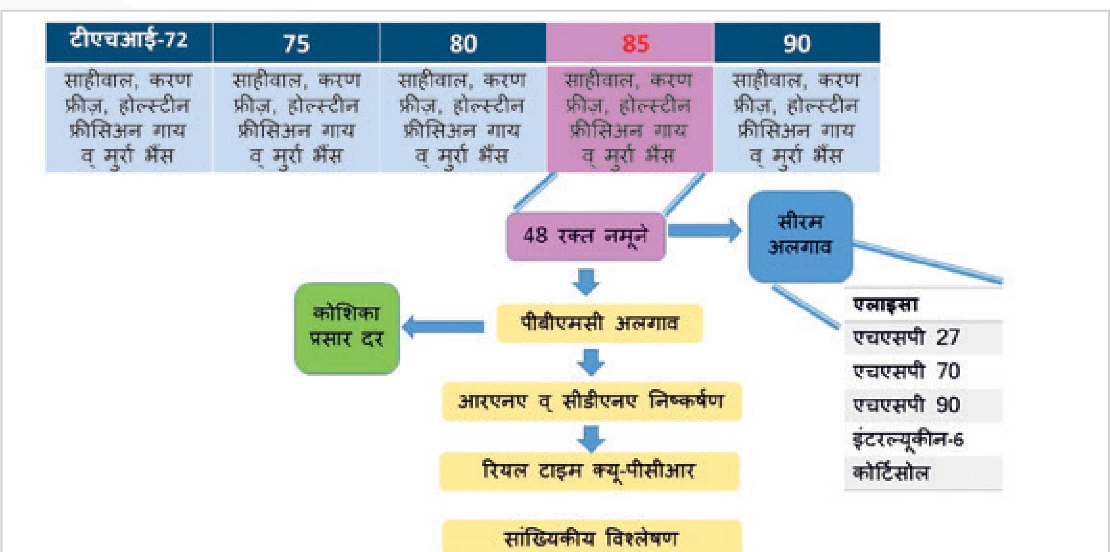

चित्र 1: अध्ययन का योजनाबद्ध चित्रांकन

आरएनए व् सीडीएनए निष्कर्षण

सभी पशुओं के पीबीएमसी से आरएनए को निकालकर उसे आरएनईज़ी मिनी किट कॉलम (काइजेन, जर्मनी) द्वारा डीएनए मुक्त आरएनए बनाया गया और उसके बाद सभी आरएनए के नमूनों से सीडीएनए सिंथेसिस किट (इनविट्रोजेन) का उपयोग कर सीडीएनए बनाया गया। उसके बाद सभी सीडीएनए नमूनों में एचएसपी 27, एचएसपी 70, और एचएसपी 90 की अभिव्यक्ति का विश्लेषण किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण

परिणाम का अध्ययन मध्यमान ± मानक त्रुटि के रूप में व्यक्त किया गया है। विभिन्न पशुओं के बीच में विश्लेषणात्मक वैरिएबल्स के महत्वपूर्ण अंतर की उपस्थिति व् अनुपस्थित को जांचने के लिए ग्राफ पैड प्रिस्म वर्ज़न 5.0 सांख्यिकीय सॉफ्टवेयर की सहायता से एनोवा का उपयोग किया गया।

परिणाम और विवेचना

इस अध्ययन में विभिन्न एचएसपी की एलाइसा विधि द्वारा जांच करने पर यह देखा गया कि गर्मी के मौसम के दौरान एचएसपी 27, एचएसपी 70 और एचएसपी 90 का सीरम स्तर, साहीवाल गाय और मुर्रा भैंस की तुलना में करण फ्रीज़ और होल्स्टीन फ्रीज़ियन गाय में सबसे अधिक था (चित्र 2)। क्यू-पीसीआर के परिणामो में भी यही देखा गया कि साहीवाल गायों और मुर्रा भैंस की तुलना में होल्स्टीन फ्रीज़ियन और करण फ्रीज़ गायों में एचएसपी 27, एचएसपी 90 और एचएसपी 70 की अभिव्यक्ति उच्चतम थी।

पीबीएमसी प्रसार दर के विश्लेषण से यह संकेत मिलता है कि साहीवाल गाय और मुर्रा भैंस गर्मी तनाव के लिए अधिक प्रतिरोधी हैं क्योंकि उनके कोशिका प्रसार दर में जो गिरावट देखी गई (चित्र 3) वो होल्स्टीन फ्रीज़ियन और करण फ्रीज़ गाय की तुलना में काफी कम थी। हमारे आंकड़े यह दर्शाते हैं की उच्च तापमान आद्रता सूचकांक (टीएचआई) पर संकर और विदेशी पशुओं की तुलना में भारतीय देशी पशु नस्लों में बेहतर सेल्युलर सहिष्णुता है।

न्यूट्रोफिल/लिम्फोसाइट (एन/एल) अनुपात भी साहीवाल गाय और मुर्रा भैंस (चित्र 4) में कम, जबकि होल्स्टीन फ्रीज़ियन और करण फ्रीज़ गाय में ज्यादा था जो यह दर्शाता है कि विदेशी नस्ल और संकर नस्ल की गाय के मुकाबले साहीवाल गाय और मुर्रा भैंस में ऊष्मा तनाव कम है। इसलिए ये गर्मी के मौसम में विदेशी व् संकर की गायों के मुकाबले कम तनाव ग्रस्त रहती हैं।

निष्कर्ष के तौर पर गर्मी के मौसम में साहीवाल गाय में हीट शॉक प्रोटीन्स 27, 70 व् 90, इंटरल्यूकीन-6 और कोर्टिसोल की

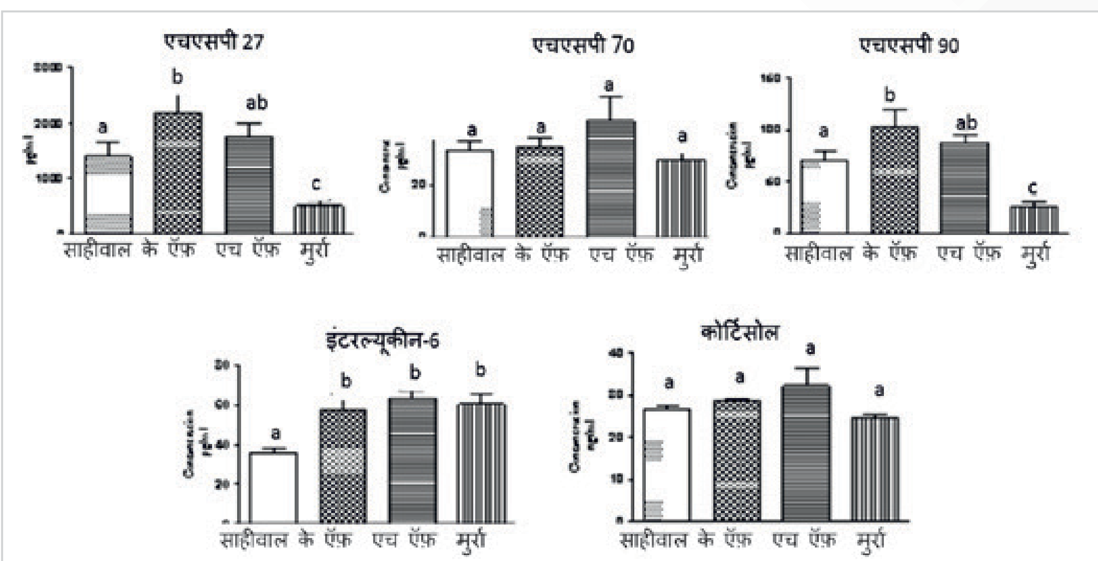

चित्र 2: टीएचआई-85 पर विभिन्न प्रकार की गायों और मुर्रा भैंसों में हीट शॉक प्रोटीन्स, इंटरल्यूकीन-6, व् कोर्टिसोल का सीरम स्तर

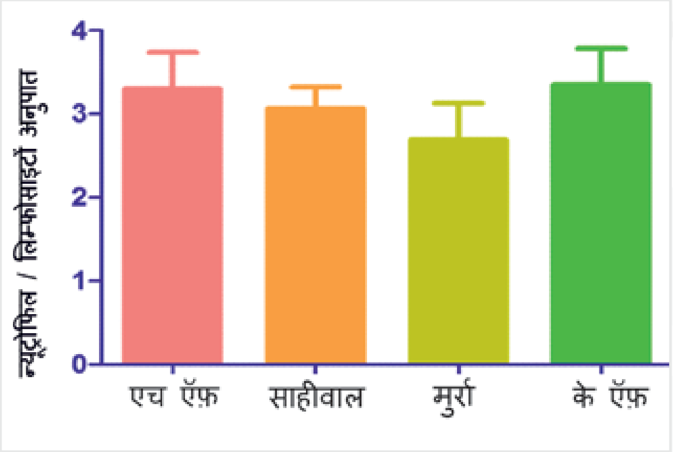

चित्र 3: न्यूट्रोफिल / लिम्फोसाइटों (एन/ एल) अनुपात

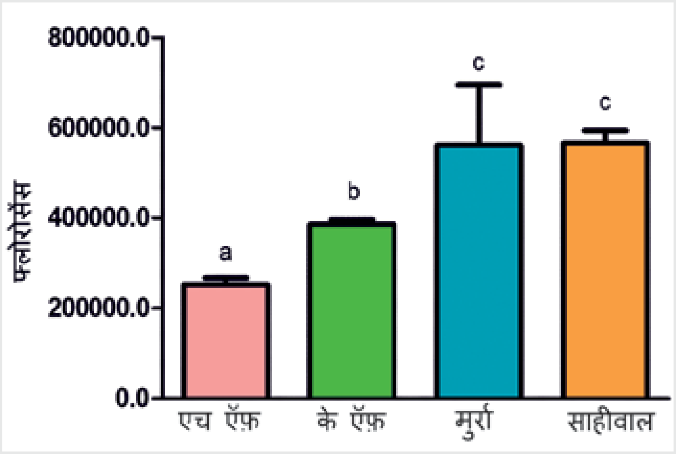

चित्र 4: टीएचआई-85 पर विभिन्न प्रकार की गायों और मुर्रा भैंस में पीबीएमसी की प्रसार प्रतिक्रिया

अभिव्यक्ति व् कोशिका प्रसार दर में न्यूनतम परिवर्तन देखा गया जो यह दर्शाता हैं कि साहीवाल गाय में विदेशी गाय, संकर गाय और भैंस की तुलना में अधिक सेल्यूलर सहिष्णुता है और यह गर्मी के मौसम में भी जीवन जीने के लिए बेहतरीन रूप से सक्षम है। वहीं दूसरी तरफ गर्मी के मौसम में करण फ्रीज़ एवं होल्स्टीन फ्रीज़ियन गाय में हीट शॉक प्रोटीन्स 27, 70 व् 90 की बढ़ती अभिव्यक्ति व् कम कोशिका प्रसार दर यह प्रमाणित करती है कि विदेशी और संकर नस्ल की गाय गर्मी के मौसम में अधिक संवेदनशील होती हैं और वे अधिक ऊष्मा तनाव में रहती है। हीट शॉक प्रोटीन्स की बढ़ती अभिव्यक्ति उन्हें ऊष्मा तनाव से लड़ने में सहायता करती है।

सारांश

वर्तमान अध्ययन में तापमान नमी सूचकांक (टीएचआई) 85 के दौरान साहीवाल (देशी नस्ल), करण फ्रीज़ (संकर नस्ल), होल्स्टीन फ्रीज़ियन (विदेशी नस्ल) गायों और मुर्रा भैंस से लिए गए रक्त के नमूनों से सीरम व् परिधीय रक्त मोनोन्यूक्लियर कोशिकाओं (पीबीएमसी) का अलगाव कर उनमें हीट शॉक प्रोटीन्स (एचएसपी 27, एचएसपी 70 व् एचएसपी 90), कोर्टिसोल और इंटरल्यूकीन-6 के स्तर का विश्लेषण किया गया और विभिन्न कोशकीय मापदंडों जैसेकि सेल्युलर (कोशिका) प्रसार दर और न्यूट्रोफिल/लिम्फोसाइट (एन/एल) अनुपात का भी अध्ययन किया गया। इस शोध कार्य के लिए साहीवाल, करण फ्रीज़ (के ऍफ़) और होल्स्टीन फ्रीज़ियन (एच ऍफ़) गायों और मुर्रा भैंस के कुल 48 स्वस्थ जानवरों को चयनित किया गया। एलाइसा विधि द्वारा आंके गए सीरम के नमूनों के विश्लेषण से यह पता चला कि एचएसपी 27, एचएसपी 70 और एचएसपी 90 की सीरम सांद्रता साहीवाल गायों और मुर्रा भैंस की तुलना में करण फ्रीज़ और होल्स्टीन फ्रीज़ियन गायों में अपेक्षाकृत अधिक थी। इसी तरह की प्रवृत्ति कोर्टिसोल और इंटरल्यूकीन-6 के लिए भी देखी गई। क्यू पीसीआर का उपयोग कर एमआरएनए अभिव्यक्ति विश्लेषण से यह पता चला कि साहीवाल गायों और मुर्रा भैंस की तुलना में होल्स्टीन फ्रीज़ियन और करण फ्रीज़ गायों में एचएसपी 27, एचएसपी 70 और एचएसपी 90 की अभिव्यक्ति उच्चतम थी। कोशिका विश्लेषण से यह जानकारी मिली की टीएचआई -85 पर विभिन्न प्रकार की गायों और मुर्रा भैंस में पीबीएमसी की प्रसार दर साहीवाल गायों और मुर्रा भैंस की तुलना में होल्स्टीन फ्रीज़ियन और करण फ्रीज़ गायों में काफी कम और न्यूट्रोफिल/ लिम्फोसाइट (एन/एल) अनुपात सबसे ज़्यादा थी। अतः इस अध्ययन से प्राप्त आंकड़े यह बताते हैं कि साहीवाल गायों एवं मुर्रा भैंसों में सेल्युलर सहिष्णुता, संकर तथा विदेशी पशुओं की अपेक्षाकृत अधिक है और यह नस्लें हमारे देश के जलवायु के लिए पूर्णरूप से अनुकूलित है।

सन्दर्भ

फुक्वाय जे डब्लयू (1981). हीट स्ट्रेस पशु उत्पादन को प्रभावित करता है। जर्नल ऑफ़ एनिमल साइंस, 52:164-174.

गेथिंग एम जे, साम्ब्रूक जे (1992). कोशिकाओं में प्रोटीन फोल्डिंग, नेचर 355 :33 -45

परसेल डी ए, लिंडक्विस्ट एस (1993) तनाव सहिष्णुता में गिरावट और क्षतिग्रस्त प्रोटीन के पुनर्सक्रियन में हीट शॉक प्रोटीन्स की भूमिका। एनुअल रिव्यु ऑफ़ जेनेटिक्स, 27: 437-496.

लिटल एस व् केम्पबेल जे (2002). गर्मी के तनाव से लड़ती सहनशील ऑस्ट्रेलियाई डेरी गाय। डेरी ऑस्ट्रेलिया, 52.

हैंनसेन पी जे (2004). जेबू पशुओं में थर्मल तनाव के दौरान शारीरिक और सेलुलर अनुकूलन। एनिमल रिप्रोडक्शन साइंस, 83:349–360.

अमित किशोर, मोनिका सोढ़ी, अंकिता शर्मा, उमेश कुमार शांडिल्य, अशोक मोहंती, प्रीती वर्मा, संदीप मान, मनीषी मुकेश (2016). हीट शॉक प्रोटीनस और कोशिका प्रसार दर की ट्रांसक्रिप्शन स्थिरता ग्रीष्मकालीन तनाव के लिए साहीवाल (बॉस इंडिकस) गाय के पीबीएमसी में सुपीरियर कोशकीय सहिष्णुता का साक्ष्य प्रदान करती है. जर्नल ऑफ़ वेटिरिनरी साइंस, 2(1):34–40

बर्टन जे एल और रोनाल्ड, जे ई (2003). प्रतिरक्षा और मास्टिटिस: पुरानी बीमारी के लिए कुछ नए विचार। वेटिरिनरी क्लिनिक्स:फ़ूड एनिमल प्रैक्टिस ; 19 (1): 1-45

स्वान, एम् पी व् हिकमन, डी एल (2014).चूहों में तनाव के उपाय के रूप में न्यूट्रोफिल-लिम्फोसाइट अनुपात का मूल्यांकन। लैब एनिमल, 43 (8):276

रोएनफेल्ड एस, 1998. आप गर्मी के तनाव को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं। डेयरी प्रबंधन 35: 6-12।

उत्तराखंड में मानव-वन्यजीव संघर्ष एवं पशुपालन

दीपिकेश जोशी एवं डी वी सिंह

गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर - 263145 (उत्तराखंड)

उत्तराखंड को 'देवभूमि' के नाम से जाना जाता है। इस राज्य का गठन 9 नवम्बर सन् 2000 को देश के 27वें राज्य के रूप में हुआ था। उत्तराखंड राज्य की सीमा पूर्व में नेपाल, पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम में हिमाचल प्रदेश, उत्तर में तिब्बत, दक्षिण में उत्तर प्रदेश तथा दक्षिण-पश्चिम में हरियाणा से लगी हुई है। उत्तराखंड भौगोलिक रूप से दो मंडलों (कुमाऊँ और गढ़वाल) तथा 13 जिलों में बंटा हुआ है। सन् 2011 में हुई जनगणना के अनुसार उत्तराखंड राज्य 10,086,292 की जनसंख्या के साथ देश के समस्त राज्यों की तुलना में बीसवें स्थान पर था।

उत्तराखंड विभिन्न पशु-पक्षियों तथा पौधों की प्रजातियों का समंदर है। भारत का सबसे पुराना राष्ट्रीय उद्यान, जिम कॉर्बेट राष्ट्रीय उद्यान, नैनीताल जिले के रामनगर में स्थित है। इसके साथ ही चमोली जिले में फूलों की घाटी तथा नंदा देवी राष्ट्रीय उद्यान, हरिद्वार जिले में राजाजी तथा गोविन्द पशु विहार राष्ट्रीय उद्यान तथा उत्तरकाशी जिले में गंगोत्री राष्ट्रीय उद्यान स्थित है। उत्तराखंड का राजकीय पशु कस्तूरी मृग तथा राजकीय पक्षी हिमालयन मोनाल है। कुमाऊँ मंडल में नैनीताल, कौसानी तथा रानीखेत और गढ़वाल मंडल में हरिद्वार, देहरादून, मसूरी तथा ऋषिकेश दर्शनीय स्थल हैं। इसके साथ ही केदारनाथ, बद्रीनाथ, यमुनोत्री तथा गंगोत्री को उत्तराखंड के चार धामों के नाम से जाना जाता है, जहां प्रतिवर्ष देश-विदेश से हजारों पर्यटक दर्शन करने तथा घूमने आते हैं। कुमाऊँ मंडल तथा गढ़वाल मंडल विकास निगमों ने कुमाऊँ और गढ़वाल के सभी पर्यटक स्थलों पर पर्यटकों के लिए रेस्ट हाउस की व्यवस्था की हुई है, जिनमें पर्यटक अत्यंत सुविधा के साथ सफर से अल्पविराम ले सकते हैं।

उत्तराखंड का भौगोलिक क्षेत्रफल 53,600 वर्ग किमी है, जिसमें से लगभग 32056 वर्ग किमी, 71% वनों द्वारा घिरा हुआ है। राज्य में वन्य क्षेत्र की अधिकता के कारण ही ब्रिटिश राज के समय से ही पहाड़ी क्षेत्रों के वनों में वन-पंचायतों की व्यवस्था है, जिसमें जंगलों के करीब रहने वाले लोग ही जंगलों की सुरक्षा तथा रख-रखाव करते हैं। यह राज्य सन् 1973 में व्यापक रूप से पेड़ों की रक्षा के लिए हुए 'जंगल सत्याग्रह' - चिपको आन्दोलन का भी गवाह रहा है, जिसमें गाँवों के लोगों खासकर महिलाओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। इस आन्दोलन की शुरुआत गौरा देवी ने की थी जिनका चंडी प्रसाद भट्ट तथा सुन्दरलाल बहुगुणा जी ने साथ दिया था।

उत्तराखंड राज्य की भूमि एक ऐसा पारिस्थितिक तंत्र प्रदान करती है जिसमें विभिन्न पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तुओं के द्वारा बहुत आसानी से अपनी संख्या बढ़ाई जा सकती है। चीतल, कस्तूरी मृग, जंगली भालू, नील गाय, जंगली सूअर, जंगली हाथी, तेंदुआ, सियार, लोमड़ी तथा लंगूर उत्तराखंड की वन्यजीव सम्पदा के अंतर्गत पाए जाते हैं। पिछले एक दशक में जंगली जानवरों द्वारा फसल बर्बाद करने तथा मनुष्य पर हमले की घटनाएं अत्यधिक बढ़ रही हैं, जिसके कारण मनुष्यों और जंगली जानवरों के बीच हो रही नकारात्मक पारस्परिक क्रिया ने एक जंग का रूप ले लिया है। इस जंग की कीमत मनुष्य और वन्यजीव दोनों को जान गंवाकर चुकानी पड़ रही है।

तेंदुओं द्वारा मनुष्यों पर हमले की लगभग 200 घटनाएं पिछले वर्षों के दौरान प्रकाश में आई हैं, जिसमें सन् 2005 में पौढ़ी गढ़वाल, चमोली तथा अल्मोड़ा जिले में हुई 60 से अधिक मौतें भी शामिल हैं। राज्य गठन से अब तक 400 से अधिक लोग वन्यजीवों के हमलों में मारे जा चुके हैं जबकि एक हजार से अधिक लोग घायल हुए हैं।

वन्यजीवों द्वारा मनुष्य पर हमलों की संख्या में पिछले कुछ वर्षों से बढ़ते शहरीकरण तथा जानवरों के शिकार के कारण बढ़ोत्तरी हो रही है। वन्यजीवों के घरों के उजड़ने तथा उनकी संख्या में कमी आने का प्रमुख कारण वन्यजीवों का शिकार है जो उनके

आहार-क्रम में बाधा उत्पन्न करता है, जिसके कारण वे रिहायशी इलाकों में घुस आते हैं। जंगल और विकास के बीच सामंजस्य का अभाव भी इस संघर्ष को अधिक हवा दे रहा है। जंगलों से गुजर

ऊधमसिंह नगर जागरण

किसान पर तेंदुए का हमला

गंभीर रूप से हुआ जख्मी, सीएचसी में ... खेत में गेहूं काटते समय सुबह की घटना

बाइक से पिकअप टकराई, दो की मौत

3.30 ग्राम स्मैक के साथ तस्कर दबोचा

मानव-वन्यजीव संघर्ष की घटनाएं

रहे सड़क व रेल मार्गों के साथ ही विभिन्न परियोजनाओं के कारण वन्यजीवों के पारंपरिक गलियारे बाधित हुए हैं। समय बीतने के साथ ही जंगलों के करीब रह रहे लोगों की सहनशीलता कम हो रही है जिसके कारण वन्यजीव मनुष्य द्वारा हमलों के शिकार बनते जा रहे हैं जिससे उनके प्राणों को खतरा बना हुआ है। ज़्यादातर जगहों पर वन्यजीवों के डर से किसान अपने खेत और गाँव, दोनों ही छोड़ने को मजबूर हैं। यदि मानव-वन्यजीव संघर्ष में तेजी आई है तो इसके लिए मानव ही जिम्मेदार है।

इस संघर्ष को थामने के लिए अब कोरी बयानबाजी से काम नहीं चलेगा। मनुष्य और वन्यजीव, दोनों को सुरक्षित रखने में वन महकमा अहम् है। वन और वन्यजीव विभाग मानवीय मृत्यु तथा फसलों की बर्बादी हेतु लोगों को मुआवजा प्रदान करता है पर यह काफी नहीं है। वन्यजीव बढ़ रहे हैं तो उनके लिए जंगल में भोजन और विकास पर ध्यान देना भी विभाग का ही दायित्व है। जिन वन्यजीवों के साथ संघर्ष पर अंकुश लगाना है उनमें तेंदुआ, स्नो लेपर्ड, भूरा भालू, काला भालू और जंगली सूअर शामिल हैं।

केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने गंभीरता दिखा संघर्ष विराम की जिम्मेदारी देहरादून स्थित भारतीय वन्यजीव संस्थान को सौंपी है। इस संस्थान की योजना के अनुसार कुछ वन्यजीवों की संख्या को काबू करने का निर्णय लिया गया है, जिनमें जंगली सूअर, रिसस मकाउ तथा नीलगाय शामिल हैं। भारत सरकार ने जंगली सूअर को वरमिन अर्थात् दरिंदा घोषित किया है जिसके कारण गाँव के लोगों को इन जंगली सूअरों को गोली मारने की पूरी छूट दी गयी है, ताकि वे अपने खेतों की रक्षा कर सकें तथा इन सूअरों की संख्या भी नियंत्रण में रहे। जिन वन्यजीवों को जनसंख्या नियंत्रण के अंतर्गत लाया गया है उनमें रिसस मकाउ भी शामिल है जो एक प्रकार के बन्दर की प्रजाति है। इसकी शुरुआत चिड़ियापुर रेस्क्यू सेंटर, हरिद्वार में हो चुकी है। इस प्रजाति की शारीरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित कर जनसँख्या नियंत्रण की शुरुआत की भी तैयारी है जिनमें मादा बंदरों को इम्यूनिटी कॉन्ट्रसेप्टिव इंजेक्शन लगाया जाएगा। इस वैक्सीन के बाद मादा बंदर छह माह तक नर से सम्बन्ध नहीं बनाती है। इसके अलावा यूटरस (गर्भाशय) को ब्लॉक करने वाले जेल पर भी विचार किया जा रहा है। नीलगाय की सँख्या को नियंत्रित करना भी केंद्र सरकार का लक्ष्य है, क्योंकि यह फसल को बहुत नुकसान पहुंचाती है। जिन राज्यों में नीलगाय की जनसँख्या को नियंत्रित करने का लक्ष्य रखा गया है उनमें उत्तराखंड भी शामिल है। भारतीय वन्यजीव संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. एस. सत्यकुमार के अनुसार उत्तराखंड के साथ ही हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर तथा सिक्किम में मानव-वन्यजीव संघर्ष पर अंकुश लगाने की दिशा में धरातल पर कार्य किया जाएगा।

उत्तराखंड पशुधन के सन्दर्भ में एक अत्यंत उत्कृष्ट राज्य है। सन् 2012 में भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा कराई गई उन्नीसवीं पशुधन गणना में राज्य में कुल पशुधन सँख्या 4794730 पायी गयी जिनमें से 4689261 ग्रामीण क्षेत्रों तथा 105469 शहरी इलाकों में थी। उत्तराखंड में 2993890 गाय तथा भैंसें, 1367413 बकरियां, 368756 भेड़ें, 16358 घोड़े, 19907 शूकर तथा 62 याक इस पशुधन गणना में पाए गए। यह सभी पशु विभिन्न रूपों से राज्य की अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। एक तरफ जहां गाय तथा भैंसों के दूध से सरकार 'आँचल' नामक अर्ध-सरकारी डेयरी को-ऑपरेटिव चला रही है, वहीं दूसरी ओर बकरियां अत्यंत दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में रह रहे लोगों के आहार के लिए दुग्ध उत्पादन में सहायक हैं। राज्य के तीर्थ स्थानों जैसे केदारनाथ, यमुनोत्री तथा गंगोत्री में घोड़ों तथा खच्चर का उपयोग यात्रियों को लाने तथा ले जाने के लिए बहुत समय से किया जा रहा है।

पशुधन द्वारा प्राप्त यह सभी उत्पाद तथा सेवाएं उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। वन्य जीवों के द्वारा इन पशुधन पर किये गए आक्रमण से इनकी संख्या में कमी आ रही है जिससे राज्य की अर्थव्यवस्था पर असर हो रहा है। जंगल के पास बसे गावों में घास चरती हुई गाय या भैंस पर जंगली जानवर का हमला अब आम बात हो गयी है। यही हालत घोड़ों, बकरियों तथा भेड़ों पर भी लागू होती है। पशुधन के कम होने से राज्य के कुल दुग्ध उत्पादन में कमी आई है तथा घोड़ों के कम होने से पर्यटन से होने वाले मुनाफे में भी गिरावट दर्ज की गयी है। अगर वन्य जीवों का आक्रमण इसी स्तर से बढ़ता रहा तो उत्तराखंड के पशुधन की जनसँख्या में भारी गिरावट होगी जिससे यहाँ के निवासियों तथा सरकार को भारी नुकसान उठाना पड़ सकता है।

इस संघर्ष को समाप्त करने तथा वन्य जीवों के आहार-संरक्षण के लिए निम्नलिखित कदम उठाने जरूरी हैं:

- शिकार और वन-कटाव की घटनाओं पर नजर रखना।
- किसी भी राज्य में जो भी वन्यजीव फसलों को नुकसान पहुंचा रहे हैं, उनके आहार संरक्षण के न हो पाने के कारणों का पता लगाना।
- वन्यजीवों के द्वारा हमलों के खतरे वाले इलाकों के लोगों के साथ मिलकर अनुकूलक प्रबंधन नीति बनाना।
- इन कार्यों के परिणामों की समय-समय पर समीक्षा तथा विकसित करने के लिए जरूरी निर्णय लेना।

यह उम्मीद है कि निकट भविष्य में राज्य सरकार और वन महकमा दोनों ही इस दिशा में प्रभावी पहल करेंगें।

पशुधन प्रकाश के दशम अंक (2019) में प्रकाशन हेतु लेख आमन्त्रण

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा **'पशुधन प्रकाश'** पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष किया जाता है। पशु विज्ञान एवं पशु चिकित्सा, नस्ल गुणीकरण एवं संरक्षण इत्यादि के क्षेत्र में कार्यरत लेखकों से अनुरोध है कि इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु पशुपालकों, शोधकर्त्ताओं एवं छात्रों के लिए उपयोगी मौलिक लेख/ शोध लेख भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो के राजभाषा एकक को ए-4 साइज के पन्नों पर टंकित कराकर 31 मार्च, 2019 तक भेज दें। छायाचित्र की 'जे.पी.ई.जी.' फाइल लेख के साथ सी.डी. में उक्त पते पर या ई-मेंल द्वारा pashudhanprakash@gmail.com पर भेजे जा सकते हैं। कृपया सभी लेखकों द्वारा हस्ताक्षरित निम्न प्रमाण पत्र लेख के साथ अवश्य भेजें:

प्रमाणित किया जाता है कि सलंग्न लेख "(लेख का शीर्षक)", (लेखकों का नाम) द्वारा लिखित एक मौलिक रचना है तथा इस लेख को इससे पूर्व किसी अन्य पत्रिका अथवा शोध पत्रिका में प्रकाशित नहीं किया गया है।

आपके द्वार अध्ययन किये गये पालतू पशु/ कुक्कुटों के गैर पंजीकृत नस्लों/ समूहों पर आधारित लेखों को हम प्राथमिकता देते हैं।

– सम्पादक मंडल

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

ISSN 0976 - 4569

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो

पोस्ट बॉक्स नं. 129, करनाल – 132 001 (हरियाणा) भारत

दूरभाष : 0184-2267918, फैक्स : 0184-2267654

ईमेल : directornbagr@gmail.com; director.nbagr@icar.gov.in

http://www.nbagr.res.in